छोटे-छोटे महायुद्ध व्यवस्था के नियामकों के साथ मामूली आदमी की लड़ाई को अपेक्षाकृत सीधे और सरल स्तर पर कहने वाला उपन्यास है जिसे उसके लेखक की महत्त्वपूर्ण शुरुआत माना जा सकता है। मामूली लोगों की मामूली आकांक्षाओं के रास्ते में आने वाली गैर मामूली अड़चनों का कारण दूसरों के हाथों में निर्णय के वे सारे सूत्र है जिनके फंदे फाँसी की तरह मामूली आदमी के गले में कस जाते है।

साहित्यिक लटकेबाजियों और शिल्प के दाँव-पेंचों की अनुपस्थिति कथन को खूबसूरती से एकाग्र करती है। राजनीतिक उखाड़-पछाड़ और दाँव पेंचों का बहुत प्रामाणिक विवरण उपमंत्री महोदय के चमचे रामलखन बाबू के माध्यम से किया गया है जो मंत्रिमंडल टूटने पर अपनी भक्ति के लिए कोई और सुपात्र खोज लेते है। सामाजिक तबकों के अदृश्य संबंध सूत्रों का संकेत भी लेखक ने बड़ी दक्षता के साथ बिना किसी साहित्यिक आडंबर और शब्दा-योजन के लल्लन बाबू के पागलपन को एक प्रतीकात्मकता देकर किया है।

—दिनमान

इस उपन्यास में एक ऐसे सच को अनावृत किया गया है जिसे प्रायः शहरी मानस नजरअंदाज करने की कोशिश करता है। निम्नमध्यम वर्ग के क्लर्क लल्लन बाबू की महत्त्वाकाँक्षाएँ नगर से दूर एक झोपड़ी में कुंठित होती रहती है। कुंठाएँ क्यों और कैसे पैदा हुई, इसका रोमांचक, हृदयस्पर्शी चित्रण लेखक ने सहज भाव से किया है।

आज के आम आदमी को जिंदा रहने के लिए जैसे छोटे-छोटे महायुद्धों से गुजरना पड़ रहा है इसका चित्रण पाठक को झकझोर देने वाला है।

—दैनिक हिन्दुस्तान

छोटे
छोटे
महायुद्ध

छोटे-छोटे
महायुद्ध
रमाकांत

छोटे-छो
मामूली आद
स्तर पर कह
महत्त्वपूर्ण मु
मामूली आक
अड़चनों का
है जिनके फंदे
जाते हैं।
यद्यपि
अनुपस्थिति
राजनीतिक
प्रामाणिक वि
के माध्यम से
व्यक्ति के लि
लेखकों के अ
दक्षता के सा
योजन के ल
देकर किया है

इस उप
है जिसे प्राय
करना है।
महत्वाकांक्षा
रहती है। कु
हृदयस्पर्शी
आज के
छोटे महायुद्ध
को झकझोर

मूल्य : पैंतालीस रुपये
प्रकाशक : जगदीश भारद्वाज
सामयिक प्रकाशन
३५४३, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२
संस्करण : द्वितीय, १९८५

कलापक्ष : हरिपाल त्यागी
मुद्रक : नवप्रभात प्रिंटिंग प्रेस
बलबीर नगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

CHOTE CHOTE MAHAYUDDHA (Novel) by Ramakant
Price : Rs. 45.00

निम्न-मध्यम वर्ग की समरगाथा

विष्णु प्रभाकर

आज हम हर समस्या को विश्वव्यापी नहीं तो कम से कम देशव्यापी स्तर पर सुलझाने का दावा तो करते ही है परन्तु इसके बावजूद बृहत्तर समाज दिन-रात अपने-अपने सीमित क्षेत्र मे छोटे-छोटे महायुद्धों में फँसा रहता है। यह बात नहीं कि इन छोटे-छोटे महायुद्धों का रूप देशव्यापी या विश्वव्यापी नही हो सकता। वह तो होता है लेकिन अनेक कारणो मे देशव्यापी स्तर पर सुलझाई गई समस्याओं का लाभ साधारण जन तक नही पहुँचता। बीच में व्याप्त भ्रष्टाचार उसको लील जाता है और साधारण जन अपनी सीमित शक्ति के कारण टूटता रहता है। मोहभग की इस स्थिति में कुछ बिरले व्यक्ति ऐसे भी होते है जो टूटते नही बल्कि आघातों को झेलते है और सारी दुनिया के खिलाफ अपनी लड़ाई लड़ने को तैयार हो जाते है।

रमाकान्त ने अपने इस उपन्यास में एक सहज सुबोध कहानी के माध्यम से इसी स्थिति को अंकित किया है। उपन्यास तीन स्तरो पर आज की इन समस्याओं से जूझता है। पहले स्तर पर एक क्लर्क है लल्लन बाबू। गाँव से शहर आये हैं। किसी बिजली कम्पनी में काम करते है। शहर के बीच में मकान लेकर रहने जितनी आय नही है, इसलिए दूर एक साधारण बस्ती में रहने को विवश हैं। सीधी राह चलने वाले है। एक ही तमन्ना है बस उनकी कि बेटा उनकी तरह क्लर्क न बनकर किसी ऊँची जगह पर पहुँचे। इसीलिए उसकी देख-रेख करने में कठोर हो उठते हैं। अनुरक्ति ही तो कठोर बनाती है। उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए

चपरासी तक से कर्ज लेते हैं व लेकिन अन्ततः होता क्या है कि वे पागल हो जाते हैं और उनके बेटे को क्लर्क बनना पड़ता है।

दूसरे स्तर पर लेखक आज की भ्रष्ट राजनीति के छद्म को उजागर करता है। कैसे मंत्रिमण्डल बनते और बिगड़ते हैं। कैसे दल बदले जाते हैं। कैसे चन्दा हड़पा जाता है, यह सदानन्द, गोविन्द नारायण, रामलखन और उनके साथ के अनेक छुटभैयों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। लेखक ने बेलाग होकर सभी राजनीतिक दलों की अन्तरकथा और व्यथा को स्वर दिया है।

तीसरे स्तर पर उपन्यास नेताओं के बिगड़े बच्चों के मनोविज्ञान को रेखांकित करता है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि मे कम सफलता नहीं मिली है उपन्यासकार को। उसके विचारों में कोई उलझन नहीं है। अपने पात्रों को उसने बहुत पास से देखा है। उनके साथ जीवन जीया है। राजनीति के अलम्बरदार हों, ट्रेड यूनियन के नेता हों, दफ्तर के छोटे-बड़े बाबू हों, समानधर्मा पड़ौसी हों, तोताचश्म व्यापारी हों या मकान मालकिन नन्दो बुआ हों—ये सब हमारे आस-पास कहीं-न-कहीं मिल जाते है। नन्दो बुआ का चरित्र विशेष रूप से सशक्त हो उठा है। बाहरी अनगढता और झक्कीपन के पीछे मानवीय सवेदना कैसे छिपी हुई थी और कैसे प्रगट हो गई यह पढ़कर ही जाना जा सकता है। कितने मोर्चों पर लड़े गये है ये छोटे-छोटे महायुद्ध। लल्लन बाबू बेटे को अफसर बनाना चाहते हैं। रामलखन जैसे नेता सत्ता हड़पना चाहते हैं। केस्टो बाबू ट्रेड यूनियन को लेकर नारे लगाते हैं। मजदूरों का एक युद्ध है तो मंजु का दूसरा और दफ्तर के बाबुओं का तीसरा। पर क्या ये मात्र व्यक्ति के युद्ध है? पूरे समाज और पूरी व्यवस्था के सामने प्रश्नचिह्न लगाते लल्लन बाबू पागल हो गये। मंजु अनाम मौत मर गई। जगदीश नेता बन गये। रामलखन ने नई पार्टी बना ली। यही सब कुछ तो होता रहता है इस दुनिया में। परन्तु इनसे अलग राजेन की जाति के लोग भी होते हैं जो छद्म के आर-पार देख सकने की दृष्टि पा लेते है। वह न बेबसी की मौत मरते है, न षड्यन्त्र रचते हैं। वह अपने मोर्चे पर अकेले ही संघर्ष करते है। मोह-भंग इस संघर्ष को शक्ति देकर व्यापक बनाता है।

निस्सन्देह 'छोटे-छोटे महायुद्ध' निम्न-मध्यम वर्ग की एक ऐसी समरगाथा

ह जो जितनी कारुणिक है उतनी ही आशा की ज्योति जगाने वाली भी। क्योंकि वह हारने की नहीं, जूझने की प्रेरणा देती है। भाषा और शैली के बारे में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि लेखक ने अत्यन्त सयम से काम लिया है इसीलिए उपन्यास मन और मस्तिष्क दोनो को झकझोर देने की शक्ति पा सका है।

(निकेत, मई-जून, १९७८ में प्रकाशित लेख से)

यह बहुत दूर तक सच है कि इस कथा का मेरुदंड निम्न-मध्यम वर्ग की यंत्रणाहीन यंत्रणा का आजीवन विस्तार और इसके बीच उभरने और विकसित होने वाली उसकी निजी लालसाएँ हैं, जो साधनों की सीमाओं के कारण दिवास्वप्न बनकर रह जाती है, पर पार्श्वफलक के रूप मे लेखक ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के नव पूँजीवादी विकास, शहरी प्रसार, राज-नीतिक गिरावट और इसके अनुषगी भ्रष्टाचार और कालाबाजार, जीवन मूल्यो के ह्रास और अमानवीकरण को समेटते हुए इसे अपनी सीमाओं मे एक व्यापक आयाम देने का भी प्रयास किया है और यद्यपि ये प्रकरण कहीं सांकेतिक रूप में और कही प्रासगिक उल्लेख के रूप मे आते है, पर अपना असर पाठक के मन पर छोड़े बिना नही रहते।

—आजकल

निम्न-मध्यम वर्ग द्वारा, स्वय के अस्तित्व की रक्षा के लिए किये जाने वाले प्रयत्नों, और अपने इन प्रयत्नो मे की जाने वाली महायुद्धो-सी छोटी-छोटी लड़ाइयो मे सलग्नता को केन्द्र मे रखकर लिखा गया यह उपन्यास रमाकांत की रचना शक्ति से साक्षात् कराता है।

निम्न-मध्यम वर्गीय जीवन की इस स्थिति और मानसिकता का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए यह उपन्यास, अपने प्रवाह मे स्वतन्त्रता के बाद की नवीन पूजीवादी शक्तियो के विकास को भी खुलकर प्रस्तुत करता है। इसी से, लल्लन बाबू और उनके परिवार की यह कहानी, सिर्फ उन्हीं की न रहकर विस्तृत और बहुआयामी हो जाती है।

—दीर्घा

अब वहाँ रात को सियारों की हुआँ-हुआँ नहीं गूंजती···।

और न दिन को वहाँ मँडराया करते हैं गिद्धों के झुंड···।

उस उजाड़, वीरान भूमिखण्ड में जो पहले सारे शहर का कूड़ाघर था, अब नये ढग के मकानों की पूरी एक बस्ती उभर आयी है—नई रँगाई-पुताई से लकदक। रात में खिड़कियों और दरवाजों से छननी बिजली की रोशनी। सड़कों पर ट्यूब लाइटें, घरों में बजते रेडियो और बरामदों या बस्ती के बीच-बीच में बने पार्कों में खेलते बच्चों का शोर-गुल। सुबह-शाम बस्ती के पार्कों मे हँसते-खिलखिलाते बच्चों, युवको-युवतियो के झुण्ड दिखाई पड़ते हैं।

बस्ती कभी वीरान नहीं होती और न ही होती है कभी जीवन की रज-गज से हीन! बीचोबीच एक बड़े पार्क के चारों ओर एक खूबसूरत बाजार बन गया है। यहाँ दुकानें ही नही, एक सिनेमा हाल भी है। दिन मे शहर की ओर जाने वाली कई बसें चलती हैं। पर बस से न भी जाया जाय तो भी शहर जाने का रास्ता अब सिर्फ पाँच मिनट का लगता है—और अगर लोगों को जल्दी नही होती तो टहलते हुए शहर जाना पसन्द भी करते हैं।

···लेकिन पहले यही रास्ता कितना लम्बा और बियाबान मालूम होता। आबादी के नाम पर इस उजाड़खंड के एक किनारे थे सिर्फ आठ-दस मकान। उन सबको मकान कहना भी ठीक नही। खपरैलों या फूस के छप्परों वाली झोंपड़ियाँ, जिनमें तरकारियाँ बोने या अमरूद और बेर के बगीचों का ठेका लेने वाले खटिक रहते थे। मकान के नाम पर कुछ था तो एक तो वह जिसमे लल्लन बाबू रहते थे और दूसरा वह

जिसमें रघुनाथ साव की बिसातखाने और उसी से लगी साइकिल मरम्मत करने वाली दूकान थी। दूकान में वे सत्तू, नमक, मामूली मिर्च-मसाले से लेकर सस्ती सिगरेटें, बीड़ी और पान रखते थे। आसपास के गाँवों से दूध, सब्जी या शहर की जरूरत की दूसरी चीजें ले जाने वालों और अपने मामले-मुकदमे के सिलसिले मे शहर जाने वालो के लिए यह दूकान एक छोटे-मोटे पडाव की तरह थी।

सड़क पर हर वक्त उड़ती धूल से रघुनाथ साव की दूकान का आईना धुँधलाया रहता। बाद में वे लेमनजूस और चाय भी रखने लगे थे। गमियो मे वे शर्बत भी बेचते—सलई की पटरियों को जोड़कर बनायी गयी आलमारी पर रंगीन शीरे की बोतलें सजाई रहतीं और बोरे के एक टुकड़े में लपेटा बुरादे में दबाया हुआ बरफ भी एक ओर रखा रहता। कहने पर हरे, लाल या पीले रग का शर्बत दे दिया करते।

लल्लन बाबू उनके यहाँ चाय या शर्बत कभी न पीते। पर गृहस्थी की जरूरत की ज्यादातर चीजें इन्हीं के यहाँ से जाती थी। लल्लन बाबू इसलिए यहाँ आये थे कि शहर में मकान और वह भी कम किराये का—मिलना असम्भव था। दूर रहने की तकलीफें तो थी—रोज दफ्तर के लिए तीन मील जाना और आना पड़ता था। सुबह बहुत जल्दी चल देते और शाम को बहुत देर बाद लौटते—कभी-कभी काफी रात गये भी। सिर्फ आने-जाने भर के लिए रह गये थे जैसे। आस-पास शहर की दूसरी सुविधाएँ भी नही थीं—न कोई अस्पताल, न डाकखाना, न स्कूल। डाकखाना कोई ऐसी बात नहीं थी। स्कूल भी न रहने से फिलहाल कोई दिक्कत नही थी—तब राजेन पढ़ता भी नही था। पर अस्पताल—उसका होना जरूरी था। कौन जाने कब कैसी जरूरत पड़ जाय। रात को एक बार राजेन को कै होने लगी थी तो कैसी आफत आ गयी थी—रघुनाथ साव की साइकिल पर शहर तक की दौड़ लगानी पड़ी थी। इसलिए दफ्तर जाने के बाद हर वक्त मन जैसे घर पर टँगा रहता। और शाम को जब तक घर मे आकर सब कुछ ठीक-ठाक न पा लेते मन बेचैन रहता।

लेकिन इन असुविधाओं के बावजूद उन्हें सन्तोष था। एक तो यहाँ साफ-सुथरी खुली हवा मिलती थी—दूसरे, रोज एक-एक जौ बढ़ते राजेन पर शहर की बुरी हवा का असर पड़ने का खतरा नहीं था। पर सबसे बड़ा सन्तोष कुछ और ही था। वे गाँव से शहर आये थे और यहाँ रहकर लगता था, घर छोड़कर भी नहीं छोड़ा···।

दस साल की शहर की नौकरी में जैसे उन्होंने खुद अपने ऊपर शहर के रहन-सहन और तड़क-भड़क का असर नहीं होने दिया था।

अपने साथ के कुछ बाबुओं की तरह न कभी बीड़ी-सिगरेट को मुँह लगाया, न शराब की लत डाली, न कभी कोठे पर गये। और तो और, शहरी लिबास भी नहीं अपनाया।

शहरी जिन्दगी के वैविध्य, चमक-दमक के प्रति उनके मन में कोई आकर्षण नहीं। अपने छोटे-से परिवार—वे खुद, पत्नी और एक लड़का, और उसके बाद दफ्तर की छोटी-सी सीमित दुनिया से ही लगाव। वे उसमें पूर्ण सन्तुष्ट थे। जीवन की साधारण-सी सम्पन्नता भी होने का कोई असन्तोष नहीं। जो था उसी को सब कुछ मान लिया। जैसे और कुछ पाना नहीं था।

उनके इस सारे व्यक्तित्व में किसी तरह की कुण्ठा की जगह नहीं। किसी तरह के अभाव का बोध जैसे नहीं होता था। कहीं घूमने-घामने जाते नहीं थे। छुट्टियों के दिन भी नहीं, उस दिन घर का काम करते—गन्दे कपड़े धोते, घर भर की सफाई करते, बिस्तरों को धूप दिखाते, चारपाइयाँ कसते। और इन सबमें दिन अच्छी तरह बीत जाता। कहीं जाने-आने, घूमने-फिरने की बात ही दिमाग में न आती।

जिन्दगी की जिस सीधी-सादी राह पर चले थे वही अपने इकलौते बेटे राजेन के लिए भी सही मानते। अन्तर था बस एक। यह कि जितनी दूर वे जा पाये थे, जहाँ पहुँचकर उनके पाँव रुक गए या कहा जाय कि पारिवारिक स्थिति के कारण जहाँ खुद उन्हें अपने पाँव रोक देने पड़े—अपने बेटे को उससे आगे ठेलकर ले जाना चाहते थे। यानी पूरे दिल से चाहते थे कि लड़का उनकी तरह क्लर्क होकर न रह जाए—कहीं बड़ी जगह पहुँचे। पर रास्ता उन्हीं का बना-बनाया हो—दुनिया को समझ-

बूझकर बनाया गया सीधा-सादा रास्ता जहाँ कोई भटकाव और फिसलन नहीं।

लड़का एक ही रहेगा—यह उसके जन्म के समय से ही तय था। यही अपनी माँ की जान पर बन कर आया था। आपरेशन से पैदा हुआ था और डाक्टरों ने आगाह कर दिया कि दूसरे लड़के का मतलब होगा—माँ की मौत। इसलिए आगे गर्भ होने की सारी सम्भावनाएँ खत्म करा देनी पड़ी थी। जो था यही राजेन—यानी राजेन्द्र, जीवन की सारी महत्वाकांक्षाओं का केन्द्र, और उन्हें वह पूरा करना चाहते थे—उन्हीं को पूरा करने में तो निहित थी पिता की कर्तव्य-भावना की तुष्टि भी।

राजेन कभी-कभी उनके साथ रघुनाथ साव की दूकान पर जाता था। एक बार रघुनाथ साव ने उसे लेमनजूस पकड़ा दी थी। उसे राजेन के हाथ से झपटकर लल्लन बाबू ने रघुनाथ साव को वापस कर दिया था। रघुनाथ साव ने कहा, "क्यों डाँटते हैं लड़के को, बच्चा ही है। एक लेमनजूस से बिगड़ नहीं जायेगा।" इस पर लल्लन बाबू रघुनाथ साव पर भी बरस पड़े थे—"इस तरह बच्चे बरबाद होते हैं। तुम्हे क्या मालूम···।"

राजेन हक्का-बक्का, सहमा-सा उन्हें देखता रह गया था। दुख उन्हे भी हुआ राजेन को आघात लगने का। पर बुरी आदत लगने से रोकने के लिए निर्मम तो बनना ही पड़ेगा—यह सोचकर सन्तोष मिला था। बाद में राजेन का मन रखने के लिए एक पैसे की लेमनजूस ले दी थी—पर यह कहते हुए कि यह सब खाना बुरा है।

ताज्जुब हुआ था कि चार दिन तक राजेन ने वे लेमनजूस खाये नहीं और जब उन पर मक्खियाँ भिनभिनाने लगीं तो उन्हें उठाकर बाहर फेंक देना पड़ा था।

कभी-कभी राजेन रघुनाथ साव के रंगीन शीरे के शर्बत के लिए भी मचला करता। पर हमेशा उसे कड़ाई से मना कर दिया था। बात कुछ पैसों की नहीं थी। सवाल इन सबकी आदत पड़ने का था—अच्छा

था कि बच्चों को लुभाने वाला और चीज वहाँ नहीं थी। इसलिए लल्लन बाबू आश्वस्त थे कि बहुत-सी बुराइयों से वह स्वतः ही बच जाता था।

लेकिन इन अच्छाइयों के बावजूद कभी-कभी वहाँ की परेशानियों से झल्लाहट होती। पास मे एक खारा कुआँ था जिसका पानी सिर्फ बर्तन-कपड़े धोने और नहाने के काम आ सकता था। पीने का पानी कुछ दूर, दूसरे कुएँ से लाना पड़ता था। कभी-कभी खाने बैठते तो पता चलता सारी बाल्टियाँ खाली है। दफ्तर की जल्दी रहती, उधर प्यास से गला भी सूखता रहता। सोचते, चले चलें। रास्ते में या दफ्तर में ही पानी पीयेंगे—पर घर के लोग! प्यास लगेगी तो क्या करेंगे? राजेन छोटा है, जा नहीं सकता। लाचार बाल्टी उठाकर कुएँ की ओर दौड़ना पड़ता।

घर की बेवा मालकिन दूसरी परेशानी थी। अधेड़ उम्र और भारी-भरकम शरीर की। स्वभाव से बुरी नहीं, पर बातूनी बहुत थी। और उसकी हर बात में उसका मृत पति जरूर शामिल रहता—जिसकी वह निन्दा भी किया करती और बातें करते-करते आँखों से आँचल भी लगा लेती।

आस-पास के लोग कहते, बुढ़ौती में ब्याही दूसरी औरत थी। बूढ़ा रकम छोड़कर मरा था। इसने सब मुचिया लिया। क्रिया-कर्म भी नहीं किया। लल्लन बाबू को इन सब बातों से मतलब नहीं था। उन्हें शिकायत थी उसकी हर वक्त की बेतुकी बातों से।

लेकिन घर के एक हिस्से में—आँगन की दूसरी ओर एक हिस्से मे वह रहती थी—इसलिए जबर्दस्ती के बोझ की तरह उसे सहन करना पड़ता। जितनी देर घर में न रहते, मन ही मन सशंकित रहते कि राजेन पर उसकी बातों का बुरा असर पड़ रहा होगा। राजेन को भूत-प्रेत, राजा-रानी और डाकुओं के किस्से सुनाया करती। और राजेन जैसे उस एकान्त बस्ती की वजह से हर समय डरा-डरा-सा रहता। उन्हीं के पास सोता था—कभी-कभी सोते में चौंक पड़ता।

राजेन की माँ आँगन से सटी दालान में खाना बनाया करती। और

भी घरेलू काम इसी दालान में होते थे। मकान मालकिन करीब-करीब हर वक्त वहीं जमी रहती और बहुत तरह की बातें करती। उसकी ज्यादातर बातें बेमतलब की होतीं—पर वहाँ के अकेलेपन से ऊबी लल्लन बाबू की पत्नी उनमें रस लिया करती। ऐसे समय लल्लन बाबू घर में होते तो राजेन को अपने साथ बैठाकर शिक्षाप्रद किस्से सुनाते या बाहर घुमाने चले जाते।

सारे इलाके में दूर-दूर तक घने-घने पेड़ थे। रात को सियारों की हुआँ···हुआँ···और कुत्तों की भूंकने की आवाजें दूर तक गूजतीं तो राजेन चिहुँक उठता। बार-बार अपनी आँखें मूँदने की कोशिश करता पर यह जानते हुए भी कि माँ और बाबू बगल में ही हैं, वह आँखें बन्द न रख पाता। लल्लन बाबू उसकी यह आदत जानते थे—इसलिए परेशान रहते और उसे बहादुरों के किस्से सुनाते। पर जैसे वह काफी न होता— राजेन की आँखों में भय की छाया गहरी होती गई।

राजेन पढ़ने जाने लगा तो एक नयी समस्या सामने आयी।

समस्या थी उसके जाने-आने की। स्कूल शहर में पड़ता था और उतनी दूर वह अकेले नहीं आ-जा सकता था। इसी एक समस्या के कारण जब तक वह तीसरे दर्जे लायक नहीं हो गया तब तक उसका नाम नहीं लिखाया था। पर तीसरे के लायक हो जाने पर भी वह इतना बड़ा नहीं हो गया था कि अकेले आ-जा सके। दफ्तर जाते वक्त अपने साथ लेते जाते। लम्बा रास्ता पैदल तय करते-करते राजेन का चेहरा कुम्हला जाता। फिर भी स्कूल तो उसे ले ही जाना था। उसके थक जाने पर शहर की ओर जाता कोई इक्का या रिक्शा भी पैसा होने पर कर लेते। पर ज्यादातर पैदल ही जाना पड़ता था। आते वक्त राजेन को साथ लेते आते।

राजेन कुछ-कुछ रास्ता समझने लगा तो उसे स्कूल के सबसे पासवाली चौमुहानी पर छोड़कर दफ्तर चले जाते। स्कूल तक पहुँचने में राजेन को खास सड़क पर कुछ दुकानें ही पार करनी पड़तीं। वहीं एक ताँगा स्टैण्ड और एक पुराने मन्दिर का खँडहर था। पास में ही रिक्शे वाले भी

अपनी घंटियाँ टुनटुनाते खड़े रहते।

स्कूल खत्म होने पर राजेन उसी चौमुहानी पर खड़ा पिता का इन्तजार करता जहाँ वे उसे छोड़ जाते थे। सभी चीजें उसके लिए एकदम नयी थी। पिता के आने तक उनकी ओर आँखें फाड़-फाड़ कर देखा करता।

—आती-जाती सवारियाँ, मोटरें, साइकिलें, सिनेमा के पोस्टर, दुकानों पर बजते रेडियो या लाउडस्पीकरों की आवाजें, चौराहे पर थोड़ी-थोड़ी देर बाद हाथ उठाता सिपाही—और बहुत से आदमी। रघुनाथ साव से कितनी बड़ी और खूबसूरत दूकानें यहाँ थी। तरह-तरह की कितनी चीजें थी उनमें। वह सोचता बाबू यहाँ क्यों नही रहते हैं।

तभी कहीं से आकर लल्लन बाबू उसका स्वप्न तोड़ देते और वह उनके पीछे-पीछे चल देता।

एक दिन स्कूल से उस चौमुहानी की ओर आते हुए एक आदमी ने उसे बुलाया—"ए लड़के···!"

राजेन चौंक गया—सकपका कर इधर-उधर देखा। कोई नही। वह अपने रास्ते पर बढ़ गया, तभी फिर आवाज आई—"इधर बच्चे, इधर देखो···यहाँ···।"

और इस बार राजेन ने समझ लिया कि कौन बुला रहा है। एक दूकान के आगे बेंच पर बैठा कोई आदमी उसे बुला रहा था। पास जाकर राजेन ने कहा, आपने मुझे बुलाया···?"

"हाँ, बैठ जाओ···" उस आदमी ने कहा, "क्या नाम है तुम्हारा, कौन-सी क्लास में पढ़ते हो, कहाँ रहते हो···?"

राजेन ने सब कुछ बता दिया, पर बैठा नहीं उसके पास।

उसने राजेन को खींचकर अपने से सटाकर बैठा लिया। दूकान पर बैठे कई और शोहदे किस्म के आदमी हँस पड़े? उसने राजेन को पुचकारा, घिनौने ढंग से उसके सिर और गालो पर हाथ फेरा। राजेन रुँआसा हो गया। अपने आप को बड़ी साँसत के बाद छुड़ा पाया वह···।

पिता के साथ घर लौटते हुए राजेन ने यह सब उन्हें बताना चाहा।

पर सोच-सोचकर भी कुछ कह न सका। वह समझ नहीं सका कि उनसे क्या कहेगा। वह आदमी भी अब दूकान पर नहीं था।

नन्दो बुआ! उसे मकान मालकिन का ख्याल आया। नन्दो बुआ से कहेगा यह सब। सब समझती है सब, और वही बता देगी बाबू से।

नन्दो बुआ ने जाना, यह सब तो उसे जैसे बैठे-ठाले बात करने के लिए कुछ मिल गया। बड़ी ही दिलचस्पी से उसने राजेन की कहानी सुनी। फिर जैसे कोई बहुत बड़ी बात हो गयी हो उस तरह राजेन की माँ को बुलाया और उन्हें सारी बात बतायी। फिर लल्लन बाबू से शिकायत की कि स्कूल ले जाते हैं लड़के को तो क्या देखते हैं, क्या ख्याल रखते हैं—लड़के को कोई बहका ले गया तो किसी दिन इकलौते लड़के से हाथ धोवेंगे—फिर उसने बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बदमाशों के कई किस्से सुनाये कि कैसे वे लड़कों को पकड़ ले जाते हैं, और कैसे उनके साथ तरह-तरह के बुरे काम करते हैं···। लल्लन बाबू लड़के का अच्छी तरह ख्याल रखा करें नहीं तो किसी दिन लड़के से हाथ धो बैठेंगे।

फिर राजेन से लल्लन बाबू ने अकेले में सब ब्योरा सुना तो गुस्से से अलफ हो गये। राजेन को समझाया भी कि कोई गैर-जानकार बुलायें तो सुनना नहीं चाहिए, न उससे कुछ लेना चाहिए। और अगले दिन से वे फिर उसे स्कूल के फाटक तक पहुँचाने लगे और आते समय स्कूल से ही ले आने लगे। उसका चौराहे पर खड़ा होना बन्द हो गया। उन्होंने मास्टरों से भी उसका ख्याल रखने के लिए कहा।

लेकिन इतने पर भी आश्वस्त नहीं हो पाते थे वे। स्कूल के फाटक पर तब तक राजेन को देखते रहते जब तक कि वह अपनी कक्षा में जाकर बैठ न जाता। शाम को अपने आने के पहले स्कूल से बाहर न निकलने की ताकीद कर देते। फिर भी जब तक आकर उसे सुरक्षित न पा लेते मन बेचैन रहता।

लल्लन बाबू एक छोटे-से कस्बे से शहर आये थे। अपना पुश्तैनी मकान था। पर धीरे-धीरे, एक-एक कर उसकी कच्ची दीवारें ढहती गयी थीं और उनके ढूहों पर घास-फूस के जंगल उगते आये थे। टूटती-

उजड़ती गृहस्थी को समेटने की हर कोशिश नाकाम हुई थी।

फिर जब पटवारी बाप की साख और कुछ अपने दौड़ने-धूपने से एक नौकरी मिल गयी तो उस उजड़े घर का सारा मोह छोड़ कर वे शहर चले आये थे। एकाध बीघे खेत था—उसे *धिया पर उठा दिया था। शुरू-शुरू में छठे-छमासे खेत की उपज मे बाँट-बखरे के लिए चले जाते, पर धीरे-धीरे वह बन्द हो गया और अब तो वहाँ से सारा सम्बन्ध ही छूट गया।

शुरू-शुरू में लगता जैसे अपने परिचित वातावरण से कट कर कहीं बेगानी जगह में आ पड़े हैं। उन्हें लगता, कभी वह अपने को इस नये वातावरण से जोड़ नही पायेंगे। दफ्तर के और बाबुओं से भी वे अपना ताल-मेल बैठा नही पाते थे। कभी-कभी उनके मज़ाक के भी कारण बनते।

नौकरी ऊपरी आमदनी वाली नहीं थी। कहीं कचहरी में किसी साहब के अहलकार या पेशकार वगैरह होते, मुकदमो के रिकार्ड वगैरह रखने वाले पद पर होते तो जरूर ऊपरी आमदनी होती—ऐसी जगहों पर काम करने वाले चपरासियों तक को कुछ न कुछ ऊपरी आमदनी हो जाती है। पर लल्लन बाबू इससे बचे थे तो इसका कारण यही नहीं था। खुद वे ऐसी आमदनी को बुरा समझते थे। कभी-कभी बाबुओं में आपस मे इस बात को लेकर चर्चा होती—कि फलाँ पेशकार साहब को कल इतनी आमदनी हुई, फलाँ बाबू इतना लेकर फैसलों की नकल देते हैं—तो लल्लन बाबू अपनी भावना व्यक्त करते। कहते—अच्छा ही है, हम इससे बचे हैं। हराम की कमाई फलती नहीं। पर उनकी बातें लोग गम्भीरता से न लेते। लोग कहते—अभी दुनिया नही देखी है···अभी गाँव का पानी उतरा नहीं है। लल्लन बाबू को भी उनकी बातें बुरी लगतीं पर झगड़ा नही करते थे। बातचीत में उभरी कटुता मन मे ही दबा देते।

पर धीरे-धीरे उनके और दूसरे बाबुओं के बीच का यह आपसी अलगाव खत्म होता गया था। लोग लल्लन बाबू के अभ्यस्त होते गये थे और लल्लन बाबू उन लोगों के। वे शहर की जिन्दगी के भी अभ्यस्त

होते गये थे, पुरानी जिन्दगी का रहा-सहा मोह भी जाता रहा था। कभी कभी किसी पुराने दर्द की याद की तरह पुरानी बातें उभर आती थीं पर वह याद ही रहती, सचमुच का दर्द नहीं। खास तौर पर दफ्तर से लौटते वक्त निर्मल बाबू से या जब अकेले में बातें होतीं तो पुरानी बातें घूम-फिर कर उभर आतीं। निर्मल बाबू अक्सर अपनी तकलीफों का रोना रोते—"अजीब जिन्दगी हो गयी है यहाँ तो···दफ्तर से घर, घर से दफ्तर, और कुछ नहीं। जो जिन्दगी जी रहा हूँ, उसमें अपना कुछ नहीं··· और तुम भी कहाँ से आ फँसे इसमें···मजे में खेती-बाड़ी करते···आराम से गाड़ी खिच जाती···।"

"हाँ, खिच तो जाती···पर खेती उसकी जो अपने हाथ से कर सके ···और जब यही करना था तो लिखाई-पढ़ाई की ही क्या जरूरत थी। पर यहाँ भी कोई खास बुरा नहीं। जो है अच्छा ही है···।"

"खाक अच्छा है," निर्मल बाबू कहते, "कभी अच्छा था। तनखाह सिर्फ सत्तर रुपये थी। पर लड़की की शादी वो ठाट से की कि बड़े साहब को भी हमारे इन्तजाम की दाद देनी पड़ी···पर अब! ढाई सौ पाता हूँ और हालत यह है कि घर की मामूली जरूरतें भी बिना पूरी हुए रह जाती हैं···।"

दफ्तर से लौटते वक्त निर्मल बाबू से उनका साथ थोड़ी दूर तक रहा करता था। निर्मल बाबू के घर की ओर मुड़ने की जगह आ जाती तो थोड़ी देर तक खड़े वे बातें किया करते। धीरे-धीरे यह उनकी एक आदत-सी बन गयी थी। इस बीच वे बहुत से सुख-दुख एक दूसरे से कह-सुन लेते थे।

जिस दिन राजेन को उस आदमी ने तंग किया उसके दूसरे दिन निर्मल बाबू और लल्लन बाबू रास्ते भर शहर की बुराइयों की ही बातें करते रहे। लल्लन बाबू ने कहा, "अब तो जिन्दगी दूभर हो रही है निर्मलबाबू। लड़के को पढ़ाना भी अजीब मुसीबत है। उसे कहीं अकेले छोड़ा ही नहीं जा सकता—अभी कल एक बदमाश ने उसे फुसलाने की कोशिश की।"

"फुसलाने की कोशिश की ? क्या हुआ ? पुलिस में नही दे दिया उसे ?"

"क्या दे देता ! मेरे सामने तो कुछ हुआ नही, नही तो भला मैं चूकने वाला था।" लल्लन बाबू ने कहा, फिर सारा ब्योरा बता ले गये।

निर्मल बाबू उनकी बातें सुनते रहे। फिर काफी देर तक दुनिया की खराबियाँ गिनाते और लड़के की हिफाजत पर उन्हे हिदायतें देते रहे। उन्होंने यह भी बताया कि ये गुंडे-शोहदे बड़े खतरनाक होते है। पुलिस से भी इनकी रप्त-जप्त होती है और शरीफ आदमियों का इनसे बचना ही अच्छा होता है।

निर्मल बाबू को उनके घर के पास छोड़कर लल्लन बाबू राजेन के स्कूल की तरफ बढ़ गये। रास्ते भर उन्हे आशंकाएँ सताती रहीं। सोचते रहे कि अगर आज वह बदमाश मिले तो उसे पुलिस में देकर ही दम लेगे।

राजेन स्कूल के ही मैदान में लड़को का खेल बैठा देख रहा था। उसे साथ लेकर चले तो उस बदमाश के बारे में पूछा, पर वह कहीं दिखाई नही दिया। जहाँ वह मिला था वह जगह राजेन ने बताई। थोड़ी देर तक वहाँ खड़े होकर लल्लन बाबू ने इन्तजार किया कि शायद वह आ ही जाये। पर कोई नहीं आया। अँधेरा होने लगा तो वे घर की तरफ लौट पड़े।

घर जाकर राजेन ने बताया कि उसे स्कूल के लिए 'यूनीफार्म' की जरूरत है। न होने पर जुर्माना होगा।

लल्लन बाबू, एक ही लमहे में बहुत सारी बातें सोच गये—कि स्कूल के अधिकारी लड़कों के अभिभावको की माली हालत का जरा भ ख्याल नहीं रखते। जब जो जी में आता है, 'टैक्स' लगा देते हैं। महीने का आखिरी हफ्ता चल रहा था। कुल चार रुपये और बचे थे उनके पास। रोज दफ्तर आने-जाने, और घर की दूसरी जरूरतो के लिए उतना ही रुपया था। आज कोई बीमारी-आरामी पड़ जाय तो कर्ज या बीवी के पास जो एकाध जेवर है उसे गिरवी रखने के सिवा कोई चारा नही।

राजेन के यूनीफाम के लिये कम से कम बीस रुपये चाहिए ऊपर से उनकी जिद थी। कहता था—"अपनी कक्षा में एक नही बचा है, और सबके पास है···।"

लल्लन बाबू के चेहरे पर व्यंग्य भरी मुस्कान दौड़ गयी थी। रोज ही हजारों रुपये का हिसाब-किताब रखते थे। वे बिजली कम्पनी में कैश क्लर्क थे। जमा होने वाले रुपये का हिसाब रखने, सुबह जाने के बाद और आते समय सारी नकदी की जाँच कर कैश का दर्ज किए हुए हिसाब से मिलान करने वगैरह का काम था। दफ्तर मे जितनी देर रहते, आँखो और दिमाग मे अंक ही अक चक्कर काटा करते। पर उसमें से एक पैसा भी छू नही सकते। राजेन के 'यूनीफार्म' के लिए बीस रुपये की कौन कहे···।

रेजिडेन्ट इंजीनियर का चपरासी किशोर ब्याज पर रुपया चलाता था। तनखाह थी कुल जमा सौ रुपये, पर डेढ़-दो सौ रुपये पाने वाले बाबू लोग उसके कर्जदार थे।

राजेन के 'यूनीफार्म' के लिए उसी की शरण मे जाना पड़ा। वह दे भी देता खुशी से—क्योकि तनखाह के दिन वसूल लेता था। कोई बाबू बचना चाहता तो भी नही बच पाता था—भूत की तरह सिर पर चढ़ कर वसूल लेता।

"छुट्टी के बाद लल्लन बाबू ने उसके पास जाकर कहा, "भाई किशोर, कितना है तुम्हारा मेरे ऊपर···?"

लल्लन बाबू को याद था कि बीस रुपये बाकी हैं उसके। किशोर भी समझता था कि वे कर्ज अदा करने के लिए नहीं, और लेने के लिए ही पूछ रहे हैं। कहा, "मुझे याद तो नही बड़े बाबू, देख लूँ तो बताऊँ।"

"अच्छा, देखते रहना! मुझे बीस रुपये आज और दे दो, हों तो। ऐसे ही जरूरत आ पड़ी है।"

किशोर का चेहरा एकाएक सख्त हो गया। "अच्छा देखते हैं।' उसने रूखी-सी आवाज में कहा, "शायद ही हों···लोग लेने को ले लेते

हैं, फिर दे नहीं जाते बखत से।"

लल्लन बाबू समझ गये कि दूसरे का जिक्र करके बात उन्हीं से कही गयी है। तबियत हुई कि न लें उससे रुपये। उसके बाकी बीस रुपये भी उसके मुँह पर दे मारे और लताड़ दे बदमाश को···पर रुपये थे कहाँ? फिर भी कहा, "भाई, मेरे यहाँ तो तुम्हारे रुपये कभी बाकी नहीं रहे।"

"नहीं बाबू जी, नहीं! आपको कौन कहता है···।" किशोर ने कहा, फिर कई जेबों में टटोलने के बाद पाँच-पाँच के चार गंदे नोट निकाल कर दे दिये। फिर एक छोटी-सी नोटबुक खोलकर उनके सामने कर दी—"ये देखिये, बीस हैं और बीस आज के···।"

लल्लन बाबू ने कर्ज लिये रुपये और दर्ज कर दिये नोटबुक में। दर्ज करते-करते बोले—"बड़े सुखी हो भाई। मोटा खाना-पहनना, न पढ़ाई-लिखाई का खर्च तुम लोगों पर, न बाबूगीरी की जरूरतें। एक हम लोग हैं कि इसी में मरे जाते हैं।"

"सब आप ही लोगों का है बड़े बाबू!" किशोर ने घिघिया कर अपने पीले-पीले दाँत बाहर निकाल कर हँसते हुए कहा, फिर 'नोटबुक' जेब में रख ली।

रुपये ले लेने के बाद भी किशोर पर उनका रोष कम नहीं हुआ। साहब को छोड़ कर और किसी को कुछ समझता ही नहीं। उनका चपरासी है इसलिए किसी की धौंस नहीं चल पाती उस पर। उल्टे सब लोग उसके एहसान से ऐसे दबे रहते कि किसी की जबान न खुलती। मन का आक्रोश मन में दब गया। दफ्तर से बाहर निकलते ही दूसरी चिन्ताओं ने उन्हें घेर लिया।

लल्लन बाबू ने किशोर से कर्ज लिया है, यह निर्मल बाबू से छिपा नहीं रहा। साथ-साथ दोनों लोग चले तो जैसे खुद कभी उससे कर्ज न लेते हों, इस तरह निर्मल बाबू ने पूछा, "क्या जरूरत आ गई भाई रुपयों की, दो-चार दिन में ही तो तनख्वाह मिल जाती।"

"हाँ, मिल तो जाती।" लल्लन बाबू ने कहा, "मगर दो-चार

दिन मे न। और जरूरत आज ही है तो क्या करता…?"

"हाँ, यह तो है ही।…मगर सब खैरियत तो है न!" निर्मल बाबू ने पूछा, "आखिर कैसी जरूरत आ पड़ी?"

"अब क्या बताऊँ आपसे…।" लल्लन बाबू ने अपनी सारी अक्षमता और किशोर पर उमडा सारा रोष जमाने की शिकायत मे व्यक्त कर दिया, "स्कूलों में पढाई-लिखाई के नाम पर तो कुछ होता नहीं। पर पैसे की माँग रोज है। आज यह चन्दा चाहिए, कल 'यूनीफार्म' के लिए पैसा चाहिए, परसों फलाँ मास्टर की विदाई है…बर्खुरदार को 'यूनी-फार्म' चाहिए। न बनने पर जुर्माना होगा। इसलिए लिया है यह कर्ज… आप इस सबके खिलाफ कुछ कहिए तो कहेगे—अपने लड़के को मत पढाइये…इतने तरीकों से रुपया ऐंठते है कि मैं तो हैरान हूँ…।"

निर्मल बाबू ने भी उनकी हाँ मे हाँ मिलाई, "आप इतना ही कहते है। बिल्डिग फड, टिफिन की फीस, पिकनिक का चन्दा वगैरह तो जोडा ही नही आपने।… मेरे साहबजादे जहाँ पढ़ते है वहाँ तो हैडमास्टर साहब अपनी लिखी हुई किताबें जबर्दस्ती लड़को के सिर मढ देते है।…अब म क्या कहूँ आपसे। अभी उस दिन आपके लड़के को जिस बदमाश ने बहकाने की कोशिश की, ये स्कूल वाले उससे भी बड़े ठग है…।"

लल्लन बाबू को स्कूलों की इतनी कड़ी निन्दा पसन्द नही आयी। खुद उन्होने जिस प्राइवेट स्कूल में पढ़ा था, उसके मास्टरों की दुर्दशा से परिचित थे वे। वक्त पर तनख्वाहें नही मिलती थी, और मैनेजर साहब सरकार से मिलने वाली ग्राण्ट से सट्टेबाजी किया करते थे। मास्टर जाड़े में भी सुबह से ही काँपते-हुहुआते ट्यूशनों पर निकलते थे और रात नौ-दस तक लौटते थे। उनका कहने का मतलब नये ढग के स्कूलों और वहाँ पढ़ाई के ढंग से था जिसमें छोटे आदमियो के लड़को के लिए पढ़ने की गुंजायश नही थी। पर समझते नही थे कि गड़बड़ी कहाँ थी। जो कुछ भी थोड़ा-बहुत समझते थे वह भी बहुत स्पष्ट नही, फिर भी निर्मल बाबू की बात पर कहा, "मेरा मतलब किसी एक मास्टर या आदमी से नहीं था। मेरा मतलब सरकारी इन्तजाम से था। सारी गलती उसी की है विद्या की तिजारत न हो लड़कों के साथ खिल-

ल्वाड न हो और मास्टर फटेहाल न रहे, यही मैं चाहता हूँ, पर यह कैसे हो, यह नहीं जानता···।"

निर्मल बाबू ने अपने ढंग से लल्लन बाबू की बात का समर्थन किया, "आप ठीक कहते हैं। यहाँ तो लड़कों की जिन्दगी के साथ ऐसा खिलवाड़ होता है कि कुछ मत पूछिये। कहीं भी शायद ऐसा नहीं होता ·· सब हरामजादे हैं···हरामजादे···।"

बातों-बातों में निर्मल बाबू के घर की ओर मुड़ने वाली गली जैसे बहुत जल्दी आ गयी। जैसे वे कुछ जल्दी में भी थे। लल्लन बाबू ने अपनी बात के जवाब का इन्तजार किये बिना ही वे "अच्छा भाई चलें, कल फिर मिलेंगे···" कहकर गली में मुड़े फिर उसके घुमावों में खो गये।

लल्लन बाबू राजेन के स्कूल जाने वाले रास्ते की ओर मुड़े।

राजेन के स्कूल की ओर बस भी जाती थी। कभी वे बस भी ले लेते। बस से स्कूल के पास वाले चौराहे पर उतरते तो कभी-कभी सोचते —यह बस सीधे उनके घर के पास तक क्यों नहीं जाती? यहाँ से राजेन को साथ लेकर पैदल घर पहुँचते-पहुँचते पैरों पर ढेर सारी धूल जम जाती है और सारा शरीर थक कर चूर हो जाता है।

उन्हें तो कुछ करना नहीं होता खास, पर राजेन को तो पढ़ना भी पड़ता काफी रात तक।

यह समस्या अब कुछ हद तक कम हो गयी थी। खेतों और गढ्ढो-तालाबों के पास से पगडंडियों से होकर जाने वाला एक नया रास्ता ढूंढ निकाला था उन्होंने जो रघुनाथ साव की दूकान के पास खास सड़क में मिलता। एक तरह का 'शार्ट-कट' था यह।

कुछ दिन पहले एक नयी सड़क निकालने के लिए नाप-जोख हुई थी। जिस मकान में रहते थे उसके बगल से हो-होकर नाप-जोख हुई थी। मकान-मालकिन को कुछ समझ में नहीं आया कि यह सब क्या था।

अपनी दालान से ही राजेन की माँ को आवाज लगा कर पूछा कि यह सब क्या हो रहा था। पुराना गठिया का मर्ज उभड़ा हुआ था उसका

इसलिए खुद बाहर जाकर इसका अता-पता नहीं ले सकती थी। पर
की अकेली, जैसे बाकी दुनिया से कटी हुई जिन्दगी के लिए बहुत
बात थी यह। उसने लल्लन बाबू को ही पता लगाने के लिए भेज
तब दम लिया। सड़क से हटकर काम करने वाले मजूरों से पता चला—
नयी सड़क निकलेगी। उन्हीं से इस शार्ट-कट का भी पता चला था। उ
काफी खुशी हुई थी उस दिन।

कभी-कभी एक सायकिल लेने की बात सोचा करते थे। दो-सौ
नयी और सौ-सवा सौ में पुरानी मिल जाती थी। पर यह बड़ी रक
थी। बहुत बार हिसाब बैठा कर भी नहीं ले पाये थे। फिर धीरे-धी
इसका खयाल छोड़ दिया था।

राजेन दिन पर दिन बढ़ रहा था।

लल्लन बाबू की चिन्ताएँ भी बढ़ रही थीं।

राजेन का खयाल करके लल्लन बाबू को उस घर का वातावरण
पसन्द नहीं आता था। बूढ़ी मकान मालकिन, जो ऊपर से अब तक काफी
हिल-मिल गयी थी, अक्सर लल्लन बाबू को खयालों में आतंकित करती।

अपने पुराने मर्ज के कारण अक्सर चारपाई पर ही बैठी रहती—
सुबह उठकर नहाती-धोती भी और गठिया का रोना लेकर एक पहर
रात तक कराहती भी रहती। आँगन से लगी अपनी ओर की दालान
मे दमकल पर एक वक्त चावल चढ़ा देती और वही भात दोनों वक्त
खाती—दाल या सब्जी के लिए राजेन की माँ थी ही। यह सब लेने का
ढंग भी अजीब था। राजेन की माँ कटोरी में निमोना लेकर कहतीं—
"जीजी ! कुहड़ौरी डाल कर मटर का निमोना बनाया है, देखिये···।"

"निमोना !" वह कहती, "मुझे तो एकदम नहीं अच्छा लगता।
च्छा ! रख दो, देखूँ कैसा बनाया है···।"

फिर खाकर इतनी तारीफ करती कि राजेन की माँ अपनी जिन्दगी
ी एकमात्र सार्थकता पर फूली न समातीं।

राजेन लल्लन बाबू के साथ ही खाना खाता। अपनी तरफ वाले बरा-
दे मे बैठकर खाते थे वे। सामने ही अपने बरामदे में मकान मालकिन

ठी, नहाने के बाद जाड़े में कांपती या तो हरी ''हरी'' करती अपने गलतू तोते से बातें किया करती या अपने चावल चढ़ाने का इन्तजाम करती रहती। लल्लन बाबू ने एकाध बार कोई दूसरा घर भी तलाशने की सोची—पर सोच कर ही रह गये। सारा प्रयत्न दो-एक लोगों से—खास कर निर्मल बाबू से चर्चा तक ही सीमित रह गया।

वे राजेन को देखते—वह जैसे दिन पर दिन अधिक उदास, अपने में ही डूबा-डूबा-सा रहता था। काफी बदल गया था वह। और उसका यह बदलना रोज-ब-रोज अधिक स्पष्ट होता जा रहा था। अब वह किसी बात के लिए जिद नहीं करता था। अपनी माँ से कभी पैसा भी नहीं माँगता था।

लल्लन बाबू से तो जैसे कभी-कभी ही बोलता। लल्लन बाबू ही कभी उससे बातचीत शुरू करते। "पढ़ाई ठीक से चल रही है?" वे पूछते। "हाँ!" वह छोटा-सा उत्तर देता। फिर चुप।

लल्लन बाबू कहते—"तेरे कपड़े इतने गंदे क्यों हैं? कभी साफ तो कर लिया कर!"

"अच्छा!" कहकर वह फिर चुप हो जाता। जैसे वह सिर्फ सुनना है। अपनी ओर से बातें करना नहीं जानता।

पर पढ़ता वह मेहनत से मन लगा कर था।

लल्लन बाबू देखते कि चारपाई के सिरहाने रखी अपनी सलई की मेज पर रात को वह देर तक झुका पढ़ता रहता। किरोसिन लैम्प की काँपती हुई रोशनी देर तक दीवारों पर फैली रहती। राजेन का चेहरा उन्हें अक्सर बहुत कुम्हलाया-सा लगता।

राजेन की माँ दिन भर के काम से थक कर जल्द लेट जाती। लल्लन बाबू अक्सर पूछा करते उनसे—"राजेन को क्या हो गया है? वह आजकल बोलता-चालता क्यों नहीं?"

राजेन की माँ हमेशा कहती—"क्यों! कुछ भी तो नहीं हुआ है उसे!"

"पहले तो वह ऐसा एकदम नहीं था।"

"अब वह बड़ा हो रहा है न!" राजेन की माँ कहती।

"कितना बड़ा हो गया, अभी क्या उमर है उसकी···?"

राजेन की माँ अक्सर इतनी ही बात करते-करते सो जाती। लल्लन बाबू भी थके ही रहते। वे भी बोलना बन्द कर देते। पर दिमाग में बहुत-सी बातें चक्कर काटती रहती।···निर्मल बाबू भी अजीब आदमी हैं··· इस मुहल्ले से भी एक बस क्यों नहीं चला करती···कम से कम राजेन को स्कूल जाने मे सहूलियत हो जायेगी···। कभी वे किशोर से लिये कर्ज का हिसाब लगाते···वह हिसाब जैसे खत्म ही न होता। अक्सर जितना कर्ज वह जोड़ा करते, उससे ज्यादा ही निकलता···परेशान होकर वे उस पर सोचना छोड़ देते।

एक दिन उन्हे लगा जैसे कोई तेज बाढ़ आयी है और जिस घर मे वे रहते हैं, वह बह गया है,···रह गयी है सिर्फ टूटी-फूटी दीवारे जिन पर गाँव वाले घर पर उगी घास-फूस की तरह सेवार और कूड़ा-कर्कट जमा हो गया है।

एकाएक वे राजेन का नाम लेकर चिल्ला पड़े। पर उन्हे लगा कि उनके मुँह से कोई आवाज नहीं निकल रही है। घुटी हुई-सी घरघराहट के सिवा गले से कोई आवाज नही आ पा रही है। राजेन की माँ ने उन्हे झकझोर कर जगाया—"क्या बात है जी! इस तरह क्यों चौक रहे है···" राजेन की माँ भी घबरा गयी थी जैसे।

लल्लन बाबू अभी तक जैसे साँस लेने का प्रयत्न कर रहे थे। फटी-फटी आँखों से जैसे शून्य में ताकते हुए पूछा—"राजेन! राजेन कहाँ है···?"

"पढ़ तो रहा है।··· देख नहीं रहे हो, सिरहाने ही तो है।"

"इतनी देर तक वह क्यों पढ़ता है? उससे कहो कि सो जाय।"

"तुम सपना देख रहे थे क्या?"

"राजेन की आँख खराब हो जायेगी। तन्दुरुस्ती चौपट हो जायेगी। उसे सुबह उठकर पढ़ना चाहिए।"

"उसका इम्तहान जो है, लेकिन तुम सो जाओ···पानी पीओगे?"

किसी बच्चे की तरह लल्लन बाबू ने राजेन की माँ के हाथ से गिलास थाम कर पानी पिया। फिर सो गये।

राजेन सहमा हुआ-सा पिता की बेचैनी समझने की कोशिश करता रहा, फिर उनके सोने के बाद वह भी अपनी किताबें बन्द कर सो गया।

जिस सड़क के लिए पैमायश हो रही थी, उसके लिए गिट्टियाँ पड़नी शुरू हो गयीं। कहीं-कहीं दो-एक कोलतार के पीपे भी जमा हो गये।

फिर एक दिन सड़क पीटने वाला इंजन भी आ गया। मजदूर आ गये और यहाँ-वहाँ उनके खेमे लग गये। वह सुनसान बस्ती गुलजार हो गयी। भारी-भरकम इंजन की छक्...छक्...सुबह ही शुरू हो जाती...। रात को जहाँ-तहाँ उपलों के अहुंदे जला कर मजदूर खाना बनाते, फिर देर तक ऊँची आवाज में गाने गाते...। रघुनाथ साव की बिक्री काफी बढ़ गयी थी।

रोज नयी-नयी खबरें सुनाई देती। शहर की आबादी बहुत बढ़ गयी है। इसलिए यहाँ नयी बस्ती बनेगी। पुराने मकान सरकार ले लेगी और उन्हे तुड़वा कर नयी जमीनें निकालेगी...।

यह सब सुन-सुनकर नन्दो मकान-मालकिन का दिल बैठा करता। जो ये खबरें सुनाता उससे जैसे लड़ने पर आमादा हो जाती। और लोग जैसे उसे चिढ़ाने के लिए ही ये खबरें भी सुनाते। कोई उसे समझा न पाता। रह-रह कर अपने मृत पति और किस्मत को दोष देती कि नाहक ऐसी जगह घर बनवाया...घर बनवाने की ही क्या जरूरत थी ...खुद तो जाना ही था, जिन्दगी के जितने दिन थे किसी किराये के मकान में गुजर जाते...और मैं भी इसी तरह कहीं रह लेती...।

"कोई जानता है नन्दो बुआ कि कब भगवान बुला लेंगे...?"

"तो मैं अब कहाँ जाऊँ...। तुम लोग तो किराये के मकान में रहने वाले हो...कहीं न कहीं खोज लोगे...लेकिन मैं...?" उसका बस एक ही तर्क होता।

संयोगवश ही नयी बस्ती के नक्शे मे आने से उसका मकान बच गया। जिस दिन उसे यह खबर मिली उसने सत्यनारायण की कथा सुनी। और उसी के साथ ललन बाबू कहीं और मकान खोजने की

दिक्कत से बच गये। आसपास की जमीनों के नये-नये प्लाट निकल आये जो हजार रुपये कट्टे पर भी सस्ते उठ गये। ट्रकों पर ढो-ढो कर ईंटें गिरने लगीं। पास में एक ट्यूब-वैल भी लग गया। वहाँ के पुराने बाशिन्दों के लिए पानी की जो तकलीफ थी, दूर हो गयी।

आसपास के जंगल और सुनसान इलाके जैसे कभी थे ही नहीं। गंदे पानी के गड्ढे पट गये। रात को सियारों की हुआँ···हुआँ···बन्द हो गयी। लल्लन बाबू घर पर रहते तो खिड़की से ईंट-ईंट जोड़कर ऊपर उठते मकानों को देखा करते···। उनकी पत्नी दोपहर को अब उतना नहीं ऊबतीं। चारों ओर नयी बस्ती बनने की चहल-पहल होती रहती। दूर तक पेड़ या मैदान अब न दिखायी देते। उनकी जगह नये-नये ढंग के बनने वाले मकान दिखायी देते। दिन भर ईंट-सीमेंट की बोरियाँ लादकर ट्रकों का आना-जाना जारी रहता। मकानों के बीच पतली-पतली सड़कें निकलती आ रही थीं। उन पर छर्रियाँ बिछा कर पीटी जा रही थीं···राजेन की माँ की आँखों में यह सब देखते-देखते कभी-कभी गहरी उदासी-सी भर उठती। अपना घर उन्हें खराब लगने लगता। एक दिन उन्होंने लल्लन बाबू से पूछा भी कि क्या हम लोगों को इनमें से कोई मकान नहीं मिल सकता। लल्लन बाबू ने बिगड़ कर कहा—"अपनी पूरी तनख्वाह जितना एक मकान का किराया होगा··· क्या समझोगी तुम! यह सब हम लोगों के लिए नहीं है···।" फिर वे चुप हो गये थे और बहुत देर तक उस दिन पत्नी से उनकी बातचीत नहीं हुई थी।

राजेन कुछ और बड़ा हो गया। अपने आप में वह कुछ और सिमटा-सिमटा-सा लगने लगा था।

कथा-क्रम
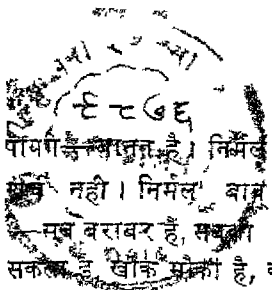
एक

लल्लन बाबू को एक अजीब-सा अहसास छू गया। राजेन उनकी बगल से गुजरा था और कुछ क्षण वे उसकी ओर अपलक देखते रहे। होठों पर हल्की-सी मुस्कान खेलती रही। अभी जैसे कल-परसों की ही तो बात है। नंग-धड़ंग, घुटनों के बल चलते-चलते एकाएक वह उठकर पैरों के बल चलने लगा और पूरे आँगन के एक छोर से दूसरे छोर तक चला गया था। यह साधारण-सी बात कितना महान आश्चर्य लगी थी। वे खुद और उसकी माँ इस कौतुक पर कैसे निछावर हो गये थे।

पर देखते-देखते, कैसे साल के साल बीतते चले गये थे—कुछ पता नहीं चला। राजेन अब कद में अपनी माँ से बालिश्त भर से ज्यादा ही ऊँचा हो गया। लल्लन बाबू के कान के बराबर पहुँचने लगा।

अब उसे स्कूल पहुँचाने और वहाँ से अपने साथ घर लिवा आने की जरूरत नहीं पड़ती। उसे देखकर लल्लन बाबू की आँखें जैसे जुड़ा जाती हैं। हाई स्कूल उसने पहले दर्जे में पास किया था। वह आगे बढ़ेगा, यह जैसे लल्लन बाबू को विश्वास हो चला है। दोस्तों-परिचितों से उसकी चर्चा करते हुए गर्व का अनुभव करते हैं।

राजेन के बारे में सोचते हुए एक हल्की-सी कसक भी होती है। वे चाहते थे, राजेन डाक्टरी या इंजीनियरी की लाइन में आगे निकले। लोग ऐसा ही कहते हैं, वे खुद भी देखते हैं इस लाइन से कितनी तरक्की है—खुद अपनी कम्पनी का रेजिडेंट इंजीनियर कितनी कम उम्र का है और उन लोगों का अफसर है, तनखाह अच्छी, रहने को कम्पनी का ही दिया हुआ बंगला। कम्पनी की जीप गाड़ी। पैंतीस-चालीस का होते-होते तो कहाँ पहुँच जायेगा। पर उस लाइन पर राजेन को नहीं लगा

पाँचवीं के बराबर है। निर्मल बाबू बताते हैं, डेढ़-दो सौ से कम पढ़ाई का खर्च नहीं। निर्मल बाबू तड़पकर और न मालूम क्या-क्या कह गये थे—सब बराबर हैं, सबको बराबर मौका है, एक मजदूर भी प्रेसीडेंट हो सकता है, खाक मौका है, क्लर्क का बेटा क्लर्क ही होगा, मिनिस्टर भले ही हो जाय, पर इंजीनियर या डाक्टर नहीं हो सकता…।

लल्लन बाबू इसके लिए कभी अपने, कभी राजेन के भाग्य को दोष देते हैं। फिर यह सोचकर संतोष करते हैं कि चलो—सरकारी अफसरी के इम्तहानों में बैठ लेगा।

एक दिन उनकी तबीयत कुछ अनमनी-सी थी। दफ्तर नहीं जा सकते थे। राजेन कालेज गया तो उसी के हाथ छुट्टी की अरजी भेज दी। लेकिन घर में भी पड़े-पड़े तबीयत ऊब रही थी। घर के बाहर जो छोटा-सा-चबूतरा था, उसी पर मोढ़ा निकालकर धूप में बैठ गये। वक्त काटने के लिए राजेन के कोर्स की ही एक किताब उठा लाये। उसी को पढ़ते बैठे रहे। और अब धूप ढल रही थी। राजेन के आने का वक्त हो रहा था। उन्होंने सोचा, राजेन अब आ ही जाये तभी उठें।

एकाएक साफ-सुथरी पैंट-कमीज पहने एक लड़का आया और लल्लन बाबू से पूछा, "राजेन्द्र का घर यही है ?"

लल्लन बाबू सशंकित हो उठे। चुड़ककर कहा, "हाँ ! यही है, आप कौन हैं, कहाँ से आये हैं ?"

वह लड़का इसके लिए तैयार नहीं था। अचकचाकर कहा, "राजेन्द्र के साथ ही पढ़ता हूँ, उन्हीं से मिलना है।" लड़के ने कहा।

लल्लन बाबू को कुछ इतमीनान हुआ। "क्या नाम है आपका ?"

"त्रिभुवन !"

"त्रिभुवन ! बस, उसके आगे कुछ नहीं ? कोई नाम पूछे तो पूरा नाम बताना चाहिए न ?"

"त्रिभुवन नाथ वर्मा !"

"अच्छा ! कायस्थ ही हो ! मकान कहाँ है ?"

"मैं होस्टल में रहता हूँ।"

"बाहर के हो ? पिता जी क्या करते हैं ?"

"जी हाँ ! बाराबंकी का रहने वाला हूँ"'। पिताजी वकील हैं।"

लल्लन बाबू को कुछ निराशा-सी हुई। लड़का बुरा नहीं लगता, प
उसे दोस्ती करनी है तो किसी ऊँचे अफसर के लड़के से दोस्ती करन
चाहिए। प्रकट में कहा, "अच्छा ! तो राजेन से क्या काम है ?"

"मुझे उनको यह किताब देनी थी। उनसे ली थी। उन्होंने आः
लौटाने को कहा था।"

लल्लन बाबू फिर कुछ सशंकित हुए। यह लड़का बातें बना तो नहीं
रहा था ?

"लेकिन राजेन पढ़ने ही तो गया है। क्या वहाँ नहीं मिला ?"

"नहीं, आज तो राजेन्द्र क्लास मे नही था।"

"क्या कहते हो ! पढ़ने नहीं गया राजेन ?"

"जी नहीं ! मैं वहीं से आ रहा था। मैंने सोचा शायद तबीयत
खराब हो। किताब उन्हें आज ही देनी थी। सोचा घर पर ही दे आऊँ
और देख भी आऊँ ?"

"अच्छा-अच्छा !" लल्लन बाबू ने बुझी-सी आवाज में कहा, "तुम
किताब रख जाओ। आयेगा तो उसे दे दूँगा।"

लड़का किताब उन्हीं के पास छोड़ कर चला गया। लल्लन बाबू
दूर तक उसे जाते देखते रहे। तो राजेन पढ़ने नहीं गया...? उसके लिए
इतनी तपस्या करते है, और सहसा यह वज्रपात...! मन मे शंकाएँ भी
हुईं पर ज्यादा देर टिक नहीं सकीं। जरूर कहीं भटक ही गया होगा।
अथाह क्षोभ मे उफनते वे देर तक वहीं बैठे रहे।

एक हाल में जमीन पर दरी बिछी थी और उस पर कुछ लोग बैठे
थे। एक ओर एक बड़ा युवक फोकस फेंकने वाला बल्ब लिये दीवार के
पास, जहाँ स्विच बोर्ड था, खड़ा था। हाल से ही लगे एक कमरे के भिड़काये
हुए दरवाजे के सामने एक युवक खड़ा सिगरेट पी रहा था।

एकाएक कमरे का दरवाजा तेजी से खुला और एक युवती तैश में
भरी बाहर निकली। उसने तेज आवाज में युवक से पूछा, "तुम यहाँ
क्यों खड़े होते हो रोज-रोज, यहाँ क्या मिलता है तुम्हें ?"

लड़के ने सिगरेट होंठों के बीच दबाये हुए मुस्कराकर शरारती अंदाज से कहा, "तुम्हें···।"

युवती ने गुस्से में ही कहा, "फिर अगर तुम यहाँ आये तो जानते हो ?···"

"क्या ?"

"वो चाँटा मारूँगी कि याद रहेगा।"

"चाँटा ? कैसे मारियेगा, जरा देखूँ तो।"

"दिखाऊँ···?"

"जरूर···!"

"ऐसे···!" कहते हुए युवती ने कसकर एक चाँटा युवक के गाल पर जड़ दिया।

युवक उसी तरह अप्रभावित खड़ा रहा। युवती मुड़कर भीतर जाने लगी। तभी युवक ने युवती का हाथ पकड़कर उसे अपनी ओर खींच लिया। युवती अपनी जगह पर ही घूमकर उसकी ओर खिंच आयी। युवक ने कहा—"एक बात बता दो !"

"क्या ?"

"तुम्हारे सीने में दिल है या नहीं ? मैं रोज यहाँ आता हूँ और तुम मुझे चाँटा मारती हो···?"

"हाँ, मुझसे गलती हुई।" लड़की ने उसकी पकड़ से हाथ छुड़ाते हुए कहा, "मुझे अपना सैण्डिल काम में लाना था।" और वह तेज कदमों से दरवाजे की ओर बढ़ गयी।

युवक ने चिल्लाकर कहा, "क्या प्रेम अपराध है ?···मुझे जवाब दो···तुम्हें जवाब देना ही पड़ेगा।" लड़की ने फटाक से दरवाजा बन्द कर लिया।

दरी पर बैठे लोगों ने "बहुत अच्छे···", "क्या खूब !" कहते हुए तालियाँ बजायीं। अभी-अभी जो लड़की दरवाजे से अन्दर गयी थी वह मुस्कराती हुई बाहर निकली और थकी हुई आवाज में चाय माँगी।

यह था राष्ट्रीय युवक सांस्कृतिक संघ द्वारा खेले जाने वाले नाटक देश का दर्द' का रिहर्सल। यह लड़का प्रेम में असफल होकर सैनिक के

हा न भारत माता के चरणों में शहीद होने वाला था फिर उससे भी बचकर देशभक्ति और प्रेम दोनों में सफल होता। अभी-अभी जो हुआ वह उसी का एक प्रारम्भिक दृश्य था। डायरेक्टर थे अतुल दादा, जो अपने आपको किसी समय फिल्मों का मशहूर डायरेक्टर बताया करते और अब बेकार थे।

लडकी बाहर निकली तो उन्होंने उसे शाबाशी दी, "बहुत अच्छे मंजु ! तुम फिल्म मे काफी चमक सकती हो।"

अतुल दादा ने गलत नही कहा था। जहाँ तक अभिनय की बात थी, उसने सचमुच अच्छा अभिनय किया था। उसके अंग-सचालन में प्रवाह था और अभिनय में स्वाभाविकता। अतुल दादा की शाबाशी पर शर्मा उठी।

दरी पर पीछे की तरफ राजेन भी बैठा था। उस पर जैसे अभी मंजु के अभिनय का प्रभाव छाया हुआ था।

"राजेन, सिगरेट पिओगे ?"

वह चौक पड़ा। पर वह डायरेक्टर और नायक का पार्ट करने वाले युवक के बीच खड़ी युवती की ओर ही देख रहा था।

उसने पूछा, "वह लड़की कौन है ?"

"तुम उसे नहीं जानते ? कई ड्रामों मे छोटे-मोटे पार्ट कर चुकी है। पहली बार इस नाटक मे 'हीरोइन' का पार्ट कर रही है।·· मैं इसे फिल्म में 'इन्ट्रोड्यूस' करने की कोशिश कर रहा हूँ।"

"फिल्म में ?···कैसे ?"

"कोई मुश्किल नहीं है। जब यह नाटक होगा उसी वक्त एक शूटिंग के सिलसिले में एक बड़े फिल्मी डायरेक्टर आने वाले है। उन्हे इस नाटक में लाऊँगा, मंजु को 'पार्ट' करते देख लेंगे तो फिर उसे उनसे 'इन्ट्रोड्यूस' करते दिक्कत न होगी।···कौन जाने कहीं वे खुद ही आफर न करें। मैने उन्हें लाने का इन्तजाम कर लिया है। उन्हीं से उद्घाटन करवाया जायेगा। संघ के सभापति से चिट्ठी अभी लिखवाई है उन्हें।"

जगदीश हमेशा हर बात जानता है, और हर काम कर सकता है।

राजेन को उसकी सफलता पर सन्देह नहीं था। उसी के साथ पढ़ता है वह, और जगदीश तीन-चार साल से इन्टर में ही है—वह जैसे वक्त काटने के लिए ही है कालेज में—लोग चर्चा करते है। उससे चार साल बडा है, पर इतनी सारी बातें जानता है जितनी शायद उसके बाबू भी नहीं जानते। कालेज में जिस दिन से नाम लिखाया उसी दिन से उससे प्रभावित था। कालेज के पास ही बाजार में एक टी-स्टाल था जहाँ रिसेस मे रोज वह राजेन को लिवा जाता। राजेन को पैसा भी न खचंना पडता। जगदीश ही चाय पिलाता और फिर सिगरेट पीने की जिद करता। राजेन के मना करने पर उसे चिढाया करता।

"तुम सिगरेट नहीं पिओगे तो करोगे क्या? बिल्कुल दकियानूस हो।"

"बाबू नाराज होंगे।"

ओह! बाबू! उनके जमाने में न सिगरेट थी, न सिनेमा। तब गुड़-गुडी पीते थे लोग।"

"बाबू हुक्का वगैरह कुछ भी नहीं पीते।"

"ओह! वे सब पुराने ख्यालों के लोग हैं!"

फिर भी राजेन की अनिच्छा से जगदीश ने कम से कम उस वक्त जोर नहीं दिया। जगदीश अक्सर उसे पढाई के घंटे छुड़वाकर अपने साथ घुमाने ले जाता।

जगदीश के पास कभी पैसे की कमी न रहती। उसके मिलने-जुलने वालों की भी एक बड़ी संख्या थी—जिनमें कुछ महिलाएँ भी थीं। ये सभी लोग जगदीश की काफी इज्जत करते। लोग जैसे डरते कि जगदीश कहीं उनसे नाराज न हो जाय। अक्सर लोग उसके सामने घुमा-फिरा कर अपनी कोई समस्या पेश करते—जगदीश बाबू, रेडियो लाइसेंस न लेने का जुर्माना हो गया है...जगदीश बाबू, लैण्डलार्ड ने दूकान खाली करने की नोटिस दी है...गुण्डे भी खड़े कर दिए है। कोई जुगत लगाओ भाई...साले को ठीक करना है...।...जगदीश बाबू, क्या जमाना आ गया है! मुन्ने का जन्म-दिन है, चीनी नहीं है कि आप लोगों की दावत करूँ। जगदीश बाबू, आपके रहते घर में तलाशी होगी। और सबकी

समस्याओं का समाधान जैसे जगदीश के पास रहता—ठीक हो जायेगा। यह काम तो बड़े बाबू के हाथ में है, या वह काम तो सप्लाई अफसर से करा दूंगा।···मेरे साथ चले चलियेगा। औरतें अक्सर सिनेमा का पास माँगती जिसे जगदीश ला देता···।

बाद में मालूम हुआ राजेन को—जगदीश किसी बड़े रोबदाब वाले उपमन्त्री का लड़का था जिनका लोहा कई मन्त्री तक मानते थे। रोज अखबारों में उनका नाम निकलता था—फोटो छपते थे। जगदीश ने ही दिखाकर बतलाया था एक दिन। और उसके बाद वह काफी दिनों तक अखबार सिर्फ इसीलिए देखता कि जगदीश के पिता की कही फोटो है कि नहीं, नाम है या नहीं !···और एक दिन एक टिप्पणी मे यह भी पढ़ा था कि अगले चुनाव में किसी मन्त्री के संसद का चुनाव लड़ने की हालत में उनकी जगह के लिए सबसे अधिक सम्भावना अगर किसी की थी तो बाबू गोविन्द नारायण की ही—यानी जगदीश के पिता की। यह सारा आयोजन, सारा धूम-धड़ाका बाबू गोविन्द नारायण को ही केन्द्र बनाकर हो रहा था। उनकी पचासवीं सालगिरह आ रही थी। अभिनन्दन समिति अलग बन गयी थी। उनके कुछ भक्तो ने नाटक का आयोजन किया। उनके नजदीकी लोगों में आम ख्याल था—इससे अगले साल होने वाले चुनावों के लिए अच्छा 'बैकग्राउण्ड' भी बनेगा।

जगदीश ने उसके मुँह में जबर्दस्ती सिगरेट लगाते हुए कहा—'पियो भी यार ! एक कश खीचो तो, देखो कैसा मजा आता है।" और खुद ही दियासलाई जलाकर उसे सुलगा दिया।

राजेन ने एक कश खीचा। कड़वे धुएँ से मुँह और गला भर गया और खाँसी चढ़ने लगी। चेहरा और आँखें लाल हो आयीं। पर जगदीश के डर के मारे सिगरेट फेंकी नहीं—दुबारा मुँह में लगाकर भी उसका धुआँ अन्दर नहीं खीचा।

अब किसी दूसरे सीन का रिहर्सल था। मंजु और नायक आपस मे कोई बातचीत कर रहे थे। मंजु का चेहरा खिला हुआ था। जैसे किसी

बात पर वह बेहद खुश थी। राजन को मंजु का यह रूप अच्छा लगा। उसने जगदीश से पूछा, "तुम यहाँ रोज आते हो?"

"जब मंजु का पार्ट रहता है तभी—करीब-करीब हर तीसरे दिन रहता है- वह मुझे अच्छी तरह जानती है।"

"अच्छा!"

"जितना और लोग मुझे जानते है, उनसे कहीं ज्यादा।"

"अच्छा! कैसे?"

"बाद में बताऊँगा...अभी बस समझ लो कि वह जो कुछ है मेरी वजह से। उसे जब कोई नहीं जानता था तब उसका खर्च-वर्च मेरी ही वजह से चलता था।"

राजेन चुप हो गया। जगदीश ने जो कुछ उसे बताया उससे राजेन के ऊपर उसका प्रभाव जैसे सौगुना अधिक बढ़ गया।

हाल में कब बल्ब जला दिए गए थे और बन्द खिड़कियों के शीशे से अन्दर छनती रोशनी कब अँधेरे में बदल गयी, कुछ पता नहीं चला। अब उसे घर का ख्याल आया। बाबू को पता चलेगा तो कितने नाराज होंगे—यह बात दिमाग में आते ही अन्दर ही अन्दर उसका कलेजा दहल उठा। उसने जगदीश से कहा, "अब मैं जाना चाहता हूँ।"

"रुको न थोड़ी देर, हम सभी चलेंगे। मंजु भी साथ चलेगी।"

उसका भय पूरी तरह शान्त नहीं हुआ था। पर मन फिर भटकने लगा। कुछ देर मंजु के साथ चलने की कल्पना से ही सुख मिल रहा था।

रिहर्सल का यह सीन भी खत्म हुआ और उसी के साथ आज का रिहर्सल भी।

सब लोग जब मंजु को दाद दे रहे थे तो एक अधेड़ आदमी जगदीश के पास आया। उसने पूछा, "आपको मंजु का काम पसन्द आया जगदीश बाबू?"

"पसन्द!..." जगदीश ने कहा, "खूब पसन्द आया, मंजु एक दिन जरूर चमकेगी।"

"भगवान आपकी बात रखे। कभी-कभी वह धीरज छोड़ बैठती है।

मैं भी सोचता हूँ कभी उसे बम्बई ले जाऊँ ! फिर रुक जाता हूँ, सोचता हूँ, कुछ और होशियार हो जाय वह···।"

जगदीश ने कहा, "आप बेफिक्र रहें घोपाल बाबू । उसका हुनर ही उसे आगे ले जायेगा । मैं जानता हूँ, उसमे प्रतिभा है ! इसीलिए तो उसे यहाँ लाया ।

"आप ठीक कहते है जगदीश बाबू !" अधेड़ घोषाल ने कमानीदार चश्मे के नीचे से तीखी आँखों से जगदीश की ओर देखते हुए एकदम से बात बदली, "आप आज कालेज नही गये क्या ?"

"नही ! क्लास छोड़ दिया।···मंजु का उत्साह भी तो बढ़ाना जरूरी है ।"

"ठीक ! ठीक !···" घोषाल बाबू हँस पडे, "अपने कुछ लोगों को सामने देखकर मन बढ़ता है ।···"

"मंजु कहाँ है ?"

"शायद मुँह-हाथ धो रही होगी ।"

"अच्छा, मैं आता हूँ। उसे बधाई दे आऊँ ।···" कहता हुआ जगदीश उस ओर चला गया जिधर बाथरूम वगैरह थे । उसके जाने पर घोपाल ने राजेन से पूछा ।

"आप जगदीश बाबू के दोस्त हैं ?"

"जी ! हम साथ ही पढ़ते हैं ।"

"आपको मंजु का काम कैसा लगा । वह बहुत अच्छी लड़की है । जगदीश बाबू कहता है, वह कभी बहुत बड़ी एक्ट्रेस बन सकती है ।··· हम तो यह सब ठीक नहीं समझता । लेकिन आजकल का 'माडर्न एज' मे लड़का-लड़की के बीच में कौन पड़ेगा ।"

"जगदीश ठीक कहता है ।···"

"आ-हा ! हा !" घोपाल बाबू ने कहा, "देखो बाबू ! हमारे पास भी कभी बहुत जमीन-जायदाद था। ए तो ! इसका माने मंजु की माँ मर गया, हम उदासीन हो गया, और सब रुपिया-पैसा उडा डाला ।···क्या करेगा शाला को रखकर ।···हम तो दुनिया से वैरागी हो गया था, यही लड़की के वास्ते फिर आना पड़ा । ये ही जगदीश बाबू जोर दिया···।"

मंजु बाहर आयी। पीछे-पीछे जगदीश भी। मंजु के चेहरे पर थकान थी। आते ही उसने अपने पिता से बंगला में कहा, "अब चलिये बहुत भूख लगी है।"

जगदीश ने राजेन से कहा, "तुम भी चलो राजेन। रास्ते में हम तुम्हें छोड़ देंगे।"

रात अच्छी तरह ढल आयी थी। सड़क की बत्तियाँ जल गयी थी। राजेन कभी इतनी देर से घर नही लौटा था। वह समझ नहीं पा रहा था कि इस देर के लिए बाबू से क्या कहेगा! वे घबड़ाते हुए इन्तजार कर रहे होंगे।

राजेन ने पूछा, "साथ कैसे चलेंगे। बस से?

"नही, नहीं! टैक्सी बुलवा लेता हूँ। सब लोग साथ हो लेंगे।" फिर ऊँची आवाज में कहा ताकि मंजु भी सुन ले—"अभी नहीं! पर एक दिन मंजु कार से स्टूडियो आयेगी-जायेगी···।"

"कहाँ रहती है मंजु?"

"हमारे ही एक मकान मे! वे हमारे किरायेदार हैं।···एक मे हम रहते हैं। दो में किरायेदार है···एक में एक हिस्से में ये लोग रहते हैं। "

जगदीश की बहुत-सी बातें राजेन को अच्छी नहीं लगती थी, लेकिन मंजु से उसका परिचय उसके व्यक्तित्व का एक खूबसूरत पहलू लगा।

जगदीश ने कहा, "वे सिर्फ नाम के लिए किरायेदार हैं, वे किराया नही देते।···है ही नहीं, देंगे कहाँ से···यह घोषाल अफीम खाता है और दिन भर पड़ा रहता है।···मंजु कुछ नही करती···पढ़ी-लिखी भी नही, वो तो मैंने तैयार किया धीरे-धीरे उसे कि फिल्म लाइन पकड़े तो काफी बढ़ सकती है।···और इस बार अतुल दादा से बहुत जिद करके तो उसे हीरोइन बनवाया है।···अब इसकी किस्मत है···।"

"लेकिन किराया नहीं देते तो तुम्हारे पिता क्यों रहने देते है?···"

"वे तो जनता की सेवा करने वाले हैं न!·· मैं बहुत छोटा था तभी से ये लोग रहते हैं, मंजु छोटी-सी बच्ची थी। इसकी माँ भी उस वक्त, मुझे याद है···बहुत सुन्दर थी।···पिताजी ने दया करके उन लोगों को

जगह दे दी थी। चार पाँच साल हुए मर गयी थी उसकी माँ . कुछ लोग कहते हैं जहर खा लिया था।"

टैक्सी आ गई थी। जगदीश ने आगे बढ़कर दरवाजा खोला और मंजु अन्दर जा बैठी। अन्दर जाकर अपने पिता घोषाल को भी उसने बुलाया, पर घोषाल ने आगे ड्राइवर की बगल में बैठना पसन्द किया।

मंजु की बगल में जगदीश जा बैठा, और उसकी बगल में राजेन।

घोषाल ने ड्राइवर के पास बैठकर बीड़ी जलायी, फिर हाथ झटक कर तीली बुझाते हुए कहा, "जगदीश बाबू! तुम बहुत कष्ट उठाता है हमारे लिए।"

"आप कोई फिक्र मत कीजिए घोषाल बाबू! इसमें कष्ट की कोई बात नहीं।...और अभी क्या है...एक दिन आयेगा, आप हमें पूछेंगे नहीं।"

"हो! हो!...हम क्या जब तक जीता रहेगा...?"

"कोई बहुत दूर नहीं है घोषाल बाबू वह दिन...!"

"आप भी हमें याद रखिएगा जगदीश बाबू!...आप मिनिस्टर हो जायेगा तो...शादी-ब्याह कर लेगा, फिर हमको कौन पूछेगा।"

जगदीश ने घोषाल के मजाक का कोई उत्तर नहीं दिया। मंजु से वह कुछ धीरे-धीरे बात कर रहा था और मंजु की धीमी हँसी कार के इंजन की घरघराहट के बीच सुनाई पड़ रही थी।

एक चौमुहानी पर जगदीश ने टैक्सी रुकवा दी, और राजेन से कहा, "यहाँ से तुम्हें बस मिल जायेगी।"

राजेन सब कुछ भूल कर जैसे कहीं खो गया था। उसे जैसे देर से घर पहुँचने का भय भी नहीं हो रहा था।...और अगर रात-भर इसी तरह चलना पड़ता शायद तब भी घर की याद न आती।

"बस का किराया है न?" जगदीश ने पूछा।

उसके कानों में अभी तक मंजु की हँसी गूँज रही थी। वह अब टैक्सी से उतर कर फुटपाथ पर खड़ा था। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।...
[illegible]क्सी झटके से उसके सामने से निकल गयी और वह बहुत दूर तक उसकी [illegible]छे की लाल बत्ती को देखता रहा।

दो

लल्लन बाबू बेचैनी से सड़क पर टहल रहे थे। कहाँ रह गया वह।··· राजेन के पढ़ने न जाने का गुस्सा अब आशंकाओं में बदल गया था। वह कालेज पहुँचा भी या नहीं···कहीं कोई···दुर्घटना···। पर जोर देकर उन्होंने इस बात को दिमाग से दूर ढकेल दिया! टहलते-टहलते वे घर से काफी आगे निकल आये थे—जिधर नये मकान बन रहे थे।

घर से वे दूर ही थे, इसी बीच राजेन घर पहुँच गया। उसने दरवाजे पर दस्तक देने के साथ ही माँ को धीरे से आवाज दी। उसे अपना ही स्वर बहुत अजीब मालूम हुआ। किसी भयभीत का स्वर। वह सोच रहा था कि माँ के बदले पिताजी ही गुस्से में भर उठेंगे।

पर माँ ने ही दरवाजा खोला। भीतर जाते हुए वह हिचकिचाया। पर माँ ने कहा, "कहाँ रह गया था, सब लोग परेशान हो रहे हैं।"

वह कुछ बोला नहीं। चुपचाप घर में जाकर कपड़े बदले, अपनी लालटेन जलायी और एक किताब लेकर बैठ गया। इस भय में भी उसे एक बार मंजु की याद आयी—इस तरह उसे देखे तो क्या सोचेगी।

बूढ़ी नन्दो बुआ को भी उसके आने का पता चल गया था। उसकी माँ के पास आकर पूछा, "भैया आ गया? कहाँ रह गया था?···कहीं यार-दोस्तों के साथ गया था तो घर से बताकर जाना चाहिए था।"

दरवाजे पर फिर तेज दस्तक हुई। क्षोभ से भरे हुए लल्लन बाबू ने घर में दाखिल होते हुए ही कड़क कर पूछा, "आया नहीं वह! पता नहीं कहाँ मर गया!···सारी बस्ती तो घूम आया···!"

"क्यों असगुन मुँह से निकालते हो···" राजेन की माँ ने कहा, "आ गया वह!···देखो न कब से तो बैठा है।"

"आ गया? कब?" कहते हुए लल्लन बाबू उसके कमरे में घुसे। फिर बिगड़कर राजेन से पूछा, "कहाँ गया था?"

घुड़की, डाँट-डपट राजेन के लिए नई बात न थी। लेकिन ऐ मौके कम आये थे जब खुद वह अपने को अपराधी महसूस कर रहा हो वह भय से काँपने लगा।

लल्लन बाबू ने और तेज आवाज में पूछा, "जवाब क्यों नहीं देता ...कहाँ गया था? ..."

"एक दोस्त के साथ गया था।..."

"कौन है वह दोस्त?"

"मैं नाटक का रिहर्सल देखने गया था।"

लल्लन बाबू जैसे फट पड़े। माथे पर जोर से हाथ पटक कर कहा, "मैं तो तेरे लिए अपनी हड्डी तोड़ता हूँ, और तू नाटक देखने गया था?..." फिर वे बाहर जाकर एक बाँस की खपच्ची ले आये और राजेन पर अंधाधुंध पिल पड़े। राजेन ने एक-दो बार अपना हाथ उठाकर बचाव किया पर वह क्रोध की शक्ति के आगे व्यर्थ रहा। उस पर मार पड़ती रही।..

बाप-बेटे के बीच माँ आ खड़ी हुई। "कसम है जो तुम उसे आज जीता छोड़ो।"...और फिर राजेन को अपने शरीर से ढँक लिया। अब आँखों में रुके हुए आँसू फूट पड़े।

लल्लन बाबू ने चिल्ला कर कहा—"हाँ, हाँ! ऐसी औलाद से अच्छा है कि वह न रहे।'

बूढ़ी नन्दो बुआ कब से वहाँ खड़ी थी। अब वह बोली, "इतने बड़े लड़के पर हाथ छोड़ते हैं भला!" लल्लन बाबू को कुछ नरमाते देख उसने उसके हाथ से डंडा ले लिया। लेकिन अभी भी वे बड़बड़ा रहे थे, "कौन है वह तेरा दोस्त?...जल्दी बता?"

अब माँ भी उसे समझाने लगी, "तू अपने बाबू का कहा क्यों नहीं मानता!...तेरे लिए ही हम लोग इतनी हापा-पीटी करते है!.."

राजेन चुप बैठा रहा। नन्दो बुआ बीच में आयी। राजेन की माँ को एक ओर खींचकर कहा, "अच्छा, तू चल! रोटी-पानी दे इन्हें।... और तुम भी चलो भैया...हाथ-पैर धोओ।...लड़का है, नादानी हो जाती है।...उठो!"

जिस दिन मार पड़ी उसके बाद फिर कभी राजेन देर से घर नहीं आया। लेकिन इसका कारण बाबू की मार का डर नहीं था। दरअसल अपने प्रति बाबू का व्यवहार उसे बहुत अनुचित, बहुत भोंडा लगा था और वह इस तरह का मौका दुबारा नहीं आने देना चाहता था। पर इस तरह के अवसरों की कमी नहीं थी।

अब उसके आगे सिर्फ लल्लन बाबू की आँख से देखी गई दुनिया नहीं थी। कालेज की पढ़ाई में रोज-ब-रोज नयी-नयी बातों की जानकारी, और तरह-तरह के लोगों से सम्पर्क। कई तरह के विचारों के लोग, कांग्रेसी, कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट, जनसंघी। अक्सर किसी-न-किसी की सभाएँ हुआ करतीं। उसका इनमें से किसी से निकट का सम्बन्ध नहीं था। लेकिन उन सबसे तटस्थ रहते हुए भी निर्लिप्त नहीं रह सकता था। प्रकट-अप्रकट रूप से उनका प्रभाव उसके व्यक्तित्व में उतरता जा रहा था। फिर जगदीश! जो रद्दी कागज के टुकड़ों की तरह बात-बात पर नोट उड़ाता था—खूब सिगरेटें पीता था, खूब सिनेमा देखता था और खूब घूमता था। कालेज में और बाहर दोस्तों की लम्बी जमात उसके इर्द-गिर्द मँडराती रहती।...और अब उसके ऊपर मंजु!

एक दिन बातों-बातों में जगदीश से पता चला—रोज वह बीस-पच्चीस रुपये तो खर्च कर ही देता होगा...यानी छः-सात सौ रुपया महीना।

उस शाम घर पहुँचा तो माँ से पूछा—"पिताजी कितनी तनख्वाह पाते हैं?"

माँ ताज्जुब से उसकी ओर देखने लगी—"क्यों? मुझे पता नहीं।"

"क्यों? पता क्यों नहीं है?"

"नहीं है!...तुझे रुपयों की जरूरत है क्या?"

"नहीं-नहीं! यों ही पूछ रहा था।"

"शायद दो सौ मिलता है।...कभी...कभी मैं किसी बात के लिए रुपये के लिए कहती हूँ और रुपये न रहें तो यही कहते हैं—"दो सौ में क्या-क्या हो—पर ठीक पता नहीं रे! तू कहता है तो उनसे पूछ लूँगी।..."

"नहीं-नहीं, पूछना मत ! मैं इसीलिए पूछ रहा था कि उन्हें ज्यादा तलखवाह क्यों नही मिलती। ज्यादा मिलती तो कितना अच्छा रहता।"

"दुनिया मे किसी को कम मिलता है, किसी को ज्यादा···!"

"हाँ, ऐसा ही होगा !···मेरा एक दोस्त छ:-सात सौ रुपये सिर्फ अपने ऊपर खर्च करता है।···"

माँ उसकी ओर बहुत देर तक उदास सूनी आँखों से देखती रही थीं।

उसके बाद उसने पहली बार आसपास की दुनिया के आईने मे अपने को देखा।

उसकी आँखों की उदासी जैसे पहले से बढ़ गयी। वह अपने पढ़ने की मेज पर लालटेन के आगे बहुत देर तक किताब खोले यों ही बैठा रहा। जब आँखें दुखने लगीं तो लालटेन बुझाकर बिस्तर पर पड़ गया लेकिन रात बहुत देर तक नींद नहीं आयी।

सुबह वह देर से उठा तो लल्लन बाबू को कुछ ताज्जुब हुआ। पूछा—"तबीयत तो ठीक है ?"

राजेन ने कोई उत्तर नही दिया। लल्लन बाबू ने फिर पूछा तो 'हूँ' करके रह गया।

लल्लन बाबू ने पास आकर उसकी नब्ज देखी, माथे और पेट पर हाथ रखकर निश्चित कर लिया कि बुखार नही है तब उन्हें इत्मीनान हुआ।

लेकिन राजेन नहाने-धोने और कालेज की तैयारी करने में भी अलसाया-सा रहा। लल्लन बाबू ने सोचा, शायद सर्दी की वजह से भीतरी बुखार होगा—आते वक्त कोई दवा ले लेंगे, कोई टिकिया—नही-नहीं ! जुकाम रफा जोशान्दा—सारा जुकाम कफ ढीला करके निकाल देगा।

सर्दी लगे भी क्यों न ! एक स्वेटर और कमीज पर जाड़ा काट रहा है—एक कोट भी चाहिए—अगले माह एक कोट का इन्तजाम करेंगे किसी तरह। खादी भण्डार की पट्टू की सिली-सिलाई कोट बन्द गले की अच्छी होगी।···सस्ती भी पड़ेगी।·· लल्लन बाबू ज्यादा देर तक नही सोच सके। उन्हें दफ्तर की जल्दी थी। कैश की हफ्तेवारी

रिपोर्ट बनाकर हैड आफिस भेजनी थी वे जल्दी जल्दी घर से बाहर हो लिये।

राजेन भी तैयार हो चुका था पर कालेज वह अनिच्छापूर्वक ही जा रहा था। दस बज रहे थे, साढ़े दस बजे से घंटे लगते है और अभी कालेज तक जाने के लिए बस पकड़ने की जगह भी दो मील दूर थी। पर कदमों मे कोई सुस्ती नही। चाल में तेजी नहीं। चाह कर भी जैसे चल नही पा रहा है।

—सडक पर नये मकानों की एक पाँत तैयार हो गयी है।···कुछ मे दरवाजे-खिडकियाँ लग रही हैं, कुछ में पलस्तर हो रहा है। उनके आगे छोटी-छोटी फुलवारियों के लिए जगहे छोड़ दी गई है—उधर देखना सुखद लगता है।

दिन-रात उधर धूल उड़ाती ट्रकों का ताँता लगा रहता है। सडक अभी नही बनी। इसलिए सारी सड़क पर वजनी ट्रकों के दौड़ने से जगह-जगह खूब धूल हो गई है। चलते हुए पैर उसमे धँसते है और जूतों में भी धूल भर जाती है।

लेकिन इसके पहले जूतों में धूल भरने से परेशानी का एहसास नही हुआ था।

वह मन-ही-मन अपने दोस्तों से अपनी तुलना करने लगा था। किस तरह रहते है वे। जगदीश कैसे ठाट के कपड़े पहनता है, हमेशा नये-नये फैशन के, और त्रिभुवन हमेशा साफ-धुली पैंट-कमीज पहनता है, और एक वह—हमेशा घर की धुली पुराने ढग की कमीज और पाजामा पहनता है। बाबू पता नही क्यों वैसे कपड़े उसे नही बनवाते ? शायद पैसे नहीं रहते होंगे—पर क्लास के सभी लड़के तो जगदीश और त्रिभुवन नही हैं। गोपाल का बाप मिल मे मैकेनिक है, हरी के बाबू पोस्ट आफिस में क्लर्क है—पर वे सब साफ-सुथरे धुले कपड़े पहनते है।···अन्दर ही अन्दर कुछ सुलग रहा था। घर लौटने पर उसने माँ से पैसे माँगे।

"क्या करेगा ?"

"मेरे कपड़े देखो न ! कितने खराब है। इन्हें पहनकर कालेज मे

नहीं जा सकता।

"क्यों, ठीक तो हैं ये, कहीं फटे तो नहीं है ?"

"ऊँह ! तुझे क्या पता। इस तरह के कपड़े आजकल कोई नहीं पहनता, सिर्फ बूढे लोगों के सिवा।···पता नहीं, बाबू कहाँ से ये सिले सिलाये कपड़े ले आते है, ठीक से बदन पर बैठते भी नहीं।···" सहसा वह चुप हो गया।

बाबू की खुलेआम आलोचना उसने कभी नहीं की थी। माँ ने कहीं बाबू से यह कह दिया तो वे क्या कहेंगे ?···

एक नया तर्क मन मे उठने लगा—कही बाबू ठीक ही तो नहीं कहा करते कि 'कपड़ों से आदमी नहीं जाना जाता।' मन में एक डर बैठ गया जैसे। चाहा, माँ से कहे कि बाबू से कुछ नहीं कहेंगी। पर कह नहीं पाया।

छुट्टन नाई घर-घर घूमकर हजामत बनाया करता था। लेकिन अब नई बस्ती के बीच में बसने वाले 'मार्केट' में दुकानें उठने लगी तो अपनी औरत का गहना-गुरिया बेचकर उसने एक सैलून खोल लिया और घर-घर घूमकर बाल बनाना बन्द कर दिया। दूकान में शीशे फिट करा लिये, बढ़िया कुर्सियाँ रख लीं, हजामत बनाने के नये-नये सामान। अभी वहाँ कोई खास आबादी न होने से ज्यादातर वह बैठा ही रहता और कभी-कभी आईने के सामने बैठ अपने ही चेहरे पर उस्तरा फेरता— लेकिन घर-घर जाकर हजामत बनाना उसने बन्द कर दिया, बुलाने से भी नहीं जाता।

लल्लन बाबू उसी से बाल बनवाते थे, पर छुट्टन ने घर आना बन्द कर दिया तो उन्होंने उससे हजामत बनवाना भी बन्द कर दिया। कहते—एक तो उसके सैलून तक जाओ, दूसरे पैसे भी ज्यादा दो।

राजेन एक इतवार को छुट्टन के सैलून मे बाल कटवा आया। नये फैशन का बाल कटवाया था उसने—और लल्लन बाबू की निगाह मे यह उसका खुला विद्रोह था। व्यंग्य से राजेन से कहा—"जुल्फी रखा लेने से नहीं पढ़ा-लिखा कहा जायेगा।" पर बात यहीं खतम नहीं हुई।

गुस्से में भरे छुट्टन के सैलून पर पहुचे और कहा क्यों रे छुटना मेरी इजाजत के बगैर तूने राजन का बाल क्यों बनाया और बनाया ही तो जुल्फी क्यों छोड़ दी ?"

छुट्टन ने समझाया—"अरे मुंशी जी ! अब भैया बड़े हो रहे हैं ! जैसा कहेंगे, मुझे वैसा ही करना पड़ेगा।···फिर अब उनका बाल वैसा ही कटना चाहिए।"

लेकिन इस पर भी लल्लन बाबू का गुस्सा कम नहीं हुआ। अब छुट्टन भी बिगड़ गया—"देखिए मुंशी जी ! ज्यादा अंट-संट मत बकिये, नहीं तो कहे देता हूँ···!"

लल्लन बाबू भीतर ही भीतर उफनते घर आ गये और धस्स से चारपाई पर बैठ गये। सारा गुस्सा राजेन पर घूम गया—"अब यह कमीना और वह नाई मिलकर मेरी इज्जत लेने पर तुल गये हैं।···"

राजेन की माँ सहमी हुई-सी उन्हें देखती रही। राजेन भी अपराधी की तरह आँख नीचे किये खड़ा रहा। किसी से कुछ कहते नहीं बन रहा था।

नन्दो बुआ ने भी समझाया कि—लड़के को कलक्टरी-बालिस्टरी पढ़ा रहे हो तो उस तरह रखना भी तो पड़ेगा—अब नाहक बिगड़ते हो। पर उसका भी असर लल्लन बाबू पर नहीं हुआ और वे बहुत देर तक बड़बड़ाते रहे। राजेन को बाल छोटे नहीं करवाने पड़े तो सिर्फ इसलिए कि दुबारा पैसे देने पड़ते।

तीन

राजेन और कई बार रिहर्सल देखने गया। रिहर्सल या नाटक से उसे कोई लगाव नहीं था। सिर्फ मंजू का आकर्षण उसे वहाँ खींच ले जाता। पर घर भी वक्त से पहुँचना होता इसलिए हमेशा बीच में ही उठकर उसे चला आना पड़ता।

अब घोषाल बाबू मंजु के साथ न आते। दो-चार बार के बा
उन्होने आना बन्द कर दिया। अब मंजु जगदीश के साथ ही आती। मं
ने दो-एक बार नमस्ते करने के अलावा कभी उससे बात नहीं की औ
वह अपनी ओर से कोई बात शुरू नहीं कर पाया।

अक्सर जब जगदीश और मंजु भी साथ निकलते तो वे पहले दिन
की तरह राजेन को जहाँ से बस मिलती, वहाँ तक साथ-साथ टैक्सी से
आते। उसे खुशी होती जब जगदीश मंजु के लिए कुछ करने को कहता।
वह कहता—"टैक्सी लाओ एक"—राजेन खुशी से चला जाता। वह
कहता, "मंजु के लिए रेस्तराँ में एक कप चाय बोल दो"—वह खुशी से
कर देता।

कभी-कभी रास्ते में वे एक रेस्तराँ मे चाय पीने के लिए भी रुकते।
राजेन की इच्छा होती, वह देर तक उनके साथ रहे, कम से कम जगदीश
के घर तक जो शहर के दूसरे छोर पर था और जहाँ तक पहुँचने मे आध
घंटे से अधिक ही लगता था। लेकिन बाबू कहीं नाराज न हों, इस डर से
उसे चला ही जाना पड़ता।

एक दिन जगदीश ने रिहर्सल के बीच ही उठकर राजेन से कहा—
"मैं एक काम से जा रहा हूँ, तू जरा मंजु को छोड़ आना।"

अकेले मंजु के साथ! इसकी कल्पना से ही वह मुदित हो उठा।
लेकिन रिहर्सल खत्म होगा शाम को और वह उतनी देर तक रुक नहीं
सकता था। उसने कहा - "मुझे तो जल्दी जाना पड़ता है।"

"तो वो भी जल्दी ही जायेगी" मैं उससे कह देता हूँ।"

जब वे चले तो एक समस्या सामने आयी। टैक्सी से चलने की।
जगदीश शायद टैक्सी के लिए पैसे देना भूल गया था और राजेन के पास
सिर्फ बस के अपने किराये भर को पैसे थे। मंजु ने कहा कि वह रुपया
लेकर नहीं चलती। सिर्फ एक दो रुपये का नोट उसके बैग में पड़ा था।
उसमें टैक्सी नहीं हो सकती थी। अनिश्चय की स्थिति में दोनों कुछ दूर
तक चुपचाप चलते रहे। राजेन को लगा वे बहुत देर से साथ-साथ चलते
रहे हैं। कहा—"क्यों न हम लोग बस ही ले लें।"

"मैं भी सोचती हूँ।" मंजु ने कहा।

लेकिन इधर से एक ही बस जाती है शायद काफी देर तक इन्तजार करना पड़े।

"कर लेंगे !" मंजु ने इस तरह कहा जैसे इन्तजार उसके लिए कोई नयी बात न हो।

कुछ देर वे बस-स्टाप पर खड़े रहे। भीड़ धीरे-धीरे बहुत बढ़ गयी। अब आये भी बस तो मिलनी मुश्किल होगी। राजेन ने कहा, "हम लोग आगे वाले डिपो तक चले चलें। सिर्फ दो-तीन फर्लांग दूर है, वहाँ आराम से बस मिलेगी।"

मंजु उसके साथ चल दी। उनके बीच बात-चीत फिर बन्द थी। वह मौन जैसे टूटेगा नहीं।

डिपो से तुरन्त कोई बस जाने वाली नहीं थी। एक बस खड़ी थी, बीस मिनट बाद जायेगी। दोनों उसी में जा बैठे। पूरी बस खाली थी। जिस सीट पर मंजु बैठी, उस पर वह नहीं बैठा। उससे अलग, उसके सामने वाली सीट पर बैठा। मंजु के चेहरे पर हल्के से कौतूहल का भाव उभरा। फिर पूछा, "आप उतनी दूर अलग क्यों बैठे ?"

"फिर कहाँ बैठूं ?" राजेन ने बड़ी कोशिश मे उसकी बात का माकूल उत्तर दिया।

वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। ऐसी खुली, उन्मुख हँसी उसकी नहीं देखी थी उसने। सचमुच जैसे किसी बात से मंजु का बहुत मनोरंजन हुआ हो। हँसना रुका तो उसने कहा,—"आप बहुत शर्मीले हैं।...आप मेरे साथ बैठते तो भी मुझे कोई एतराज न होता।...बस में भीड़ होती तो ?"

"तब देखा जाता !"

बस भरने लगी। एक अधेड़-सा आदमी और कहीं जगह न मिलने से मंजु की सीट पर ही उसी के साथ बैठ गया। राजेन सोचने लगा कि यह मंजु के साथ ही बैठा होता तो अच्छा होता...तभी मंजु अपनी सीट से उठी और आकर राजेन के साथ बैठ गयी। वह थोड़ी देर की यात्रा कई दिनों तक उसके दिमाग पर छाई रही।

सड़क के जिस ओर लल्लन बाबू का मकान है, उस लाइन में भी नये मकान बनने शुरू हो गये हैं। एक मकान ठीक उस घर के पीछे बन रहा है। सुबह उधर से गुजरते हुए राजेन ने देखा, कुछ आदमी और मजदूर वहाँ जमीन की नाप-जोख कर रहे थे और शाम को लौटे तो देखा कि चार-चार फुट गहरी नीवें खुद गयी थीं जिनके आगे खोदी हुई भुरभुरी मिट्टी के ढूह लगे थे। फिर नीव में देने के लिए गिट्टियाँ कूटी जाने लगीं और ट्रकों में भर-भरकर ईंटें पहुँचने लगीं। एक दिन सवेरे राजेन ने देखा, जमीन से एक-एक फुट ऊँची दीवारें उठ आयी थीं। जैसे ईंट-मिट्टी बो दी गयी हो और मकान उग रहा हो। पढ़ने जाते समय वहाँ एक परिचित शक्ल दिखाई दी। रिहर्सल में उन्हें कई बार देखा था। नाम था रामलखन जी। हाँ, वही तो थे। सड़क के ही किनारे सिगरेट पीते हुए खड़े थे और बनते हुए मकान का मुआयना कर रहे थे। उनकी भी निगाह उस पर पड़ी। जगदीश ने कभी उनसे उसका परिचय नहीं कराया था लेकिन शक्ल से तो पहचानते थे। "अरे भाई, तुम यहाँ कहाँ? यहीं रहते हो क्या?"

"हाँ!"

"कहाँ, कौन-सी कोठी है? बड़ा अच्छा है, हम भी तुम्हारे पड़ोसी हो रहे हैं।"

जिस तरह रामलखन जी ने प्रश्न किया, उससे राजेन को अपना घर बताने में झेंप महसूस हुई। उसने चुपचाप अपने मकान की तरफ इशारा कर दिया।

रामलखन जी को थोड़ी निराशा हुई जिसे छिपाने की कोशिश करते हुए उन्होंने कहा, "अच्छा! तो इधर के पुराने बाशिन्दे हो। चलो भाई बड़ा अच्छा है।"

"ये मकान आपका ही बन रहा है?"

रामलखन जी जैसे किसी से बताने के लिए उतावले हो रहे थे।

"हाँ, भाई! मैंने सोचा कि जिन्दगी में बहुत करके ही क्या किया गर एक मकान नहीं बनवाया। सोचा इसे भी पूरा कर लूँ।"

रामलखन जी ने क्या-क्या कहा, उसे सब समझ में नहीं आया। वह

सिर्फ सुनता रहा उनकी बात—

"अब हाथ तो लगा दिया है इस काम में, [illegible] है। कोई एक झंझट नही है। अभी नक्शा पास नहीं हुआ [illegible] सीमेंट का परमिट मिलने में दिक्कतें।...फिर [illegible] कम्पलीशन सर्टिफिकेट का झंझट।......बाबा रे, बाबा! [illegible] भाई, राम का नाम लेकर शुरू करा दिया है काम [illegible] होता है।"

लेकिन इन दिक्कतों के बावजूद एक पखवारे में मकान [illegible] की दीवारें चुन गयी।

इस बीच रामलखन जी से दो-एक बार और उनकी [illegible] रिहर्सल रोज चल रहा था। हाँ, वहाँ वे कभी-कभी ही दिखाई देते।

लल्लन बाबू ईंट ईंट जोड़कर उठते मकानों को अब भी देखा करते।

लेकिन जब से बगल वाला मकान बहुत ज्यादा [illegible] में भी काम होता है—जोड़ाई के लिए गारा तैयार करने [illegible] के सहारे एक हंडा लटका दिया गया है। उसमें मिट्टी, [illegible] डालकर जोर-जोर से घुमाते हैं...रात-भर वह घडर-घडर [illegible] —रात भर छत पीटी जाती, फट्-फट्-फट्...जैसे अपने ही [illegible] कोई ठोकर मारता हो।...ईंटें जोड़ते हुए मजदूरों का [illegible] 'गारा लाओ।'...'ईंट लाओ।'...हथौड़ी से ठोक-पीट कर [illegible] बैठाना।... रात भर जैसे सोना मुहाल रहता है।

मकान-मालकिन नन्दो बुआ भी बड़बड़ाती है—"घर [illegible] रहा है, करमजरों के मारे आराम करना मुहाल है।...जैसे और [illegible] ने घर थोड़े ही देखा।...एक वही तो घर वाले है और तो [illegible] हैं।"

लल्लन बाबू बहुत देर तक सोने की कोशिश करते रहे [illegible] झपने को होती है कि किसी ठक्...ठक्...पर खुल जाती है। [illegible] से बहुत थके हुए आये थे। सोचा था जल्द सो रहेंगे।

सड़क के जिस ओर लल्लन बाबू का मकान है, उस लाइन में भी नये मकान बनने शुरू हो गये है। एक मकान ठीक उस घर के पीछे बन रहा है। सुबह उधर से गुजरते हुए राजेन ने देखा, कुछ आदमी और मजदूर वहाँ जमीन की नाप-जोख कर रहे थे और शाम को लौटे तो देखा कि चार-चार फुट गहरी नीवें खुद गयी थीं जिनके आगे खोदी हुई भुरभुरी मिट्टी के ढूह लगे थे। फिर नीव में देने के लिए गिट्टियाँ कूटी जाने लगी और ट्रकों मे भर-भरकर ईंटें पहुँचने लगी। एक दिन सवेरे राजेन ने देखा, जमीन से एक-एक फुट ऊँची दीवारें उठ आयी थी। जैसे ईंट-मिट्टी बो दी गयी हो और मकान उग रहा हो। पढ़ने जाते समय वहाँ एक परिचित शक्ल दिखाई दी। रिहर्सल मे उन्हे कई बार देखा था। नाम था रामलखन जी। हाँ, वही तो थे। सड़क के ही किनारे सिगरेट पीते हुए खड़े थे और बनते हुए मकान का मुआयना कर रहे थे। उनकी भी निगाह उस पर पड़ी। जगदीश ने कभी उनसे उसका परिचय नही कराया था लेकिन शक्ल से तो पहचानते थे। "अरे भाई, तुम यहाँ कहाँ ? यही रहते हो क्या ?"

"हाँ !"

"कहाँ, कौन-सी कोठी है ? बड़ा अच्छा है, हम भी तुम्हारे पड़ोसी हो रहे हैं।"

जिस तरह रामलखन जी ने प्रश्न किया, उससे राजेन को अपना घर बताने में झेंप महसूस हुई। उसने चुपचाप अपने मकान की तरफ इशारा कर दिया।

रामलखन जी को थोड़ी निराशा हुई जिसे छिपाने की कोशिश करते हुए उन्होंने कहा, "अच्छा ! तो इधर के पुराने बाशिन्दे हो। चलो भाई बड़ा अच्छा है।"

"ये मकान आपका ही बन रहा है ?"

रामलखन जी जैसे किसी से बताने के लिए उतावले हो रहे थे।

"हाँ, भाई ! मैंने सोचा कि जिन्दगी में बहुत करके ही क्या किया अगर एक मकान नहीं बनवाया। सोचा इसे भी पूरा कर लूँ।"

रामलखन जी ने क्या-क्या कहा, उसे सब समझ में नहीं आया। वह

सिर्फ सुनता रहा उनकी बात

"अब हाथ तो लगा दिया है इस काम में, देखे कब पूरा होता है। कोई एक झंझट नहीं है। अभी नक्शा पास नहीं हुआ, हुआ तो सीमेंट का परमिट मिलने में दिक्कतें।···फिर ओवरसियर की जाँच, कम्पलीशन सर्टिफिकेट का झंझट।······बाबा रे, बाबा।······लेकिन भाई, राम का नाम लेकर शुरू करा दिया है काम, देखो कब पूरा होता है।"

लेकिन इन दिक्कतों के बावजूद एक पखवारे में मकान के एक हिस्से की दीवारें चुन गयीं।

इस बीच रामलखन जी से दो-एक बार और उसकी बात हुई। रिहर्सल रोज चल रहा था। हाँ, वहाँ वे कभी-कभी ही दिखाई देते।

लल्लन बाबू ईंट ईंट जोड़कर उठते मकानों को अब भी देखा करते।

लेकिन जब से बगल वाला मकान बहुत ज्यादा बढ़ गया है, रात में भी काम होता है—जोड़ाई के लिए गारा तैयार करने के लिए बाँस के सहारे एक हंडा लटका दिया गया है। उसमें मिट्टी, कंकड, पानी डालकर जोर-जोर से घुमाते हैं···रात-भर वह घड़र-घड़र करता रहता—रात भर छत पीटी जाती, फट्-फट्-फट्···जैसे अपने ही दिमाग पर कोई ठोकर मारता हो।···ईंटें जोड़ते हुए मजदूरों का चिल्लाना—'गारा लाओ।···ईंट लाओ।'···हथौड़ी से ठोंक-पीट कर ईंटों का बैठाना।··· रात भर जैसे सोना मुहाल रहता है।

मकान-मालकिन नन्दो बुआ भी बड़बड़ाती है—"घर क्या बन रहा है, करमजरों के मारे आराम करना मुहाल है।···जैसे और किसी ने घर थोड़े ही देखा।···एक वही तो घर वाले है और तो सब बेघर हैं।"

लल्लन बाबू बहुत देर तक सोने की कोशिश करते रहे, पर आँख झपने को होती है कि किसी ठक्···ठक्···पर खुल जाती है।···दफ्तर से बहुत थके हुए आये थे। सोचा था जल्द सो रहेंगे।

झल्ला कर उठ बैठ वे। खिड़की से देखा—गैस बत्तियाँ जला मजदूर लगे है काम में, उनकी परेशानी से बेखबर। उन्होंने चादर डाली और गुस्से में भरे बाहर निकल पड़े। छूटे हुए र की तरह जहाँ मकान बन रहा था वहाँ पहुँचे और चिल्ला कर क "यह शोरगुल बन्द करो!··· आसपास के लोगों की नींद हराम रही है।"

मजदूरों पर कोई असर नहीं हुआ। शोरगुल में उन्हें सुनाई भी प उनकी आवाज या नहीं। अजीब मोटी चमड़ी के बने हैं, बेहया।

लल्लन बाबू फिर चीखे—"अजी सुनते हो, तुम लोग!"

मजदूरों का एक मेट बाँस की सीढ़ी से नीचे उतरा।

"क्या बात है बाबू साहब?"

"बात क्या है!···तुम लोग इतना शोर मचा रहे हो कि सोन मुहाल हो गया है।···धीरे-धीरे काम करो।"

"कैसे धीरे-धीरे काम करें। हमें आर्डर हुआ है जल्दी काम पूर करने का। जैसा कहेंगे, वैसा करेंगे।"

"लेकिन ये ठोक-पीट इतनी क्यों हो रही है?"

"वह तो साहब होगा ही।···उसे कैसे रोक सकते हैं।··· और लोग भी तो हैं, और तो कोई नहीं आया?··· आप मालिक से कहिए। हमें तो अपना काम पूरा करना है।"

"कौन है तुम्हारा मालिक?" लल्लन बाबू ने कड़क कर कहा। मेट की दो-टूक बात पर उनका गुस्सा और बढ़ गया था। पर उस पर जैसे कोई असर नहीं। वह फिर काम करते हुए अपने साथियों में जा मिला।

लल्लन बाबू गुस्से में भरे लौट आये। नींद पहले ही नहीं आ रही थी, अब तो पूरी तरह भाग गयी। अँधेरे में एकटक छत की ओर ताकते रहे। हुँह! ये मजदूर किसी को कुछ समझते ही नहीं। बात करने की भी तमीज नहीं। पता नहीं अपने को क्या समझते हैं।···फिर नका क्षोभ और बढ़ गया—मैं इस छोटे से मकान से रहता हूँ इसीलिए मजदूरों को मेरी परवाह नहीं।···अपने नगण्य अस्तित्व के बोध से वे

बहुत अधिक दुखी हो उठे। सिर मे तेज दर्द होने लगा। आँखो मे जैसे कोई बहुत कड़वी चीज पड़ गई हो।···आधी रात के बाद जब मजदूर खुद काम मे कुछ धीमे पड़ गए तब कही ललन बाबू को नीद आ सकी।

रामलखन जी अब रिहर्सल मे कम आते है। रिहर्सल रोज होता है। ठीक वक्त से लोग आ जाते, डाइरेक्टर अतुल बाबू पूरी लगन से निर्देशन करते हैं। लोग काम भी उसी लगन से करते है। कार्यक्रम का दिन भी नजदीक आता जा रहा है। बिना सज्जा के दो-दो बार डाइरेक्टर की मदद के बिना रिहर्सल के तौर पर पूरा नाटक खेला जा चुका है। फुल ड्रेस रिहर्सल के पहले रही-सही कसर अतुल बाबू पूरी कर लेना चाहते हैं। खलनायक के पार्ट मे जरा-सी कसर रह गई है। सब तो वह ठीक कर लेता है, सिर्फ नायिका के अपहरण के स्थल पर उसका पार्ट बार-बार बिगड जाता है। अतुल बाबू खीझ उठते है पर धैर्यपूर्वक स्वय वह पार्ट करके बताते हैं—अनिश्चय मे पडी नायिका मंजु को अर्धालिगन की अवस्था मे बलपूर्वक अपने साथ चलने के लिए बाध्य कर देते है। उस वक्त कैसा अजीब तो लगता है राजेन को! अतुल बाबू कितनी स्वाभाविकता से यह करते हैं, उनके चेहरे के भाव मे सचाई रहती है, मानो सचमुच उसका अपहरण कर रहे हों।

लेकिन इन सबके बावजूद एक सिर्फ रामलखन जी के न रहने से आयोजन की सारी रौनक जैसे मर गयी है, एक तो वे कभी-कभी ही आते है, फिर आते भी हैं तो पहले की तरह पूरे रिहर्सल के समय तक नही बैठते। एक कोने मे बिछी हुई दरी पर पीछे की ओर कुछ उदासीन से बैठ जाते है, फिर थोड़ी देर बाद चले जाते है।

कई दिनों बाद आज वे आये थे। लोगों ने बुलाया, "आ जाइये रामलखन जी! अरे आगे आइये न!"

"अरे ठीक है। यहीं क्या बुरा है, आप लोग काम करो।"

"आपके दर्शन ही दुर्लभ हो गये हैं···"

"अरे भाई! आप लोग तो नाटक कर लेंगे। छुट्टी पा जायेंगे। लेकिन असली काम तो मेरे ही जिम्मे है···। जानते ही हो, आप

लोग ···।" कहते हुए रामलखन जी ने तर्जनी को अँगूठे से मिलाकर ठनठनाने की मुद्रा बनायी, यानी बताया कि रुपये का इन्तजाम उन्हीं को करना है।

थोड़ी देर बैठे रहे वे। चाय पी चुके तो जवाहिर जाकिट की जेब से सिगरेट की डिबिया निकाल कर सिगरेट सुलगायी। फिर उठकर अपने जाने की घोषणा कर दी।

रिहर्सल में डायलाग बतलाते-बतलाते, अतुल बाबू उनकी ओर मुखातिब हुए, "अरे ठाकुर साहब ! अभी तो आप आये ही हैं।"

"हाँ, भाई ! लेकिन यहीं बैठा रहकर आप लोगों का क्या भला कर पाऊँगा ! आखिर आप लोग भी मेहनत कर रहे हैं।"

अतुल बाबू इशारा समझ लेते हैं। कहा—"लेकिन आपके न रहने से महफिल जमती नहीं, रामलखन बाबू !"

सिगरेट का धुआँ गले में फँस गया। रामलखनजी खुल कर हँस नहीं पाये। फिर कहा, "क्यों बनाते हो भाई ! अब महफिलों में बैठने की उम्र नहीं रही। बाल सफेद हो चले, यों आप सबके बीच बैठकर सचमुच यह भूल जाता हूँ।"

"फिर बैठ ही जाइये न !"

"अरे भाई, कैसे बैठ जाऊँ !" रामलखन जी ने स्वर में हल्की घुडकी का भाव लाकर कहा, "क्या मेरे ही बैठने से काम होगा ?···" फिर नरमी से कहा, "आप लोगों का काम ढर्रे पर नहीं था, बैठता था।" अब धीरे-धीरे ढर्रे पर आ गया।··· मुझे विश्वास हो गया कि आप सब पर भरोसा किया जा सकता है। बस मेरा काम खत्म।···" फिर सामूहिक रूप से सबको नमस्कार कर रामलखन जी हाल के बाहर निकल गये।

एक नया मकान कई महीने से आधा बन कर पड़ा हुआ है। ईंटों की चिनाई हो चुकी थी, दो कमरे बन गये और उन पर छत भी पड़ गयी थी। अगले दिन रघुनाथ साव की दुकान पर कुछ स्थूल शरीर के, सफेद बालों वाले एक सज्जन सौदा लेने आये तब उनके बारे में सारा ब्योरा

मालूम हुआ ।

गवर्नमेन्ट स्कूल में मास्टर थे। इसी जिले के ही रहने वाले हैं। रिटायर होने के बाद अब शहर में ही बसना तय किया, इसीलिए मकान बनवाना शुरू कर दिया, पूरा नहीं हुआ, मगर सोचा, अब बेकार किराया देते जाने का क्या फायदा, घर में ही रहना शुरू कर दें तो मकान भी पूरा होता रहेगा। नाम है जगन्नाथ राय।

रघुनाथ साव अखबार लेने लगे हैं। लेने ही नहीं लगे हैं, बस्ती बढ़ने के कारण अपनी व्यावसायिक बुद्धि के अनुसार कुछ साप्ताहिक अखबार रखने भी लगे हैं।...और चाय-शर्बत की दूकान को बिसातखाने की दूकान से अलग कर उसे नये ढंग के एक छोटे-मोटे रेस्तराँ की शक्ल दे देना चाहते हैं। मार्केट में इसलिए नहीं गये कि अपनी तरफ की सड़क के पच्चीस-तीस घरों के लिए तो उन्हीं की दूकान नजदीक पड़ेगी। वे भी ग्राहक लग जायेंगे तो बहुत है।

मास्टर साहब सुबह उनकी दूकान पर बैठ कर अखबार पढ़ा करते हैं। वहीं लल्लन बाबू से भी अक्सर भेंट होती है।...जो अब धीरे धीरे मित्रता में बदल गई है। शाम को लल्लन बाबू के दफ्तर से लौटने के बाद अक्सर उन्हीं के यहाँ आकर देर तक बैठते और बातचीत करते हैं। कभी उन्हें अपने यहाँ बुला ले जाते हैं।

उनकी बातचीत कुछ खास विषयों के इर्द-गिर्द घूमती है। अनुभव और अखबारी ज्ञान से भरी-पूरी बातें।

—क्या तीसरी लड़ाई छिड़कर रहेगी? बड़ी तबाही फैलेगी।... कहते हैं बारह-बारह कोस पर दीया जलेगा।

—रूस वालों ने कह दिया है कि वे किसी भी तरह की लड़ाई के खिलाफ हैं।

—और अपने यहाँ तो अजीब हालत है, बाजरा गेहूँ से महँगा है। लोगों की तकलीफें कितनी बढ़ गई हैं। समझ में नहीं आता क्या हो रहा है। देखते-देखते जमाना क्या से क्या हो गया। लेकिन पता नहीं इतने मकान कहाँ से बनते जा रहे हैं? कहाँ से पैसा पाते हैं लोग? अपनी बस्ती को देखिए न! मैंने तो जिन्दगी भर की कमाई लगा दी, फिर भी

नही पूरा हो पाया, एक ये लोग है कि रोज एक-एक मकान खड़ा करते जाते हैं।

इसी तरह की बातें वे लोग देर तक बैठकर बतिआया करते। राजेन कभी उनमें दिलचस्पी लेता, कभी नही !

चार

कई दिन से रिहर्सल बन्द था। राजेन कुछ समझ नही पाया क्यों ! जगदीश भी नही आया कि उससे उसकी वजह पूछता। जहाँ रिहर्सल होता, वहाँ वह रोज ही जाता था। पर हर रोज वह हाल जहाँ रिहर्सल होना था, सूना मिलता ! शायद जगह बदल दी गयी हो, या किसी और वक्त करते हों। उस जगह के चौकीदार से भी पूछा, लेकिन वह भी कुछ बता नहीं सका। सिर्फ इतना ही पता चल सका कि वे लोग अब यहाँ नही आते।

इसके पहले एक दिन और कुछ दूर तक मंजु से उसका साथ हुआ था। मंजु की तबीयत एकाएक ही कुछ भारी हो गयी थी इसलिए वह रिहर्सल खतम होने के काफी पहले ही चल दी। चलते-चलते उसने यों ही बड़े सहज भाव से पूछ लिया—"कहिये, राजेन बाबू ! आप भी चल रहे है।"

राजेन को भी जल्दी ही जाना रहता था। पर मंजु के इस तरह पूछ लेने से उसे हिचकिचाहट होने लगी। उसके पास ही जगदीश बैठा था। उसने राजेन की हिचकिचाहट की ओर ध्यान नही दिया, और कहा, 'जाना है तो तुम भी चले जाओ ! थोड़ी दूर तक छोड़ ही देना इसको।''

राजेन उठ खड़ा हुआ ! कई तरह की बातें मन में उठी। उसे लगा कि बस-स्टैण्ड तक जाने का रास्ता बहुत छोटा है और वे बहुत तेजी से चल रहे है। पर उसने मंजु से यह कहा नहीं। इसके बदले वह दूसरी बातें करने लगा, मंजु की तबीयत के बारे में !

"आपको बुखार तो नही है ?"

"नही ! सिर्फ थकान है, कल रात देर तक अपने पार्ट का अभ्यास करती रही।"

"इस नाटक में आपका अभिनय बहुत अच्छा लगता है।"

"मंजु का चेहरा खुशी से भर उठा। उसने पूछा, "सचमुच···! लेकिन स्टेज पर भी अच्छा हो तब न !"

उसकी बात से मंजु को खुशी हुई—यह सोचकर उसे सुख मिला

डिपो तक उनके पहुँचते-पहुँचते एक बस निकल गयी। अगली बस पन्द्रह-बीस मिनट से पहले नही जायेगी। सड़क की दूसरी ओर पार्क था। मजु ने सुझाव दिया, "हम लोग थोड़ी देर वहीं क्यों न बैठें ?"

"बैठें···?"

"और कर ही क्या सकते हैं ?···आपको जल्दी है।···लेकिन पैदल चलने में तो और भी देर लग जायेगी।"

"हाँ, चलिए !"

वे घास पर ही बैठ गये। मंजु ने अपनी चप्पल उतार दी।

"नर्म दूब पर नंगे पैर चलना अच्छा लगता है। आप भी अपना जूता उतार दें।" मंजु ने कहा।

"ऐसे ही ठीक है।" राजेन ने कहा।

मंजु खिलखिलाकर हँस पड़ी। राजेन को उसकी यह हँसी बेतुकी लगी। वह नही समझ सका कि हँसने की ऐसी कौन-सी बात कह दी उसने।

मंजु ने कहा, आपने मेरे हँसने का बुरा तो नही माना।···मैं तो अपने ही ऊपर हँसी थी, कि मैंने आपसे कहा ही क्यों, कि आप भी जूते उतार दें। मैं जो करूँ, वह आप भी क्यों करें! दरअसल हमें हर कुछ अपने ही ढंग से देखने की आदत होती है।···"

दोनों लॉन के बीच घास पर ही बैठ गये। पार्क में ज्यादा लोग नही थे। कुछ लोग जिन्हें तन्दुरुस्ती का ख्याल रखने की फुर्सत थी, टहलते हुए पार्क का चक्कर काट रहे थे। कुछ लोग पत्थर की बेंचों पर बैठे थे। एक कोने में कुछ बच्चे खेल रहे थे। पार्क के किनारे लगे

बजली के खम्भा से रोशनी उन तक नही पहुच रही थी मजु जैर कहीं खो गयी थी। राजेन अपनी दिलचस्पी का कोई स्थल ढूंढ़ रह था।

एकाएक मंजु ने बहुत सहज स्वभाव से चुप्पी तोड़ी।

"आप बहुत सीधे हैं।"

राजेन समझा नही कि क्या कहे !

मंजु ने कहा, "रिहर्सल में आप बहुत चुपचाप बैठे रहते हैं।"

"क्या सचमुच ! ···मुझे पता नहीं। हो सकता है।···मुझे समझ में नही आता कि क्या बात करूँ। लोग बहुत सारी ऐसी बातें करते हैं जिनके बारे में मैं कुछ नही जानता। इसीलिए चुप रहता हूँ।"

मंजु ने और कोई बात नहीं की। उसने एक आइस्क्रीम वाले से दो आइस्क्रीम लीं। खाते-खाते कहा, "यहाँ बैठना बहुत अच्छा लगता है। ···एक बस छोड़ दें तो कैसा रहे ?"

"बीस मिनट और बैठना पड़ेगा।···क्या देर नही होगी ?"

"हाँ ! हो जायेगी, चलिये !" कहते-कहते मंजु उठ खड़ी हुई। उसके होंठो पर एक कटु मुस्कान थी। राजेन को इस तरह उसका मन तोड देने का दुख हुआ। उसने कहा—"आप बुरा मान गयी ?"

"नहीं ! आप पर नही···मै सोच रही हूँ···हम लोग छोटे-छोटे सुख भी नही उठा सकते···।"

यह कई दिनों पहले की बात है।

आखिर यह सब हुआ क्या ? रिहर्सल क्यों नही होता ! मंजु भी नही, जगदीश भी नहीं, कोई नहीं जिससे पता चलता। एक दिन कालेज खतम होने के बाद वह फिर रिहर्सल वाली जगह पर पहुँचा।

उसका दिल उछलने लगा। दूर से ही उसने देखा, हाल की खिड़कियाँ रोशन थीं। उसकी चाल तेज हो गयी। जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ चढ़कर वह हाल के भीतर पहुँचा। लेकिन उसका मन बुझ गया। वहाँ रिहर्सल की जगह कोई दूसरा ही दृश्य था। जब वह अन्दर दाखिल हुआ तो सबकी आँखें उत्सुकता से उसकी ओर घूमीं, लेकिन किसी में उत्साह

नही था। जगदीश वहाँ नही था और न ही मजु और सारे परिचित चेहरे थे।···डाइरेक्टर अतुल बाबू, नायक का पार्ट करने वाला लडका, खलनायक और रामलखन जी। लोग धीरे-धीरे बोल रहे थे पर बातो में कटुता थी। लगता था अभी बम विस्फोट होने ही वाला है, और···और वह हो ही गया।

डाइरेक्टर अतुल बाबू ने उफन कर कहा, "रामलखन जी, हम यह नही जानते कि कहाँ से होगा! यहाँ आपके ही कहने से इकट्ठा हुए थे हम लोग।···एक महीने की मेहनत हुई है।···कोई खैरात नही माँग रहे हैं।···प्राणेश जी ने हमारे कहने से इसके लिए अपनी कहानी दे दी थी।···नहीं तो डाइरेक्टर चेतन आनन्द उनसे यह कहानी माँग रहे थे, पिछली बार जब शूटिंग के लिए यहाँ आये थे।···महीनों तक लोगो ने डायलाग रटे।···मैंने डाइरेक्शन दिया। वह भी आपके कहने से। कही और, फिल्म में दिया होता तो···।"

"रहने दीजिये! रहने दीजिये, अतुल बाबू!" रामलखन जी ने ताने के स्वर में कहा, "मैं आपको भी दस साल से जानता हूँ और प्राणेश जी को भी।"

यह अतुल बाबू को अपने कलाकार का अपमान लगा। आहत होकर पूछा, "क्या जानते है?"

"बस, अब ज्यादा मत कहलवाइये, बात बुरी लग जायेगी।"

"नही-नहीं, कह डालिये। आखिर क्या जानते हैं आप?"

"अरे यही कि प्राणेश जी की कहानी दस साल से डायरेक्टर लोग माँग रहे है और उसी तरह आप दस साल से डायरेक्टर हैं। मैं···कहना नही चाहता था, पर आपने मजबूर कर दिया।"

"रामलखन जी, यही बात है तो हम भी आपको उतने ही दिनों से जानते हैं।"

"हमें आप ही नहीं, और लोग भी जानते हैं। उल्टी-सीधी हाँकना मुझे नही आता। किसी की चोरी नहीं की, किसी की लड़की नही भगायी···।"

"रहने दीजिये! ···रहने दीजिये!"

और मेरा तो केरीयर चौपट हो गया। नायक का पाट करने वा लड़के ने कहा।

"अरे हाँ-हाँ ! बड़ा केरीयर ही तो था आपका जो चौपट हो गया। रामलखन जी ने कहा।

"देखिये रामलखन जी," अतुल बाबू ने इस बार समझाने के स्वर से कहा, "हम कुछ भी क्यों न हों, हमें कुछ नहीं आता" पर हम यहाँ आप के कहने से आये और हमने जो मेहनत की उसका हमें मिलना चाहिए। ...आपने कहा था ड्रामा खत्म होने पर"।"

"तो ड्रामा हुआ ही कहाँ," रामलखन जी ने बीच में कहा, "ड्रामा होता तो टिकट बिकते। तब न मिलता तो आप मुझसे कहते।...पर जब ड्रामा हुआ ही नहीं तो मैं क्या कर सकता हूँ।'

"और जो चन्दा मिला ? घासीराम का चैक आपने मुझे दिखाया, रोज हाँकते रहते थे आप कि आज यहाँ से उतना मिला, वहाँ से उतना मिला। माहेश्वरी मिल ने इतना दे दिया।...वह सब कहाँ जायेगा ?"

रामलखन जी गुस्से में उठ खड़े हुए। फिर जैसे अपने स्वर को बहुत संयत बनाने की कोशिश करते हुए उन्होंने कहा, "यह सब आप लोग जगदीश बाबू से कहें, मुझसे नहीं। मीटिंग मे वही मंत्री बनाये गये थे। मै कौन होता हूँ।...मैं चला।"

"लेकिन यह भी तो तय हुआ था कि बैंक एकाउंट आप ही डील करेंगे।"

"उसका कोई मतलब नहीं होता।...संस्था का एकाउंट एक आदमी के नाम से नहीं होता।...यहाँ तो अपना भी हजार रुपया दौडने मे खर्च हो गया। आप लोग जगदीश बाबू को ही पकड़ें। मैं कुछ नहीं जानता और आगे इसके बारे में मुझसे कोई बात नहीं होनी चाहिए।" रामलखन जी ने कहा और बिफरते हुए हाल से बाहर चले गये।

थोड़ी देर तक सब जैसे स्तम्भित बैठे रहे। फिर अतुल बाबू का स्वर फूटा, "साला एक नम्बर का काइयाँ है।...जगदीश को इसी ने मंजु को साथ लेकर भाग जाने की सलाह दी होगी दो-तीन हजार देकर। ताकि सारा दोष उस पर मढ़कर बाकी खुद हड़प ले।" कुल बीस

हजार आया था। मुझे सब मालूम है। गोविन्द बाबू के नाम पर का न देता ?"

राजेन इसी बीच एक कोने में आकर बैठ गया था। जो बातचीत हो रही थी, उसे कुछ समझ रहा था, कुछ नहीं। उससे कोई खास मतलब भी नहीं था। अतुल बाबू की आखिरी बात पर वह चौंक पड़ा।

—मंजु भाग गयी, जगदीश भाग गया···?

अतुल बाबू की मुद्रा देखकर उनसे कुछ पूछने की हिम्मत नहीं हुई। नायक का पार्ट करने वाले लड़के से बाद में पूछा तो उसने सारा किस्सा बताया।

जगदीश और मंजु का एक हफ्ते से कोई पता नहीं। शोर है कि मंजु को फिल्मों में काम दिलाने के बहाने वह उसे लेकर कहीं चला गया है। कुछ लोगों का कहना है कि उन दोनों ने चुपके से शादी कर ली थी और जगदीश अपने बाप के डर से भागा है। बहुत सम्भव है इसी शहर के किसी दूसरे हिस्से में किसी होटल में टिका हो···।

अब तक किसी भी बात ने उसे इतनी गहराई तक नहीं छुआ था। वह जैसे किसी नशे में घर आया। खाना नहीं खाया गया। रात को लालटेन जलाकर घंटों वह यों ही बैठा किताब के एक ही पन्ने पर नजर गड़ाये रहा और जब सोया तो देर तक आँखें फाड़े अँधेरे में पता नहीं क्या देखता रहा।

लल्लन बाबू ने जिस दिन से राजेन को पीटा उसके कुछ ही दिनों बाद से उनके व्यवहार में कुछ परिवर्तन आ गया है।

अगले दिन दफ्तर में अपने अन्तरंग मित्र निर्मल बाबू से उन्होंने राजेन की कारगुजारी की चर्चा की थी। निर्मल बाबू कुछ देर सुनते रहे।

उन्होंने समझाया था—"अरे भाई, लड़कों को अपने ही जमाने के तौर-तरीकों से नहीं रखा जा सकता। उनका अपना 'समाज' होता है, जिसमें उन्हीं की चलती है।···हमारी-तुम्हारी नहीं। लड़के को सन्यासी या ब्रह्मचारी बना कर नहीं रख सकते। अपने ही ढंग से उसे देखना

सिखाओगे तो बहुत अच्छा होकर, बहुत पढ़-लिखकर भी वह फिसड्डी ही रहेगा। उसे अपनी जिन्दगी खुद जीनी है। अपनी तकलीफें उठानी हैं उसे, और अपने सुख भोगने हैं। हमें या तुम्हें नहीं। कब तक और कहाँ-कहाँ उसके साथ रहोगे? फिर कैसी हाय-हाय! बस अपने भरसक पढ़ाने-लिखाने तक तुम जिम्मेदार हो। उसके बाद तुम्हारी ड्यूटी खतम! उनके बहकने-बहकने का डर भी बेकार है। अगर लड़का बँधी लीक पर न चले तो तुम उसे ही बहकना कह बैठोगे, पर यह ख्याल बहुत दकियानूसी है।···अगर तुम्हारे लड़के की दिलचस्पी पढ़ने से ज्यादा ड्रामे में है तो वही करने दो उसे। कौन जाने उसी में चमक जाये तो क्या कहना! नामवरी व पैसा दोनों—राष्ट्रपति भी उन्हें पदक देते हैं।"

लल्लन बाबू को निर्मल बाबू की सारी बातें नहीं जँची। निर्मल बाबू की बातों के खिलाफ वह कोई दलील दे पाये हों, ऐसा नहीं, पर सारी बातें वह अपने गले के नीचे नहीं उतार पाये। निर्मल बाबू ने जो कुछ कहा था, वह पुरखे-पुरनियों के मुँह से सुनी और खुद अपने अनुभव से संचित समझ से एकदम उलटा था। भला यह भी कोई बात हुई—लड़का बहकता है, बहकने दो।···वह अपनी जिन्दगी खुद जियेगा। क्यों हाय-हाय करते हो? क्या यह हो सकता है? जिन लोगों ने उनसे ज्यादा दुनिया देखी है उन्होंने बेकार देखी? पर अपनी बातों के समर्थन में वह कोई जोरदार तर्क नहीं खोज पाये। आज तक कभी इस पर गम्भीरता से सोचा भी नहीं था।

पर निर्मल बाबू की एक बात ने उन्हें सशंकित कर दिया था। यह कि लड़के को बहुत ज्यादा अपनी निगाह से ही ढालने की कोशिश करोगे तो वह फिसड्डी ही रह जायेगा। निर्मल बाबू की हर बात दिमाग से उतर भी जाये तो जैसे यह उतरने वाली नहीं थी। बार-बार दिमाग इसी बात पर जा रहा था। उनकी इसी बात के खिलाफ सबसे ज्यादा विरोध भी उनके अन्दर उमड़ रहा था और यही बात उन्हें सबसे ज्यादा कुरेद भी रही थी।

उस दिन उन्होंने घर में राजेन की ओर कई बार गौर से देखा। अपनी कोठरी में काफी रात तक पढ़ते रहने के बाद वह लालटेन मद्धिम

करके जब सो गया तो एक बार लल्लन बाबू उसके कमरे मे भी गये। राजेन बेखबर सो रहा था। उन्होंने लालटेन जरा-सी तेज कर दी। जैसे बहुत दिनों बाद उसे देखा आज। इसी चारपाई पर अपनी माँ के साथ कैसे टुइयाँ जैसा दुबका रहता था, और अब यही जैसे छोटी हो रही थी।

धीरे से मुस्करा पड़े वह।

फिर उन्होंने लालटेन मद्धिम की और आकर अपनी चारपाई पर सो रहे। उन्हे चादर सिर तक तान कर सोने की आदत है मुँह खुला रख कर वह सो नही पाते। पर आज वह सो नही पा रहे थे। बार-बार मुँह से चादर हटा रहे थे और बार-बार ओढ़ रहे थे।

निर्मल बाबू की बाते उनके अन्दर हलचल मचाये हुए थीं। उनकी बाते उन्हें ठीक भी लग रही थीं और गलत भी। और ठीक और गलत का यह चक्कर उनका मन कही टिकने नहीं दे रहा था। दफ्तर के कैश रजिस्टर के साथ ऐसा कई बार हुआ था। कई-कई पन्नों के हिसाब जोड़ लेने के बाद पता चला कि शुरू में ही कही जोड़ने मे गड़बड़ी हो गयी है—और घंटों की मेहनत बेकार हो जाती! ऐसी ही किसी गलती की ओर जैसे निर्मल बाबू ने इशारा कर दिया था—एक-एक दिन जोड़कर राजेन को जो बढ़ाया था, क्या उसमे शुरू में ही कही कोई चीज छूट गयी थी? वह अपने आपको विश्वास दिलाते कि ऐसी कोई बात नही हुई है, पर वह विश्वास टिक नही पाता था।

कई बार उठकर उन्होंने पानी पीया। एक बार सोचा कि लालटेन तेज कर कुछ पढ़ें; लेकिन पढ़ते-पढ़ते उन्हे सोने की आदत नही थी। फिर तो शायद नींद ही न आये। उन्होंने यह ख्याल भी छोड़ दिया।

सहसा उन्हें रायसाहब का ख्याल आया! हाँ, रायसाहब से ही जिक्र करेंगे इस सबका। उनसे बढ़कर कौन होगा! सारी जिन्दगी मास्टर रहे है, वह भी ऐसे-वैसे नहीं गवर्नमेंट स्कूल के। पैंतीस साल की मास्टरी में हजारो लड़कों की जिन्दगी सँवार चुके होंगे। जिन्दगी का लम्बा-चौड़ा तजुर्बा है।...और बहुत भले आदमी हैं।...और राय साहब की अच्छाइयों पर ही सोचते-सोचते उन्हें नींद आ गयी।

पाँच

राजेन की दिनचर्या फिर पुराने ढर्रे पर लौट आयी है। वह कालेज जाता है और ठीक वक्त पर लौट आता है। जगदीश और मजु जैसे कभी जीवन में आये ही नहीं। अक्सर लड़कों मे इस बात की चर्चा होती कि वह किसी लड़की को लेकर भाग गया। पर जिस ढंग से उसके भागने की चर्चाएँ होती, खास कर जिस तरह जगदीश को बुद्धू बनाने वाली लडकी के रूप में मजु की चर्चा होती उससे राजेन का मन आक्रोश से भर उठता। जगदीश के साथ भाग जाने के बावजूद वह मजु के बारे मे कोई बुरी बात सोच नहीं सकता था। मंजु उसे सरल और निरीह ही अधिक लगी थी। अब भी उसके बारे मे सोचते हुए उसे उसकी निरीहता ही प्रमुख लगती। और इसीलिए जगदीश के साथ एकाएक इस तरह उसके चले जाने से उसे कुछ दुख भी हुआ था। रह-रह कर मन मे बात उठती है कि शायद जगदीश के साथ इस तरह चले जाने में उसकी कोई बाध्यता ही रही होगी। जगदीश से अलग उसे कुल दो ही बार देखा है—जब उसे छोड़ने के लिए गया था। इसके अलावा जब भी देखा मंजु को, तब जगदीश के साथ ही। और हर बार उसे लगा था—मंजु का कुछ भी मुक्त नहीं है। जगदीश किसी बात पर हँसते हुए मंजु की ओर देखता है—मंजु के होंठों पर भी हँसी फैलती है लेकिन वह हँसी आँखों से नहीं छलकती। जगदीश का चेहरा किसी बात से तन जाता है, भौहें चढ़ी हुई है, मजु किसी बात पर नहीं हँस सकती। मुक्त उसे थोड़ी देर के लिए तभी देखा था जब उसे छोड़ने गया था—जब वे काफी दूर तक पैदल चले थे, कुछ देर पार्क में बैठे थे। पर उतनी देर भी वह सशंकित-सी ही लगी थी।

लेकिन अपने ये भाव वह किसी पर प्रकट नहीं करता। लोगों को पता नहीं कि वह जगदीश और मंजु से कितनी दूर तक सम्बद्ध है।

लेकिन यह तटस्थता ऊपरी ही है—एक नकली आवरण। उस बरसाती की तरह जिसे ओढ़े रहने पर भी पानी भीतर रेंग जाता है। कभी-कभी मंजु की याद बुरी तरह झकझोर जाती है।

रामलखन जी एक दिन फिर मिले। वह अपने नये बनते मकान के सामने खड़े हुए काम का मुआयना कर रहे थे। नाटक के रिहर्सल में जिस दिन अतुल बाबू से उनका झगड़ा हुआ था उस दिन के बाद उन्हें पहली बार देखा। अपनी परिचित मुद्रा में सफेद खादी का धोती-कुर्ता पहने खड़े थे और मुट्ठी बाँधकर उँगलियों के बीच सिगरेट दबाये हुए बार-बार चुटकी बजाते हुए उसकी राख झाड़ रहे थे। इधर कई दिनों से शायद सामान न होने से मकान का काम कुछ धीमा था। आज दो-तीन ट्रकों पर लाद कर सीमेंट, बालू और ईंटें वगैरह आयी थी। और शायद उसी की देखरेख और दुबारा काम शुरू कराने के लिए खुद रामलखन जी भी आ गये थे।

राजेन की कोई खास इच्छा नहीं थी उन्हें देखकर रुकने की। लेकिन तभी उनकी भी निगाह उस पर पड़ गयी तो आँखों के लिहाज के लिए ही उसे रुकना पड़ा।

"कहाँ रहते हो भाई," राजेन के नमस्कार का जवाब देते हुए उन्होंने पूछा, "करीब महीना भर बाद तुम्हें देख रहा हूँ।"

"महीना भर कहाँ हुआ?" राजेन ने कहा, "अभी कुछ दिन पहले ही तो रिहर्सल में देखा था आपको!"

"रिहर्सल?" जैसे उसकी याद से ही रामलखन जी की भौंहें खिंच उठीं। कहा, "अच्छा, वहाँ तुम भी थे? मैंने ख्याल नहीं किया। मगर देखा न तुमने उसको, अतुलवा को, मुझे क्या-क्या कह रहा था? कैसी-कैसी बातें सुना रहा था मुझे?"

"मैं कुछ समझा नहीं," राजेन ने सही बात कही।

रामलखन जी 'हो···हो···' कर हँसने लगे। फिर गले में सिगरेट का धुआँ फँस जाने से खाँसते हुए बोले, "हाँ-हाँ, तुम कैसे समझोगे, बच्चे ही तो हो अभी।···असल में वह कह रहा था—मैंने चोरी की है,

नाटक और अभिनन्दन के लिए जो चन्दा आया था, उसका मैंने गबन किया है।"

"आपने चोरी की, आप और गबन?" राजेन ने भौचक-सा होकर अविश्वास के स्वर में कहा।

"यकीन नहीं हो रहा है तुम्हें न?" रामलखन जी का चेहरा एका-एक खिल उठा। "हाँ, भाई! किसी को भी इस बात का यकीन नहीं हो सकता कि मैंने चोरी या गबन किया होगा, एक बच्चा भी यकीन नहीं करेगा—जैसे तुम्हीं! इसी से समझ लो, कैसा काइयाँ और मक्कार है वह।...कहता है, उसी रुपये से यह घर बनवा रहा हूँ।...जैसे कोई भिखमगा हूँ।"

"अब सुन रहा हूँ," रामलखन जी फिर बोले। "मेरे खिलाफ मेमोरेण्डम तैयार कर रहा है। लोगों से कहता फिर रहा है, कि मेरी इज्जत धूल में मिला देगा।...मेरा कच्चा चिट्ठा अखबारों में छपवायेगा। हुँ, जैसे अखबार वाले मुझे जानते ही नहीं।... कौन है जो मेरे खिलाफ यह अनाप-शनाप छापेगा जी! सिवा उनके अखबार के—कम्युनिस्टों के! लेकिन उनका तो काम ही है हम लोगों को बदनाम करना। कोई विश्वास भी करेगा अगर वे छापेंगे हमारे खिलाफ तो?"

रामलखन जी जैसे भाषण के मूड में आ गये थे। तैश में भर कर अपनी बात उन्होंने जारी रखी, "लेकिन वे छाप भर तो दें। अदालत में दावा ठोंक कर ऐसा चापूँगा कि ये अतुलबा सारी क्रान्तिकारिता भूल कर मेरे आगे-पीछे भागने लगेगा। न किया ऐसा तो मेरा नाम रामलखन नहीं।"

राजेन अब भी उनकी बातें कुछ खास समझ नहीं पाया। लेकिन बातें रामलखन जी ने कुछ ऐसे जोर से कहीं कि राजेन को भय-सा लगने लगा। फिर उसे कालेज पहुँचने की भी जल्दी थी। वह तो उनसे मिलना भी नहीं चाहता था, पर उनकी निगाह पड़ जाने से रुक जाना पड़ा। और अब जैसे उनकी बातें रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। राजेन कई बार चलने-चलने को हुआ लेकिन वह छुट्टी लेने का मौका ही नहीं दे रहे थे। आखिर राजेन ने सोचा, अब रुका ही है तो क्यों न जगदीश का ही

कुछ हाल-चाल पूछ ले उनसे ।

पूछते ही रामलखन जी फिर शुरू हो गये, "अरे, क्या पूछते हो उनका हाल । उन्हीं की बदौलत तो मैं यह बदनामी झेल रहा हूँ । उस दो टके की औरत के पीछे ऐसे दीवाने हुए कि मेरी तो जिन्दगी भर की सारी नेकनामी मिट गयी । अब मैं क्या बताऊँ तुमसे···? जवानी के जोश मे आकर भूल कर बैठे । और फिर उनके बाप ने, अरे क्या नाम है उसका, उसी घोषाल ने, गला पकड़ लिया कि या तो शादी करो या फिर खमियाजा भुगतो । मन में तो आया कि अपना हाथ खींच लूँ । गलती की है बच्चू तो फिर भोगो, मगर फिर बाबूजी··· उनसे अपने पुराने ताल्लुकात का ध्यान आया तो हाथ डालना ही पड़ा । मैंने भी सोचा चलो लड़के हो, गलती कर बैठे हो तो कोई बात नही । नशा उतर जायेगा तो समझ भी आ जायेगी ।···पहले तो चाहा कि हजार-दो हजार देकर घोषाल को चुप कर दूँ ।···चुप तो और तरह भी कर सकता था, मगर 'पोलटिक्स' में बड़ी उल्टी-सीधी बातें होती है, समझते ही होगे । इसलिए रुपया ही देकर चुप कराना चाहा । लेकिन घोषाल नही माना ।···मानता भी क्यो ? उसी का तो सब रचा हुआ था ।···मुफ्त मे बेटी के लिए बडा घर जो मिल रहा था । और जगदीश बाबू भी किसी और तरह तैयार नही थे । ऐसा फाँसा था दोनों ने मिलकर उन्हें ।···सो अपने पास से दो हजार देकर उन्हे दूसरी जगह भेज दिया है ।"

राजेन रामलखन जी की बाते सुन नही रहा था । जिस तरह वे मजु का जिक्र कर रहे थे, उसे सुनकर उसका चेहरा तमतमा आया । और उनके बारे में उस दिन डाइरेक्टर अतुल बाबू और आज खुद उनकी बातें सुन कर उसने जो नहीं समझा था, वह जैसे आज मंजु के बारे मे उनके विचार सुन कर सहसा ही समझ गया । अब तक उनकी बातों को आधा-तीहा समझकर उन पर थोड़ा-बहुत विश्वास कर रहा था, पर अब वह भी जैसे जाता रहा । इस अविश्वास और आक्रोश ने जैसे उसे साहस दिया और उसने रूखे स्वर से कहा, "अच्छा ! अब मैं चलता हूँ; मुझे कालेज के लिए देर हो रही है ।"

"अच्छा ! चलोगे ?" रामलखन जी ने उसके कन्धे पर हाथ रख

दिया। फिर कहा, "हाँ-हाँ, जरूर जाओ भाई। मैं नाहक तुम्हे रहा।...मगर आया करो, कभी-कभी मेरे यहाँ भी।... जब मैं यहाँ जाऊँगा तब तो रोज ही तुम्हें अपने यहाँ बुलाऊँगा। अच्छा तुम...।"

राजेन उनकी बात खत्म होने के पहले ही चल पड़ा था। रामल जी अपनी नई इमारत की ओर मुखातिब हुए।

छ:

लल्लन बाबू के संशय का पारावार नहीं था। सारी दुनिया जैसे क्या से क्या हो गयी है। सब कुछ जैसे उलट गया। उस दिन रघुनाथ साव की दूकान पर राय साहब के साथ बैठे थे। राय साहब का तीन साल का पोता भी उनके साथ उँगली पकड़े-पकड़े आ गया था। जन्म के ही समय के रेशम जैसे बालों के लच्छे चेहरे पर बिखरे हुए थे, गोल-मटोल चेहरे पर बड़ी-बड़ी काली आँखें। जहाँ वे लोग बैठे थे, वहाँ से ठुमक-ठुमक कर थोड़ी दूर तक जाता फिर अपने नन्हे पैरों मे दौड़ता हुआ आकर राय साहब की गोद में कूदकर बैठ जाता। उसके बाद फिर कोई चीज देख कर कोई कंकड़ या कागज का कोई टुकड़ा ही देख कर गोद से उतर कर फिर दौड़ पड़ता। राय साहब के चेहरे पर जीवन भर का संचित वात्सल्य केन्द्रित हो गया था। खिचड़ी मूँछो में हँसी जैसे उलझ कर रह गयी थी।

लल्लन बाबू भी बच्चे के कौतुक पर कम मुदित नहीं थे। दो-एक बार उन्होने भी बच्चे को गोद में लेकर दुलराया, पर अपरिचित गोद की झाँक पाकर बच्चा रोने लगता तो राय साहब को थमा दिया। फिर भी बच्चा किलक कर अगर तेजी से दौड़ने लगता तो रह-रह कर लल्लन बाबू आशंका से भर कर चिल्ला पड़ते।

एक बार लल्लन बाबू कुछ अधिक आशंकित होकर चिल्लाये तो

राय साहब न कहा   अरे गिरन दीजिये न   बदन म मिट्टी नही लगेगी तो देह और हड्डी कैसे मजबूत होगी !

राय साहब लड़के की हर माँग, हर जिद पूरी कर रहे थे। कुछ देर पहले उसे कुल्फी खिलाई थी। फिर वह बिस्कुट के लिए मचला तो वह भी ले दिया, उसके बाद लेमनजूस भी।

लल्लन बाबू जैसे मन ही मन सिहर उठे। लेकिन शायद राय साहब बुरा न मान जायें इसलिए कुछ बोले नही। पर एक बार फिर लडका जब चने के लड्डू के लिए मचला और राय साहब उसकी जिद पर पसीजते नजर आये तो लल्लन बाबू से न रहा गया। उन्होंने कहा—

"राय साहब ! बुरा न मानें तो एक बात कहूँ ?"

"कहिये, कहिये !"

"लड़कों को ये सब खिलाना-पिलाना ठीक नहीं !"

राय साहब थोड़ी देर कुछ नही बोले। अपने पोते की ओर देखते रहे और मूँछों में हँसते रहे। फिर कहा, "बात तो आप पते की कहते हैं। लेकिन अपने बच्चों को वे ही लोग इन सबसे बचा सकते है, जिनके यहाँ रेफ्रिजरेटरों मे टोकरे-टोकरे फल, पनीर, मक्खन अंडे वगैरह पड़े हो।···मैं तो यही पैसे-दो की चीजें दिला सकता हूँ। हम-आप अपने बच्चों को भला इनसे कैसे बचा सकते हैं ?"

"नही साहब !" लल्लन बाबू ने कहा, "मैंने अपने राजेन को कभी इनकी लत नहीं पड़ने दी। लड़कों में इससे बुरी आदतें पड़ती हैं।"

"आप बहुत मजबूत दिल के आदमी हैं।···और आप भाग्यशाली है, अगर आप ऐसा कर सके। लेकिन मैं ऐसा नहीं कर पाता। आखिर लडकों का मन तो रखना पड़ता है न !"

"इस तरह तो बहुत-सी बातों में मन रखना पड़ेगा।"

"हाँ, यह गुत्थी इतनी आसान नही। लेकिन हर बात कोई नहीं पूरी कर सकता। न मैं, न आप, न कोई और ! पर जहाँ तक कर सकें, करना चाहिए, क्योंकि न करने से भी मन में अजीब-अजीब-सी गाँठें बन जाती हैं···आपको एक बात बताऊँ···? बचपन में मेरे पिता मेरी जो-जो इच्छाएँ पूरी नही कर सके, वे मुझे आज तक याद है।···एक

बार हम कुम्भ में इलाहाबाद गये थे, मैं करीब छः साल का था। वह टीन के खिलौना ताँगे सात-सात पैसे में बिक रहे थे। मैंने बाबू जी से एक ले देने की जिद की। बाबू जी ने नहीं दिलवाया। फिर मैंने जरा ज्यादा जिद की तो ऐसी कड़ी नजर से देखा उन्होंने मेरी ओर कि मैं सहम गया। फिर मैंने उन ताँगों का नाम भी न लिया।···बाद में उन्होंने मेरे लिए क्या नहीं किया। पढ़ाया-लिखाया, आदमी बनाया, और अब मैं साठ साल का हूँ, उन्हें मरे बीस साल से ज्यादा हो गये। पर उनकी वह गुस्से से भरी आँखें मैं आज तक नहीं भूला हूँ और न वे खिलौना ताँगे।···हो सकता है, इस बात ने कभी मुझे उनके खिलाफ भी सोचने के लिए मजबूर किया हो।···न भी किया हो तो यह क्या कम है कि उनका गुस्से वाला रूप ही मेरी याददाश्त पर ज्यादा गहराई से बैठा है? अपने बेटे शिव के साथ अपने भरसक यह मैंने नहीं किया। मैं अपने पिता से अच्छा पिता रहा हूँ और चाहता हूँ मेरा लड़का मुझसे अच्छा पिता बने···।"

ललन बाबू यह सब सुनने को तैयार नहीं थे। मास्टर को हमेशा उपदेश के आसन पर देखने के अभ्यस्त थे। और यहाँ राय साहब गवर्नमेन्ट स्कूल में पैंतीस साल की मास्टरी के बाद अपने पिता के प्रति पुराने गुस्से की यादें कुरेद रहे थे!

उन्होंने सोचा था—राजेन्द्र को लेकर निर्मल बाबू ने जो बातें कही थीं, उनके बारे में कभी राय साहब से ही चर्चा करेंगे। आज घूमते हुए मिल गये तो सोचा था कि वही बातें उठायेंगे। पर अब उनके प्रति कोई उत्साह नहीं रह गया। फिर भी मास्टर साहब की बात पर अपना विरोध प्रकट किये बिना नहीं रह सके।

"लेकिन राय साहब! लड़कों को बहक जाने दिया जाय तब तो वे कुछ नहीं बन सकेंगे।"

"नहीं साहब! कौन कहता है बहकने दें। लेकिन कुछ लोग बहकने न देने का मतलब अन्धाधुन्ध चाबुक मारना समझते हैं, जो एकदम गलत है।···मेरा एक हमजोली था—बजरंगी। शाम हुई नहीं कि उसके बाप 'बजरंगिया···बजरंगिया' चिल्लाते शहर भर में घूमते। और बजरंगी

कहीं पास ही किसी गली में छिपा रहता। कुछ बड़ा हुआ तो हर छठ छमासे उसके गायब होने की मुनादी करानी पड़ती या रिपोर्ट लिखानी पड़ती।

"एक आज्ञाकारी पुत्र पाँच-छः बजते ही कहते—चलूँ वर्ना 'फादर' नाराज होंगे। और जब बुढ़ौती में बाप का आतंक खत्म हुआ और बर्खुरदार एक छोटे-मोटे अफसर बन गये तो उन्हें घर से निकाल दिया। बाप की जगह उनके ऊपर वाले अफसर ने ले ली।"

राय साहब का पोता दौड़ता हुआ आया और उछल कर बाबा की गोद में बैठ गया। राय साहब अपनी बातें भूल कर जैसे उसी में खो गये।

थोड़ी देर तक वह बैठा रहा, फिर राय साहब के एक हाथ की उँगली पकड़ कर उन्हें खींच कर उठाने के लिए जोर लगाने लगा। पर राय साहब की पहाड़-सी देह उसके जोर लगाने से क्यों उठती! एक बार उसने जरा ज्यादा जोर लगाया तो उँगली उसके हाथ से छूट गयी और वह धम्म से जमीन पर गिर गया।

चेहरा रुँआसा हो आया उसका। रुलाई छूटने ही वाली थी कि राय साहब ने उसे अपनी बाँहों में सहेज लिया और बच्चा डरी हुई चिड़िया की तरह उनकी गोद में दुबक रहा। लेकिन कुछ ही क्षण बाद अपनी चोट भूल कर जैसे फिर राय साहब को खींच कर उठाने की कोशिश करने लगा।

लल्लन बाबू बच्चे के इस कौतुक के प्रति उदासीन, कहीं और देख रहे थे। जैसे बहुत सोच-विचार कर, निष्कर्ष के तौर पर उन्होंने कहा—"कलियुग आ गया है, घोर कलियुग!"

"कलियुग?···कैसा कलियुग···लल्लन बाबू?" राय साहब ने बच्चे की ओर से ध्यान हटा कर पूछा।

"अरे, यही राय साहब, जो अभी-अभी आपने बताया। बाप ने पढ़ाया-लिखाया, अफसर बनाया।···फिर बाप को ही लड़के ने घर से निकाल दिया।···ऐसी नालायक औलाद कलियुग में ही हो सकती है।···कहीं हो सकती है और?"

"लेकिन बाप ने तो लायक बना रखने में कोई कसर नहीं छोड़ी लल्लन बाबू...।" राय साहब ने कहा, "उसे इतना लायक बनाया कि छः बजे के बाद वह बाहर कहीं रह ही नहीं सकता था।... अगर मुझसे पूछें तो मैं कहूँगा कि लड़के ने ठीक किया।"

"क्या?...लड़के ने ठीक किया?" लल्लन बाबू को जैसे अपने कानों पर यकीन नहीं हुआ। आहत से स्वर में कहा, "राय साहब, आप भी यह कहते है? बेटा बाप को घर से बाहर निकाल दे और आप उसे ठीक कहते है? दया, माया भी नहीं रह गयी? कोई इन्सानियत नहीं। यह भी नहीं सोचा कि बुढ़ापे में अपाहिज बाप कहाँ जायेगा...? बाप ने अगर कड़ाई की तो यह तो सोचना चाहिये था कि उसने क्यों कड़ाई की...? कड़ाई की तो अच्छे के लिए ही की होगी। यह एहसान भी नहीं माना।"

"आप तो डर गये लल्लन बाबू," राय साहब ने कहा। आपने मेरी बात को गलत ढंग से समझा।...दरअसल मैं मिसाल पेश कर रहा था एक कि बहुत ज्यादा सख्ती का ऐसा ही उल्टा नतीजा निकलता है।... अच्छी नीयत से मारा गया कोड़ा भी निशान छोड़ता ही है। और अगर वे निशान मन पर हों तो जिन्दगी भर नहीं मिटते। और उनके भयंकर परिणाम निकलते हैं। इसीलिए सुनता हूँ आजकल जुर्म करने वालों को भी सजा देने में नये-नये तरीके अपनाये जा रहे हैं, इंगलैंड में तो कतल करने वालो को भी अब फाँसी नही होती। फाँसी उठा ही दी गयी है वहाँ...और मैं समझता हूँ यह जायज है।"

"माफ करे राय साहब, आपकी यह बात भी मुझे अजीब लगती है।" लल्लन बाबू ने कहा।

"क्यों?...अजीब क्यों?"

"अरे साहब, अजीब ही तो है यह! आप कहते हैं जो जैसा करे, करने दो, उसके साथ सख्ती न करो। यहाँ तक कि कातिल कतल कर दे तो उसे फाँसी न दो। इस तरह तो दुनिया चल ही नहीं सकती। जो आप कहते हैं वह अजीब नहीं तो और क्या है?"

"आप मेरी बात फिर गलत ढंग से समझ रहे है," राय साहब ने

कहा, "दरअसल, मैं यह नहीं कहता कि कोई अमन-कानून न हो, लेकिन बदलते हुए जमाने के साथ उसका ढंग भी बदलता है।"''हमेशा से कानून डंडे और तलवार के रूप में रहा है, उसके खिलाफ बगावतें हुई हैं और जिसके हाथ में डंडा या तलवार रही है वह अगर कमजोर हुआ तो उसका तख्ता उखाड़ फेंका गया। यही घर और स्कूल में भी सही है—यहाँ बगावत की शक्ल दूसरी होती है।

"या तो बाप निकाला जाता है या पुरानी और नयी पीढ़ी में एक गाँठ-सी पड़ती है। या बदमाशियाँ सूझती हैं। या लडकों में बहुत तरह के रोग पनपते हैं।

"आपको शायद ताज्जुब हो, मैंने जब पढ़ाना शुरू किया था तो स्कूल के सामानों में, यानी खडिया, डस्टर, स्टेशनरी वगैरह के साथ बेंत भी मँगाये जाते थे। लपलप करते जगन्नाथी बेंत। और कितने मास्टरों को नन्हे, मासूम बच्चों को मारने में बहुत मजा आता था। शायद असहाय लोगों को मारने में भी एक सुख मिलता है कुछ लोगों को। मैंने तस्वीरों में देखा—हिटलर के सिपाही असहाय बच्चो, बूढ़ों, जवानों को कत्ल कर रहे हैं। लाहौर के दंगों में एक कोई वहशी तलवार की नोक पर एक बच्चे को उठाये हुए है। और अभी हाल में वियतनाम के एक गाँव में कुछ वहशी जल्लादों ने सैकड़ों बच्चों और औरतों को कत्ल कर दिया। मैंने ये सब तस्वीरें देखी हैं और सिहर उठा हूँ। और ऐसे ही मैं उस वक्त सिहर उठता था जब किसी अबोध, अनजान लडके को धूप में खड़ा करके उस पर सट्-सट् बेंत बरसाये जाते थे। और तुर्रा यह कि यह सब लड़कों को सुधारने के लिए किया जाता था।''' बाद में हम लोग लड़कों को सवालों का जवाब न दे पाने पर बेंचों पर खड़ा कर देते।

"रिटायर होने के कुछ साल पहले एक अजीब किस्सा हो गया। एक लड़के को घर से सवाल याद न करके आने पर मैंने उसे कक्षा के पीछे जाकर बेंच पर खड़ा होने के लिए कह दिया। वह खड़ा हो गया, पर शायद कुछ कहना चाहता था और न कह पाने के कारण रोने लगा। वह हरिजन था। उसके घर वालों को पता चला तो उन्होंने

सोचा मैंने उसे हरिजन होने के कारण ही पीछे मेज पर खड़ा करवाया था। उनके एक नेता ने शिकायत की। मैंने समझाया कि मैंने उसे पीछे इसलिए नहीं खड़ा कराया कि वह हरिजन था, बल्कि इसलिए कि वह पाठ याद करके नहीं आया था और अक्सर सबको मैं यही सजा देता हूँ। बात उन्हें समझ आ गयी, पर मुझे भी एक शिक्षा मिली कि सजा देने के पहले मुझे यह सोचना चाहिए था कि उसको क्या दिक्कतें थीं। एक झोंपड़ी मे रहता था वह, माँ-बाप दोनों काम पर निकल जाते। स्कूल आने के पहले और स्कूल से घर जाने के बाद वह अपने छोटे भाई-बहनों की निगरानी करता, खेल भी नहीं सकता था, पढ़ता कब। लेकिन मैंने यह नहीं सोचा।···

"और इस बात को न सोचना समाज के हजारों सालों के अत्याचार से सताये गये बच्चों पर एक और अत्याचार नहीं है?"

लल्लन बाबू राय साहब की बातों का सन्दर्भ पूरी तरह समझ नहीं पा रहे थे, फिर भी उनकी बातों में जोर था और उनसे पूरी तरह सहमत न होते हुए भी वह भीतर ही भीतर हिल उठे।

राय साहब ने कहा, "लेकिन मैंने जो कहा है वही आखिरी बात नहीं और बहुत-सी बातें हैं जो बहुत तरह से कही जा सकती हैं। आखिर आदमी की जिन्दगी कोई गणित की पहेली नहीं कि सही, बटा, गुणा, भाग से हल कर ली जाय। एक पूरी की पूरी उम्र, पूरी की पूरी पीढ़ी का तजुर्बा होता है, हजारों लोग सोचते हैं, तब किसी नतीजे पर पहुँचा जाता है। इसलिए मैं तो क्या कह सकता हूँ, मैंने वही कहा जो अपने थोड़े से तजुर्बे से जानता हूँ।"

नयी बस्ती के लड़के एक ओर खाली जमीन पर जहाँ पार्क बनने वाला था, पर अभी बना नहीं था, पतंग उड़ा रहे थे। रह-रह कर उनका शोर उठता तो कानों को कुछ सुनायी न देता।

एक ओर सड़क पीटने वाला इंजन खड़ा था। उसे घेरकर कुछ लड़के खड़े थे। कहीं से उसी बस्ती के कोई बुजुर्गवार भी उन्हीं लड़कों में आ मिले थे और लड़कों के साथ खुद लड़का बन गये थे। एकाएक वे

इंजन पर चढ़ गये और ड्राइवर की सीट पर जा बैठे। उसके बाद नीचे खड़े लड़कों को बारी-बारी से हाथ पकड़ कर इंजन पर चढ़ाते और हरेक को अपने पास थोड़ी देर बैठा कर उन्हें इंजन के कल-पुर्जों से कुछ खिलवाड़ करने देते, फिर उतार देते। यह देखकर पतंग के मैदान से भी बहुत-से लड़के इंजन की ओर भाग आये।

मास्टर साहब का पौत्र, जहाँ वे बैठे थे वहीं से यह तमाशा देख कर उछल रहा था। उसकी जाँघिया का इलास्टिक कुछ ढीला हो गया था। उछलने के साथ जाँघिया नीचे खिसक कर उसकी जाँघ तक आ जाती जिसे ऊपर खींचकर वह फिर उछलता तो वह फिर नीचे खिसक आती...।

राय साहब और लल्लन बाबू दोनों ही यह देख कर अपनी बहस भूल कर हँसने लगे।

राय साहब उठ खड़े हुए। बच्चे को गोद में उठाते हुए कहा, "लगता है लल्लन बाबू, यह भी इंजन पर बैठेगा।" फिर बच्चे से पूछा, "क्यों, बैठेगा बेटा उस पर?"

बच्चे ने सिर हिलाते हुए इस तरह हाथ फैलाया मानो वहीं से उछल कर इंजन को पकड़ लेगा। राय साहब उसे कन्धे पर बैठा कर इंजन की ओर चल पड़े।

लल्लन बाबू, अपनी जगह पर बैठे-बैठे ही बच्चों के उस तमाशे की ओर देखते रहे। उनका चेहरा भी खिला हुआ था।

लेकिन सहसा उनका मन किसी गहरी टीस से बिंध उठा। उस तमाशे की ओर देखते-देखते ही न जाने क्या हुआ कि मन की सारी खुशी जाती रही। खिला हुआ चेहरा खिला न रह सका।

उन्होंने महसूस किया कि जिन्दगी में कुछ ऐसा है जो उनसे छूटता गया है, जिससे वह वंचित रहते आये हैं और उनका राजेन भी वंचित रहा है। और वह चीज रही है खुद जिन्दगी। यही हँसी-खुशी, यही शोरगुल, यही कहकहे जिनसे वे और राजेन दोनों ही वंचित रहे हैं।

जैसा अभाव इस वक्त महसूस हो रहा था वैसा कभी नहीं किया। दरिद्रता और तंगी के अभ्यस्त हो गये हैं। पर इतना रीता और छूँछा कभी नहीं महसूस किया। आज इतने दिनों का अभाव जैसे संचित होकर बड़ी

गहराई तक अपनी तीखी अनुभूति करा गया।

काफी देर तक अपनी जगह पर बैठे-बैठे ही वह सूनी आँखो से लड़कों का खेल देखते रहे। उसमे अब राय साहब और वह बुजुर्गवार पूरी तरह हिल-मिल गये थे। धीरे-धीरे अँधेरा फैल गया और बच्चे एक-एक कर अपने घरों को जाने लगे। बुजुर्गवार और राय साहब भी चले गये। अब वहाँ कोई नही रह गया। बढ़ते हुए अँधेरे में वह इंजन ही मानो किसी दैत्य की तरह खड़ा रहा।

एकाएक लल्लन बाबू की इच्छा होने लगी कि दौड़कर इंजन के पास पहुँचे और उस पर बैठ जायें। उसका एक-एक पुर्जा छुएँ और उसकी कालिख से अपने हाथ और कपड़े गदे कर ले। घर पहुँचेंगे तो माँ झिडकेंगी, गाँव मे कितनी बार कीचड़ और धूल मे सने घर पहुँचे हैं। माँ डाँटती और झिड़कतीं। कभी-कभी बदन और घुटनों से खून भी बहता रहता। माँ सिर पीट लेती। फिर मरने के आशीष देती हुई कैसे चिन्तित होकर पानी में कपड़ा भिगो कर पट्टी बाँधने का उपक्रम करने लगतीं···।

वह उठ खड़े हुए और उनके पैर आगे बढ चले—लेकिन इंजन की ओर नहीं, घर की ओर···। माँ अब कहाँ हैं। घर, गाँव, माँ-बाप सभी तो पता नही कहाँ खो गये है।

सात

लेकिन घर जाते हुए अपने ऊपर काबू रख पाना कठिन मालूम हो रहा था। अपने आप में सारा विश्वास ही जैसे हिल उठा था। इतनी शिथिलता इसके पहले महसूस नहीं की। उन्हें लगा, पैर के नीचे जमीन ही नहीं रह गयी थी। न कभी वह थे और न उनका घर।

अपनी जिन मान्यताओं को वे अब तक एक मूल्यवान धरोहर की तरह सहेजते आये थे, उसकी ओर किसी ने जैसे इशारा करके कह दिया

था, यह खजाना नहीं, राख का ढेर है। और इस राख को ही वह अ तक जमा करते आये हैं।

शाम गहरा आयी थी।

नयी बस्ती की रोशनी से जगमग करती आबादी छोड़कर उसके पीछे अपने घर की ओर बढ़ते हुए शाम और भी अँधेरी लग रही थी और मनहूस भी।

इसके पहले इधर से आते-जाते रहे हैं। इधर से तब से आते रहे है जब यहाँ जंगल थे और दिन डूबने के बाद इधर कोई आता नही था। अँधेरी रातों में हाथ को हाथ नहीं सूझता था। बिजली तो क्या, एकाध दीया भी बहुत दूर के गाँवों मे कभी टिमटिमाता दिखाई दे जाता।

उसके बाद जब जमीन की पैमाइश होने लगी तब भी इधर से ही जाया करते। शुरू में जरीब और फीते लेकर कुछ आदमी नजर आते थे। बाद में कुछ सवारियाँ और चन्द अच्छे भले आदमी वहाँ रोज सुबह-शाम टहलते दिखायी देते। अपनी जमीन का मुआयना करने आते थे वे लोग। उसके बाद जब पहले मकान की नीव पडी, और पहले मकान में गृह-प्रवेश की रसनचौकी बजी तब भी वे उधर से ही आये थे। और जब पूरी की पूरी बस्ती करीब-करीब आबाद हो चुकी तब भी वे उधर से ही लगातार आते-जाते रहे हैं। पर ऐसा एहसास कभी नही हुआ। इधर-उधर की चीजों को कौतूहलवश देख लिया, फिर सिर झुकाए अपने रास्ते चुपचाप चले आते थे। ऐसी बातें तो मन मे कभी नही उठी। ऐसा कभी नही हुआ कि इन चमक-दमक से लकदक मकानो को देख कर मन में ईर्ष्या का, अपना जीवन असफल हो जाने का भाव उठा हो।

घर नजदीक आ गया था। इधर बिजली की रोशनी नही आई थी, पर अँधेरे में ही दूर से भी वह अपने घर को पहचान सकते थे। उसकी एक-एक ईंट का नक्शा जैसे देख सकते थे। झंझरीनुमा खिड़की से लालटेन की बेजान-सी रोशनी बाहर छन रही थी। आगे खुरदुरे पत्थर की पटियों की घोड़ी थी। लखोरिया ईंटों की पुरानी जर्जर दीवार का पलस्तर जगह-जगह से उखड़ा हुआ था और जहाँ बाकी था

वहाँ ज्यादातर काई जमी हुई थी   उसमे कही कही घास उग आयी थी और फफूदी लगी थी। बूढ़ के दातो का तरह इट जगह-जगह हिला करती। बहुत कहने पर भी मकान-मालकिन नन्दो बुआ मरम्मत या सफाई नही कराती। कहती है—'तुम जो बारह रुपया किराया देते हो, उसमे मेरी भी गुजर नहीं होती, कली-मरम्मत कहाँ से कराऊँ? तुम करा लो, दो रुपया महीना काट लेना।' लेकिन इसके लिए कभी लल्लन बाबू के पास रुपये नही जुट पाये।

घर के सामने पहुँचे तो अन्दर जाने की हिम्मत नही हुई।

थोड़ी देर तक ठिठके-से खड़े रहे। एक मन हो रहा था कि इसी रास्ते पर चलते चले जाये। इतने दिनो तक मन को जो दबाते चले आये हैं, आज बहकने दे। लेकिन मन को बहकने न देना जो एक आदत-सी बन गई है, वही पैर आगे नही उठने देती। फिर जायेंगे भी कहाँ—आगे कुछ पोखरे हैं, खेत है और जामुन-पाकर के घने पेड़ों के बीच यह सडक पता नही कहाँ जाकर खो जाती है। उस रास्ते पर कहाँ जायेंगे।

निढाल हो वे अपने घर के चबूतरे पर बैठ गये। घर में किसी को आवाज या दस्तक नही दी। बस चबूतरे पर बैठे रहे। घर के अन्दर की आहटे आ रही थीं। राजेन की माँ दालान मे रसोई बना रही थी। कडाही मे कलछी की चलाने आवाज वह सुन सकते थे। राजेन अंग्रेजी का कोई पाठ रीडिंग लगाता पढ़ रहा था। नन्दो बुआ अपनी तरफ वाली दालान में 'हरी-हरी' का जाप कर रही थी और बीच-बीच मे विल्ली भगाने के लिए चिल्ला पड़ती थी—'बिल्ल रे···बिल्ल···।'

फिर कब कलछी चलने की आवाज और 'हरी···हरी' का जाप बन्द हो गया, कब राजेन ने पढ़ना बन्द कर दिया, उन्हें पता न चला। जैसे इन सब किसी भी चीज का अस्तित्व नही रह गया था। जैसे सब कुछ कही लोप हो गया था और अब खुद वे थे और यह बढ़ता हुआ अँधेरा। और धीरे-धीरे जैसे वे खुद भी अँधेरे में घुलते जायेंगे, घुलते चले जायेंगे।

एकाएक जैसे वे सोते से उठे। नन्दो बुआ अपनी दालान से ही चार-पाई पर पड़ी-पड़ी चीख रही थी—"अरी ओ लल्लन की बहू, तुझसे कुछ

कह गये हैं।···रात देर हो गई है···कहाँ रह गये ?···तुझसे कुछ कहा-सुनी तो नही हुई न···?"

"नही जीजी, कुछ भी नहीं हुआ। कुछ बताया भी नहीं कि कहाँ जायेंगे।" राजेन की माँ की आवाज से लगा जैसे वे अब रोईं, तब रोईं।

लल्लन बाबू ने सोचा, कि अब उठकर दरवाजा खटखटा देना चाहिए। लोग बेकार ही घबरा रहे है। लेकिन सिर्फ सोच कर रह गये। पता नही सारी ताकत क्या हुई ? कैसी है यह कमजोरी जो उठने भी नही देती।

फिर नन्दो बुआ हाँफती-कराहती उठी, चिल्लाकर कहा—"ला. लालटेन जरा तेज कर। जाती हूँ रघुनाथ साव की दूकान तक, देखूँ कुछ पता लगे।"

लल्लन बाबू सब जान-समझ रहे थे। उन्हें सारी आहटें मिल रही थी—नन्दो बुआ अब आँगन पार कर उनके हिस्से में पड़ने वाली सहन मे पहुँच गयी है।···राजेन की अम्मा ने लालटेन का कब्जा चढ़ाकर उसे लालटेन थमा दी है।···अब नन्दो बुआ बाहरी दरवाजे के गलियारे मे चल रही है, हाँफते हुए।···अब वह दरवाजे पर पहुँच गयी है।··· एड़ियाँ उचकाकर कुंडी खोलने के उपक्रम में उसके थलथल-भारी शरीर के बोझ से किवाड चरमरा रहे है।···फिर भी वह कुंडी नहीं खोल पाती और राजेन की माँ को आवाज दे रही है···।

अब दरवाजा खुलते ही वे उन्हें वहाँ बैठा देख लेंगी—जाने क्या-क्या सोचेंगी। फिर भी उनके मन के क्षोभ को समझ नही पायेंगी। और वे खुद समझा भी नही पायेंगे। इच्छा हुई कि उठकर चले जायँ वहाँ से, पर यह शिथिलता पता नहीं कैसी है, उठने ही नही दे रही है। फिर जैसे वे सब कुछ भूल कर वही बैठे रह गये।

दोनों औरतों के जोर लगाने से कुंडी पर जम कर बैठी हुई साँकल झटके के साथ खुल गयी। फिर लालटेन उठा कर दरवाजे के बाहर कदम रखते ही लालटेन की मद्धिम-सी रोशनी में अपनी बूढ़ी आँखों से भी नन्दो बुआ लल्लन बाबू को पहचान गयी।

उन्हें इस तरह बैठा देखकर ताज्जुब में पड़ कुछ क्षण अपनी जगह पर

ठिठकी खडी रही। मानो जो कुछ देख रही थी, उस पर विश्वास न कर पा रही हो। फिर सहसा ही चीख पड़ी।

"अरी ओ लल्लन की बहू !···ओ लल्लन की बहू, देख तो।···यही तो बैठे हैं !" लल्लन बाबू से पूछा, "क्यों भैया, यहाँ क्यों बैठे हो इस तरह···?"

राजेन की माँ उसके पीछे ही खड़ी थी। अपने मुँह पर हाथ रखे वे अवाक् थीं। जैसे काठ मार गया था उन्हे। कुछ समझ नही पा रही थी। राजेन भी दरवाजे के पास आ गया था। वह भी जैसे समझने की कोशिश कर रहा था कि क्या बात है !

नन्दो बुआ ने राजेन से कहा, "अरे ओ भैया, देखता क्या है।··· अपने बाप को सहारा देकर उठा ला घर मे !···लगता है इन्हे कुछ हो गया है।···देख न कैसे बदन ऐंठ रहे है।"

राजेन को लल्लन बाबू कही बदन ऐंठते नही नजर आये। शायद यह सब नन्दो बुआ की कल्पना थी।

नन्दो बुआ कहती जा रही थी, "मै कहती हूँ, रात-बिरात अकेले इधर से न आया करो। ई नयी बस्ती वालों ने सब पेड़-पाकर कटवा दिये है, तो उधर के भूत-परेत इधर के पेड़ों पर आ टँगे है। अब वे हमारे ही ऊपर बिसायेंगे। हमी गरीब-गुरबा है न ! ताकतवर लोगों को परेत भी नही लगते।···सबका गुरु तो वह लोरिका है, इधर के गूलर के पेड़ पर रहता है।···हमारे उनको भी कई बार लगा।···वह भी इसी तरह कितनी ही बार दरवाजे पर आकर धस्स से गिर पड़े। पर वो तो मैंने गुरुमन्तर करवा दिया था, कभी कुछ हुआ नहीं।"

राजेन लल्लन बाबू के पास आकर उन्हें उठने के लिए कह रहा था। तब तक नन्दो बुआ ने उसे रोक दिया और दौड़कर भीतर से एक मुट्ठी लाल मिर्च उठा लायी। सकट ने बुढ़ौती में भी उसके शरीर में कितनी ताकत भर दी थी। वह लल्लन बाबू के पास पहुँची और उनके सिर के ऊपर मिर्च से भरी मुट्ठी घुमाते हुए होठों में बुदबुदाकर कुछ मंत्र पढने लगी। फिर अपनी मुट्ठी पर ही दो-तीन बार फूँक मार कर मिर्चों को आँगन में रखी बुझती हुई अँगीठी में डाल दिया। उसके बाद राजेन से

कहा हाँ भैया अब उठा इन्हें कोई डर नहीं है अब मैंने मन्तर पढ़ दिया है, उठा इन्हें···।"

लल्लन बाबू कुछ खीझ से उठे। रुखाई से कहा, "मुझे कुछ भी नहीं हुआ है।···यह क्या तमाशा मचा रखा है तुम लोगों ने !"

"वाह !" नन्दो बुआ ने कहा, "इतना हो गया और कुछ हुआ ही नहीं ! ये तो मुझे पुराना गुरु मन्तर याद था। कैसे न भागता, मेरे फूंक मारते ही बोलने लगे हो, अब तो कहोगे ही कि कुछ नहीं हुआ।"

लल्लन बाबू ने उससे बहस न करना ही उचित समझा। राजेन को अभी तक सारी बात समझ में नहीं आयी थी। नन्दो बुआ ने दुबारा कहा, "उठा न बेटा इन्हें ! बाहर ठंड बहुत है, अब सीत न पकड़ ले।"

लेकिन राजेन के बढ़ने के पहले ही लल्लन बाबू झटके से उठ खड़े हुए और पहले जैसी ही रुखाई से कहा, "अभी तेरे सहारे की जरूरत नहीं मुझे।" फिर बिना किसी से कुछ बोले, सबसे कतराते हुए तीर की तरह घर के भीतर चले गये। पीछे-पीछे राजेन और उसकी माँ आयी। राजेन की माँ का कलेजा अभी तक धक्-धक् कर रहा था। लल्लन बाबू को अच्छा-भला देखकर कुछ ढाँढ़स बँधा, पर वह ढाँढ़स जैसे टिक नहीं पा रहा था। रह-रह कर वह आशंका से सिर से पाँव तक सिहर उठती।

नन्दो बुआ को अभी तक पूरा विश्वास था कि लल्लन बाबू किसी प्रेतबाधा के शिकार हो गये हैं। गठिया के मारे रात को वह सगड़ी में जो भुस्सी सुलगा रखी थी उसे उठा लायी, फिर राजेन की माँ से सूखी मिर्चें लेकर लल्लन बाबू के सिर के ऊपर एक बार और घुमायी और सगड़ी की सुलगती आग में डाल दी। चिट्-चिट् कर मिर्चें जलने लगीं, उसके चिरायन धुएँ से कोठरी भर उठी। लोगों की आँखों और नाक से पानी निकलने लगा। लेकिन नन्दो बुआ इससे बेपरवाह थीं। उसका चेहरा सन्तोष से भर उठा। नाक-आँख से बहते पानी को पोंछ कर अपनी खाँसी दबाते हुए कहा, "अब कोई डर नहीं लल्लन की बहू—देखो न, मिर्चा महक गया। मैं तो जानती थी कि किसी की नजर पड़ गयी है, इसीलिए पहली बार मिर्चा महका ही नहीं। पर अब कोई डर नहीं, मैं

चलती हूँ, कोई बात होगी तो बुला लेना, यही तो हूँ मैं।"

लल्लन बाबू के क्षोभ की सीमा न रही। पर बोले अब भी वे कुछ नहीं। उसके व्यवहार पर इसके पहले भी बहुत बार झल्लाहट हुई है अजीब-अजीब बेसिर-पैर की बातें किया करती है वह। पर आज की ही तरह बोल वे पहले भी कुछ नहीं पाये। राजेन जब बच्चा था, तो अपने पास उसे बैठा कर घंटों न जाने क्या बताया करती, पता नहीं कैसे-कैसे अजीब-अजीब से किस्से सुनाया करती। राजेन की माँ से भी अजीब-अजीब टोटके और व्रत करवाती। कभी मकान-मालकिन होने के नाते बहुत बेकार-सी बातों पर भी झगड़ पड़ती, कभी बहुत गन्दी बातें भी किया करती राजेन की माँ से—कि मर्द के पास कब सोती है, कैसे सोती है, खुद जाती है या बुलाने से···।

उसकी इस तरह की बातों से तन-बदन में आग लग जाती, पर ऊपर से कभी लल्लन बाबू कुछ कह न सकते। एक तो उसके मकान-मालकिन होने का लिहाज करते, दूसरे अपनी छोड़ दूसरे की वह सुनती भी न। ऐसी औरत से मगजमारी करके करेंगे भी क्या? फिर कभी-कभी वह काम भी आती। कभी राजेन की माँ बीमार पड़ती तो वह खाना बना देती। कभी लल्लन बाबू को आटा पिसवाने की फुर्सत न रहती, वह टोले-पड़ोस के किसी को बुलाकर या किसी के न मिलने पर खुद ही चक्की पर जाकर आटा पिसवा देती। कभी उनके न रहने पर दो-चार पैसों की जरूरत पड़ जाती, वह जाने कहाँ से निकाल कर दे देती। और इस तरह शुरू-शुरू के झगड़ों के बाद भी उनमें मकान-मालकिन और किरायेदार का रिश्ता एक घरेलू रिश्ता जैसा बनता गया था। जैसे वह उन्हीं के परिवार की कोई बूढ़ी पुरनिया थी।

लेकिन और दिनों की और आज की मजबूरी में फर्क था। आज सिर्फ मजबूरी नहीं थी। लल्लन बाबू को सबसे ज्यादा क्षोभ यह था कि वह उनकी असली तकलीफ को समझे-बूझे बिना ही अपने टोटके-मन्तर करती जा रही थी। पर अपनी तकलीफ उसे समझायें भी कैसे? कैसे उसे यह बतायें कि वे राजेन की और खुद अपनी जिन्दगी के अहम मसलों को लेकर परेशान हैं। उसकी समझ में बात पैठती भी न। फिर वे उसे

डाँट-फटकार कर भगा भी नहीं सकते थे। इसीलिए अन्दर ही अन्दर उमड़ते क्षोभ को दबाये वह चुपचाप पड़े रहे। एक बेवकूफ, जाहिल औरत को डाँट-डपट कर भगा भी नहीं सकते—यह एहसास उनके हीनता-बोध को और अधिक बढ़ाता जा रहा था।

राजेन की माँ सहमी-सहमी नजरों से उन्हें देखती रहीं। फिर जैसे बहुत हिम्मत करके उन्होंने पूछा, "क्या बात हो गयी, बताते क्यों नहीं?"

"अरे कुछ भी नहीं हुआ है भाई, देख नहीं रही हो मुझे, नाहक परेशान क्यों कर रही हो···?"

राजेन की माँ को उनका यह व्यवहार बहुत अनजाना-सा लगा।

और कभी होता तो वे शायद अब तक बिगड़ पड़ते, डाँटते, चिल्लाते। कितनी ही बार डाँट-फटकार कर उन्हें रुला लिया है। पर आज उनका न डाँटना ही जैसे रुलाये दे रहा है। क्यों इतने बदल गये? पहले से कहीं अधिक डर गयीं। कहा, "तुम्हें मेरी कसम, तुम्हारे लड़के की कसम जो कुछ छिपाया।"

जी में आया कि राजेन की माँ को झाड़-फटकार दे कि ये क्या बेकार की बकबक लगा रखी है। हर ओर की विक्षिप्तताओं का सञ्चित क्षोभ यहीं तो बरसता था। लेकिन आज बात गले तक आकर भी बाहर नहीं निकली। बहुत अशक्त से वे राजेन की माँ की ओर देखते रहे। उनका दयनीय, रुँआसा चेहरा देखकर मन में पछतावा हो रहा था। कैसी है यह औरत भी जो जिन्दगी भर सहती आयी है! नाहक उस पर बात-बेबात पर बिगड़ते रहे है। डाँट-फटकार, घुड़कियों के सिवा उनसे उसे मिला भी क्या है। आज तक कभी इस पर सोचा नहीं और आज जब यह समझ रहे हैं तो उसके चेहरे पर मुस्कान की एक हल्की-सी रेखा तक ले आने में असमर्थ हो रहे हैं।

—राजेन सो गया था।

—सो गया था, या लालटेन बुझाकर सोने का सिर्फ दिखावा करता पड़ा था? हाँ, शायद बहाना ही था। चादर उसने सिर तक तान रखी थी, पर बार-बार करवटें बदलकर चादर ठीक कर रहा था। नींद में

आदमी यह नही करता। और राजेन तो बिलकुल नही करता यह सब वह एकदम बेखबर सोता है। और उसे चादर-वादर का फिर कोई ख्याल नहीं रहता। उन्ही को या उसकी माँ को अक्सर उठ-उठ कर उसकी चादर ठीक करनी पड़ती है। जाग ही रहा होगा। लल्लन बाबू ने सोचा कि शायद फिक्र में पड़ गया था कि मुझे यह क्या हो गया ?

—लेकिन वह कुछ समझ भी रहा होगा या नही ?

हर बात पर चुप ही रहता है, उनके सामने तो जैसे मुँह भी नही खोलता। पर आज भी वह क्या लिहाज के ही कारण कुछ नही बोला ?। लेकिन आज शायद लिहाज न करता। नन्दो बुआ और खुद उसकी माँ जिस तरह हैरान थी उसे देखकर भी अगर वह सब कुछ समझता न होता तो कभी इस तरह चुप न रहा होता। इतना नासमझ और खुदगर्ज तो नही था कि उन्हे कुछ सचमुच हो जाता तब भी वह परमहंस बना रहता। नही, वह जरूर सब समझता रहा है। उनकी सारी चिन्ताएँ, क्षोभ, निराशा सब कुछ समझता रहा है, इसीलिए कुछ नही बोला और शायद उसी पर अब भी सोच रहा है जो उसे नींद नही आ रही है।

लल्लन बाबू को इससे सन्तोष और खुशी हुई। और लोगो की तरह उनका बेटा बेवकूफ नही था—जो बेकार की चिन्ता और फिकर नही दिखायी। राजेन से सहसा उन्हे बड़ी निकटता महसूस होने लगी। मन उसके प्रति स्नेह से भर उठा। हल्का पछतावा हो रहा था कि वही आज तक उसके दुख-तकलीफ, उसकी इच्छा-अनिच्छा की ओर से उदासीन रहे है। उनका मन हुआ कि उसे अपने पास बुला लें और अपनी ही चार-पाई पर सुला ले। जो उसके लिए नही कर पाये है, उसके अभावों को अपने वात्सल्य से पूरा कर दें।

वह धीरे से हँस पड़े—बच्चा तो है वह, पर इतना छोटा नही कि अपने पास सुलाकर उसे दुलराये। उसके भले-बुरे, पढ़ाई-लिखाई की, बीमारी-आरामी की चिन्ता ही कर सकते हैं। अपनी जगह से ही उन्होंने पुकारा, "राजेन !"

राजेन कुछ नही बोला।

उन्होने फिर पुकारा, "राजन !"

"हूँ !" इस बार जैसे उसने बिना मुँह खोले ही उत्तर दिया।

"अभी तू सोया नही ?"

"जी नही, हाँ, लेकिन अब सो रहा हूँ।"

"हाँ, जल्दी सोना चाहिए तुझे ! सुबह उठ कर पढ़ना भी तो होता है।"

"जी !"

"तो अब सो जाओ !"

"जी !"

राजेन की माँ की जैसे रुकी हुई साँस लौट आयी। लल्लन बाबू अपनी स्वाभाविक मुद्रा में आ गये थे। जैसे किसी संकट के बोझ से मुक्त होकर वह धीरे-धीरे अपनी चारपाई से उठी और कहा :

"आज खाना तो ऐसे ही पड़ा रह गया।"

"खाना पड़ा है ?" लल्लन बाबू चौंक पड़े, क्यों पड़ा है, और क्या राजेन ने भी कुछ नही खाया ?"

"नही जी।"

"नहीं, क्यों ?"

"तुम्हारा जी जो खराब था, ऐसे में खाने की कौन सोचता !"

"ये तुमसे किसने कहा। तुम्ही लोगों ने तो तिल का ताड़ बना दिया। क्या आदमी कभी थकता या अफसोस नहीं करता ? और राजेन को तो खिला दिया होता..."

फिर वे खुद ही राजेन की चारपाई तक गये। उसे उठाया और कहा, "मुझे कुछ भी हो, तू खा लिया कर। चल उठ...।"

"और आप ?"

"तू खायेगा तो मैं भी खाऊँगा।"

दोनों बाप-बेटे उठकर पीढ़ों पर बैठ गये। राजेन की माँ रसोई में थाली लगाने चली गयी।

आठ

पिछले कुछ दिनों से रामलखन जी के मकान का काम फिर धीमा हो गया था। दीवारें कब की उठ चुकी थी, फिर उन पर धीरे-धीरे पलस्तर होता रहा। देखते-देखते झाड़-झंखाड़ कूड़े-कतवार से भरी उस जमीन में जैसे एक मकाल उठता आ रहा था। शायद मकान का भी एक बीज होता है—मिट्टी, सीमेंट, बालू, चूने, ईंटों का बीज जो बढ़ते-बढ़ते मकान का रूप ले लेता है। या शायद यह बीज रुपये का होता है जिसे बोया जाता है। वही एक-एक ईंट ऊपर उठते हुए एक मकान बन जाता है।

इधर जितने दिनों रामलखन जी के मकान का काम धीमा था, वे खुद भी कम दिखायी देते थे। लेकिन एक दिन फिर वहाँ ट्रकों में भर कर सीमेंट की बोरियाँ आ गयी। मजदूरों का जत्था आ गया। और काम फिर तेजी से होने लगा। पहले की ही तरह फिर रात को भी सौ-सौ पावर के बल्ब जला कर काम जारी रहता।

रामलखन जी भी बगल के एक मकान में एक कमरा लेकर मानो फौजी मोर्चे पर आ डटे हैं। रात-दिन सामने खड़े होकर अपने बीज का फलना प्रसन्न-मुग्ध भाव से देखा करते।

अब छत पड रही है। दिन भर लोहे की जालियाँ बिछायी गयी. अब रात को ही उन पर मसाला फैला देना है। इधर नये-नये मकान खूब बन रहे हैं। राज-मिस्त्री और मजदूरों की माँग बढ़ गयी है। वे आसानी से नहीं मिलते। कहीं काम लगाते है तो जल्दी से काम पूरा कर अगले काम पर लग जाते हैं। सारा सामान आ गया है। अब और देरी नहीं करनी है।

रामलखन जी जिस मकान में कुछ दिनों के लिए आ गये हैं, उसके बरामदे में अंडी ओढ़े आर्मचेयर पर बैठे मजदूरों के काम का मुआयना कर रहे हैं। उनका भावी पड़ोसी भी पड़ोसी धर्म का निर्वाह कर रहा है। वह भी बगल में बैठा है। उन्हें पूरा सहयोग दे रहा है वह। जब पड़ोसी बनना ही है तो पड़ोसी धर्म का निर्वाह होना ही चाहिए। वह

उन्हे अपना मकान बनने के अनुभव सुनाता हुआ यह बता भी रहा है कि जरा-सी गफलत होते ही कैसे मजदूर चालबाजी कर देते है, और एक की जगह चार खर्च करा देते हैं, कैसे वे माल-मसाला और इमारती सामान सप्लाई करने वालों से मिल कर हर चीज का डेढ़ा-दूना दाम करा देते है और रुपया हड़प जाते है। कैसे वे एक दिन का काम खींच कर एक हफ्ते का बना देते हैं।

यह सब सुन कर रामलखन जी का खासा मनोरंजन हो रहा था। उन्हें अपने आप मे विश्वास है। कोई उन्हें चरका नही दे सकता। उनकी अपनी बुद्धि तो है ही, एक उपमंत्री और भावी मंत्री का अन्तरंग होने का रोब-दबदबा भी है। अनेक अवसरों पर उनके साथ अपनी फोटो भी अख-बारों में छपवा चुके हैं। अब शहर का बच्चा-बच्चा जानता है कि वे क्या हस्ती है। अमले-अहलकार भी जानते हैं, दबदबा भी मानते हैं। जिसका चाहें तबादला करा दें, चाहें तो तरक्की रुकवा दें। एस० डी० ओ० सदर मुबारक अली का किस्सा किसको नही मालूम है। अपनी काबलियत के बल पर सोचता था कि उसका कोई कुछ बिगाड़ नही सकता। रामलखन जी मिलने गये तो अदालत कर रहा था और अपने रिटायरिंग रूम मे एक घंटे बैठाये रहा। बाबूजी से इतना ही कहा था कि आपके होते जन-प्रति-निधियों की यह तौहीन ! और वह इसी जिले की एक ऐसी बीहड़ तहसील मे भेजवा दिया गया था कि लन्दन पहुँचना तो आसान था पर वहाँ पहुँ-चना नहीं। याद करते होंगे बच्चू ! छोटे-मोटे व्यापारियों की क्या हस्ती है जो उन्हे माल ऊँचे दामों पर सप्लाई करें या माल न दें। उन्हे अपना लाइसेंस-परमिट रद्द करना हो तो ऐसा करें। वैसे खुद रामलखन जी कहते हैं. 'चाहें तो सारा सामान मुफ्त उठवा लायें, मजाल नहीं जो कोई इन्कार कर दे, पर वही मंत्री से अपने घरापे का कोई नाजायज फायदा नही उठाना चाहते। आखिर गांधी जी की आत्मा धिक्कारेगी तो क्या जवाब देंगे। हां, अब कोई अपनी ओर से कुछ नजर कर जाय तो बात दूसरी है, अब जैसे इसी मकान में ठेकेदार ने दस हजार ईंटें मना करने पर भी गिरवा दीं, सीमेंट के लाइसेंसदार ने पच्चीस बोरियाँ सीमेंट गिरवा दी तो मना नहीं कर सके। उनकी भी अपनी कोई गरज

होगी, ऐसे ही चेहरा देख ससुरे किसी को कुछ थोड़े ही दे देते हैं।"

भावी पड़ोसी रामलखन जी की इन बातों से प्रभावित हुआ। वह अपने अनुभवों की बात छोड कर घुमा-फिरा कर अपने बी० ए० पास बेकार बैठे लडके और अपनी परेशानियो की बातें करने लगा। रामलखन जी के होठों पर एक हल्की मुस्कान फैल गयी जिसे अँधेरा होने के कारण उनका पडोसी देख भी न सका···।

रात भी काफी हो गयी थी। बढ़ती ठंड से रामलखन जी के बदन पर पडी अंडी अब हल्की पड़ने लगी और उनकी थकी हुई आँखों में भी नींद झाँकने लगी। तब उन्होंने मिस्त्रियों के मेट को बुलवाया और इस बात से आश्वस्त होने के बाद कि छत रात भर मे पड़ जायेगी, वे उठ कर सोने चले गये।

सुबह और भी बहुत से काम करने थे। विधान सभा की बैठक खत्म हो गयी थी, बाबू जी सुबह की गाडी से आने वाले थे। उन्हें लेने स्टेशन जाना था। बल्लू माली से एक मोटी-सी माला गछने को कहला दिया था, पता नही वक्त से पहुँचा जायेगा या नही। फिर उनके आने के साथ ही काम बढ़ जायेगा। नाटक नहीं होगा तो क्या। अभिनदन समारोह तो होना ही है। बाबू जी से कहा जा चुका है कि पचासवी जयन्ती पर विशाल अभिनंदन समारोह होगा। प्रदेश के मुख्यमत्री श्री मदानन्द जी से उद्घाटन कराया जायेगा। वे तैयार हो गये है। यह जरूरी भी है। उनकी लोकप्रियता का ऐसा सिक्का जमा देना है कि अगले चुनाव में टिकट उन्हीं को मिले। कौन जाने कृपा हो जाय तो उसी में मुझे भी एम० एल० ए० का टिकट मिल जाये। न भी मिले तो क्या? बाबू जी का मंत्री बना रहना जरूरी है।···जगदीश बाबू ने जमा ही कितना किया था। सिर्फ बीस हजार जिनमें से वे खुद चार हजार हथिया ले गये। एक हजार रिहर्सल में खर्च हुआ। अपने को क्या मिला। पन्द्रह हजार भी कोई रकम होती है? अब की कम से कम पचास हजार चन्दा करना है। बीस हजार की थैली बाबू जी को भेट करनी है। इतना ही नहीं, समारोह पर भी खर्च होगा, फिर भी इतने से अपने पास भी कुछ दिखायी देगा। पता नही, ईंटों वाला और सीमेंट

वाला चन्दा देगा या नहीं। ईंट और सीमेंट भेजवा दिया है इसलिए कुछ मुँह खोल कर माँग नहीं सकते, फिर भी बाबू जी के लिए कुछ तो देंगे ही।

" नाटक भी कोई खेल लिया जायेगा। कन्या-कलानिकेतन की प्रिंसिपल बाबू जी को खुश करने के लिए कुछ भी उठा न रखेंगी। उनके स्कूल को कितनी ग्रांट दिलायी है बाबू जी ने और उन्ही की बदौलत वे अपने पद पर बनी हैं। वे अपनी नाटक और नृत्यमण्डली अवश्य भेजेंगी। अतुलवा समझता है कि उसी के सहयोग से सांस्कृतिक कार्यक्रम हो सकता है।'''पता नहीं किसने सांस्कृतिक कार्यक्रम ऐसे समारोहो मे जरूरी बना दिया है, कौन कहता है कि जनता पर असर के लिए कलाकारो का सहयोग अच्छा होता है। जो असरदार होगा उसके आगे-पीछे दौड़ेंगे ही। ये जगदीश बाबू ने ही यह तमाशा खड़ा किया था, उस छोकरी को हीरोइन बनाने के लिए। पता नही उनका क्या-क्या इरादा है। खैर''' कौशल्या अपने निकेतन की मण्डली भेज देंगी तो अतुलवा को भी पता चल जायेगा कि उसके बिना भी सब कुछ हो सकता है। और जगदीश बाबू भी कलाकारों को 'प्रोत्साहन' देने का मजा लें थोड़ा। सिर्फ चार हजार ही मिलकर रह गया। " रामलखन जी यही सब सोचते-सोचते सो गये।

लल्लन बाबू को नींद नही आ रही थी।

उस दिन की घटना को तीन-चार दिन बीत चुके थे। असन्तोष का जो भाव मन में घर कर गया है, इस बीच जैसे और अधिक सालता रहा। अपनी स्थिति को लेकर पहले किसी तरह का तनाव नही महसूस किया। जो कुछ है उसी को अपनी नियति मानकर एक लीक पर जीते रहे है। मन में कभी कोई संघर्ष नही उठा। अब लगता है मानो वे कोल्हू के बैल हो जिसकी आँख पर पट्टी बाँध कर कोई और एक ही घेरे में चक्कर लगवाता रहा है।

कोशिश करते हैं कि इन पर सोचना छोड दें। सफल भी होते है, पर बातें हैं कि लौट-लौट आती हैं। समस्याएँ जैसे जाल की तरह कसती

जाती हैं। और फिर उससे छूटने के हर प्रयत्न पर उसमें और बुरी तरह कस जाते हैं। '' राजेन को अभी कम-से-कम चार साल और पढ़ना है पर वह अपनी पढ़ाई पूरी भी कर पायेगा या नहीं। अगर बीच में य इम्तहान के पहले ही बीमार पड़ गया तो'''? पड़ सकता है। यहाँ इस घर में बहुत गंदगी रहती है। साफ हवा, पानी नहीं मिल पाता।''' जाड़े के ठीक कपड़े भी नहीं होते बदन पर। कहीं ठंड न लग जाय, न्यूमोनिया न हो जाय उसे।'''एक मामूली स्वेटर और कोट में कम-से-कम पचास-साठ रुपये लग जायेंगे। चपरासी किशोर अभी रुपये उधार नहीं देगा। पिछले साल रजाइयाँ और तोशक बनवाये थे। उसके लिए दो सौ लिया था जिसे अब तक पन्द्रह-पन्द्रह रुपया, मय ब्याज के चुका रहे हैं। फिर भी चाहे खाना न मिले, कपडा तो जरूरी है। खाना घर में कोई नहीं देखता, कपडा सब देखते है। लेकिन खाना भी ठीक न मिलने का वही नतीजा होगा जो कपडा न होने का होगा। बीमारी भी पकड़ सकती है, कभी कोई गहरी बीमारी हो जाए तब क्या करेंगे। अपनी भी उमर उतार पर आ गयी है। दाँत हिलने लगे हैं और आँखों से पढ़ते या लिखते समय पानी आया करता है। चश्मा लेना पड़ेगा। खींच रहे हैं जब तक खिंच जाय। पर मजबूर हो जायेंगे तब तो लेना ही पड़ेगा। तीस-चालीस से कम का नहीं आता।

राजेन की माँ को अक्सर नजला हो जाता है। उसका जोर होता है तो अशक्त हो जाती है। फिर भी कराहते हुए सारा काम करती रहती हैं। न करें तो करेगा भी कौन? नन्दो बुआ एकाध दिन काम में हाथ बटा देगी। पर रोज तो वह भी नहीं कर सकती, खुद भी गठिया के मारे कराहती रहती है।

कई बार सोचा है कि किसी अच्छे डाक्टर को या अस्पताल में दिखा दें। बहुत दिनों से यह सब मुलतवी करते आ रहे है। पर अब लगता है, नहीं कर पायेंगे। ऐसा न हो कि तिनके-तिनके जोड़ कर जो गिरस्ती बनी है वह भी किसी दिन ढह जाय। ऐसे समय लल्लन बाबू को अन्दर-ही-अन्दर एक गहरा भय कँपा जाता है। वे मन-ही-मन अपने को फटकारते हैं। ऐसा उन्हें नहीं करना चाहिए। अब कुछ मुलतवी नहीं करना चाहिए।

लेकिन यही होना होगा तो क्या वे रोक सकेंगे ?

अपने आपको वे सहसा बहुत कमजोर महसूस करने लगते है। दम घुटने लगता है, दिमाग घूमने लगता है। उठ कर पानी पीते हैं, टहलते है, फिर बिस्तर पर पड़ जाते हैं। पर नींद इस पर भी नही आती। भोर में कही जाकर एकाध झपकी ले पाते हैं।

—जहाँ उनकी चारपाई है वहाँ से ओसारे का रसोई वाला हिस्सा दिखाई देता है। दीवार में कील गाड़ कर पटरे पर मसालों के डिब्बे औ' हाँड़ियाँ रखी है।···मैली, कालिख से काली। नीचे एक ओर कील पर मद्धिम करके लालटेन टँगी रहती है, ताकि कोई उठे तो एकदम अँधेरा न रहे और जरूरत हो तो तेज कर ले।

कभी-कभी तेल चुक जाता है तो लालटेन की रोशनी धीमी होते-होते भक् से बुझ जाती है।

आज भी शायद तेल खतम हो गया था। लालटेन की मद्धिम की हुई लौ धीरे-धीरे और भी क्षीण हो गयी, फिर दो-तीन बार भभक कर बुझ गयी। कोई छिपकली जो अब तक थोड़ी-सी रोशनी की वजह से लालटेन के पास दीवार में चिपकी कीड़ा को तलाश रही थी, सरसरा कर भगी। पटरे पर कोई डिब्बा शायद उसके धक्के से लुढ़क कर नीचे गिर पड़ा।

लल्लन बाबू की आँखे आज दफ्तर में कुछ ज्यादा ही दुखी थीं। एक और चिन्ता यह हो गयी थी कि काम में कही भूल न रह गई हो। हिसाब-किताब का काम ठहरा। भली आँख से भी गलती हो जाने का खतरा रहता है। ··पर चश्मा बनवाने मे कम-से-कम चालीस रुपये लगेंगे ···कहाँ से लाये···?

उसी वक्त लालटेन बुझ गयी थी और डिब्बा लुढक कर गिरा था। अर्द्धनिद्रित-मे लल्लन बाबू जो कुछ सोच रहे थे उसका क्रम टूट गया। हड़बड़ा कर उठ बैठे चारपाई पर। पता नही, किस चीज का डिब्बा गिरा था।

···लगा कि यह अँधेरा उन्हें सदा से घेरे रहा है। जब से आँखें खोल कर देखने लायक हुए हैं तभी से। और राजेन की अम्माँ इसी

तरह नजल से कराहते हुए सोयी हैं और वे हमेशा ऐसे असमर्थ रहे कि चूहे या छिपकली से गिराये डिब्बे भी उठा कर सीधे नहीं कर सके हैं।

एकाएक वहाँ लेटा रहना भी उन्हें मुश्किल लगने लगा। आँगन से आती तेज खारी बदबू दिमाग मे भर उठी जैसे नाबदान मे खुद उनकी और नन्दो बुआ की रसोई का पानी बहता रहता है। काई और कीचड कितना ही साफ करो, साफ नहीं होता। रात-बिरात लोग वहाँ पेशाब भी करते हैं। हर आदमी पेशाब करने के बाद कंडाल से एक-दो डिब्बा पानी डाल देता है, अक्सर चूना और डी० डी० टी० छिडका है। फिर भी सड़ी हुई बदबू जो बसी है तो निकलती ही नही। और इसी मे कीड़ों की तरह जीते हुए सोलह साल निकल गये हैं!···मन मे आँधी भी उठ रही है, पर वह भी अपनी असहायता को समझ कर जैसे इन्हीं सीमाओ मे घुटती जा रही है। क्या इसीलिए नीद नही आती ?

या फिर इसलिए कि चारपाई में खटमल है ? हाँ, हैं तो! और शायद उसी दिन से, जिस दिन से इस घर मे आये है। न मालूम कितनी बार खौलते पानी में मिट्टी का तेल मिला कर और दूसरी जहरीली दवाइयाँ चारपाइयों के पोर-पोर में छोड चुके हैं। पर वे एक बार जहाँ पड़ते हैं, वहाँ से जाते ही नहीं! कम हो जाते है, जाते नही। लेकिन ऐसा क्यों, कि उन्हीं को तंग करते हैं ? राजेन और उसकी माँ तो कभी इतने तग नही होते, लेकिन नही। वे भी तंग होते हैं। हाँ, कुछ कहते नहीं वे। कई बार देखा है—राजेन उठ कर अपनी चारपाई पर आध-आध घंटे बैठा रहा है। कितनी ही बार उसे दीवार से पीठ रगड़ते देखा है। पर वह बहुत सहनशील, सीधा लडका है। कभी किसी से कुछ नहीं कहता।

—हुँ, अजीब भोंदू लड़का है, कहता क्यों नही कभी कुछ। शिकायत क्यों नहीं करता ··?

—जब खुद उसकी उमर के थे···!

—या नही! शायद उससे कुछ कम उमर के थे। हाँ, उससे कम उमर के थे। बभने टोले के सितई भगत के लड़के ने पेड़ से झरी इमली की

छीना-झपटी करते हुए उन्हें नागफनी के झाड़ में ढकेल दिया था नागफनी के पूरे पत्ते पर सारा पैर पड़ गया था। नुकीले काँटे आध-आध इंच धँस गये थे। घर से दूर थे, पर जाने कैसे माँ ने उनकी चीख सुन ली थी और दौड़ी आयी थी। एक-एक काँटे चुन कर निकाले थे माँ ने। और हाँ, श्याम – सितई भगत के लड़के ने भी।

—अब फिर जैसे किसी ने उन्हे इसी नागफनी के झाड़ मे ढकेल दिया है। न पैर उठा सकते हैं, न रख सकते है। लेकिन माँ क्यो नही आती···? माँ···माँ ··! आँखो में नीद का जाला तनते-तनते फिर फट गया।

अगले दिन बिजली के बिल जमा करने की आखिरी तारीख है। सुबह से ही बिल जमा करने वालो की लम्बी लाइनें खिड़कियो पर लगती हैं। पाँच-पाँच खिड़कियों के होते हुए भी जैसे भीड़ खत्म होने का नाम नही लेती। सुबह से शुरू होकर पाँच बजे शाम तक जो बिल आयेगा वह लेना पड़ेगा। बिल की तारीखो पर रेजिडेंट इंजीनियर साहब लंच का वक्त भी आध घंटे से घटा कर पन्द्रह मिनट कर देते है। लोग भी ऐसे हैं कि आखिरी तारीख को ही बिल जमा कराते हैं। खुद तक-लीफ उठाते हैं और हमे भी परेशान करते हैं। शाम को भी ओवरटाइम पर बैठना पड़ता है। सारा हिसाब-किताब नकदी से मिलाकर जमा करना होता है। हजारों रुपये का हिसाब रहता है। एक पाई का भी फर्क नही रहना चाहिए। ओवरटाइम के पैसे थोड़े मिल जाते है, पर तबालत उससे ज्यादा होती है। ऐसे मे अगर रात भर थके रहेंगे तो क्या कर पायेंगे ?

—पर ये कमबख्त रात को क्यो काम करते है ?

—लगता है, आज रात फिर सोने नही देंगे !

लल्लन बाबू को लग रहा था मानो शोर बढता ही जा रहा हो। मजदूर छत ही नहीं पीट रहे है, ऊँची आवाज में कुछ गा भी रहे है। नीचे से बाँस के पुल के सहारे ऊपर गारा ढोने वाली औरतों की आवाजें ज्यादा तेज हैं। कोई सुर-ताल भी नही है। सिर्फ एक कोई बेसुरी-सी कड़ी

है जिसे वे बार बार दहराती जा रही हैं   सोनवा के खतवा उजरि गै हो···।'

बीच-बीच में मसाला मिलाने वाले डोल की झमझमाहट भी होती है। उसी बीच कोई एक औरत एक कड़ी उठाती है—'सोनवा के खेतवा'··। और सब उसके साथ इसी कड़ी का अन्त करती है—'उजरि गैले हो···।' डोल फिर बीच मे जोर से झमझमाता है, और इसी बीच फिर उनके गाने की कोई दूसरी कड़ी उभरती है।

मजदूरों को इस गाने से अपने काम मे चाहे जितनी मदद मिलती हो, लल्लन बाबू पर इसका दूसरा ही असर पड़ रहा था। ठोक-पीट की आवाजे, डोल की झमझम, मजदूरों की चिल्लाहट और ऊपर से यह तेज आवाज में गाना उनके ऊपर बोझ की तरह भारी होता जा रहा था।

वे तैश मे भरे बिस्तर से उठ बैठे। मन में गुस्सा सुलगा हुआ। आज इस बात का फैसला होकर रहेगा कि रात को यह शोर-गुल बन्द होगा या नहीं!

पिछली बार मजदूरो के सरदार से वे झगड़े थे तो लौट आये थे। उस वक्त मेट ने कहा था कि जिस बाबू का मकान बन रहा है, उसी से जाकर कहें। उस वक्त कोई जवाब नही सूझा था। बाद मे इस पर सोचा था और लोगों से बातें भी की थी। खुद उन्हें भी पता था कि अगर किसी को मकान बनाने का हक था तो उन्हें रात को सोने का भी हक था। स्कूल में नागरिक-शास्त्र की किताब में उन्होने यही पढ़ा था कि आजादी होने का यह मतलब नही कि रात को कोई कनस्तर पीटे। वे मुकद्दमा कर सकते थे। हालाँकि राय साहब और दफ्तर के निर्मल बाबू ने सलाह दी थी कि किसी बात का हक होने से ही वह मिल भी जाता हो, ऐसा नही होता। यह हक उन्ही को मिलता है, जिनके पास ताकत होती है। नाहक बात बढ़ाने और बेकार की दुश्मनी मोल लेने से कोई फायदा नही। इसलिए उस वक्त चुप लगा गये थे।

पर अब तो यह रोज-रोज का सिरदर्द होता जा रहा है। आज इनका मकान बन रहा है, कल उनका बनेगा, परसो किसी और का। एक बार अदालत का आर्डर हो जाय तो कोई नहीं बनवा सकेगा। इसे बन्द

कराना ही पड़गा। आज मजदूरा के सरदार को यह अच्छी तरह समझा देना होगा कि अपने मालिक से कहकर रात में काम बन्द कराये, नहीं तो खुद ही बन्द कराने का बन्दोबस्त करेंगे।

लल्लन बाबू चारपाई छोड़ कर उठ खड़े हुए। अँधेरे में किसी तरह टटोल कर सुराही के पास पहुँचे। एक गिलास पानी पीया, फिर एक चादर ओढी और टटोलते हुए दरवाजे की ओर बढ़े।

राजेन की माँ को आहट मिल गयी। वे भी उठ गयी।

"क्या है जी ?" उन्होंने पूछा।

"कुछ नही !" लल्लन बाबू ने कहा, तुम बैठो, अभी आता हूँ मैं।"

"पर जा कहाँ रहे हो ?"

"जरा बाहर जा रहा हूँ। आज इस मेट के बच्चे की खबर लेनी है। रोज रात को काम लगा कर सिर खाता है।"

"क्या झगड़ा करोगे ?"

"क्यों ? क्या कर लेगा वह मेरा ?"

"करेगा क्या ?" राजेन की माँ ने कहा, "मगर उन लोगों के मुँह लगने से क्या फायदा ? अपनी बराबरी के हों तो एक बात भी है !"

"बहस मत करो !" लल्लन बाबू ने उन्हें घुडका और झटके के साथ बाहरी दरवाजे के पास पहुँच गये। साँकल खोली, इधर-उधर देख कर अँधेरे में रास्ते का अन्दाज लगाया और बाहर निकल गये।

नौ

दो मिनट में लल्लन बाबू उस बनते हुए मकान के सामने पहुँच गये। नीचे काम करने वाले मजदूरों में से एक के पास जाकर तैश के साथ पूछा, 'क्यो जी, तुम्हारा मेट कहाँ है ?"

"सरदार ?"

"हाँ-हाँ ! वही !"

"क्यों, क्या है ?" उसने पूछा।

"तुम्हें इससे क्या मतलब ?" लल्लन बाबू ने कहा, "जल्दी बताओ, कहाँ है तुम्हारा सरदार ?"

"हम अभी कहीं और काम नहीं लगा सकते।" उसने कहा।

"अरे, काम नहीं लगाना है !" लल्लन बाबू का गुस्सा बढ़ता जा रहा था, "बस, तुम्हारे सरदार से बात करनी है ! जल्दी बताओ, कहाँ है ?"

"ऊपर हैं, मजदूर ने कहा, "लिंटर पड़ रहा है न, वहीं मुआयना कर रहे हैं।"

"जरा नीचे बुला लाओ !"

"अब साहेब, हम तो काम छोड़ के नहीं जा सकते। अभी कोई जाता है ऊपर तो बुला देते हैं।"

फिर वह गारा लेकर ऊपर को जाती एक औरत की ओर मुखातिब हुआ, "ए रे सितबिया•••!"

"क्या है ! मैं कह देवे हूँ, बात-बेबात मोसे मसखरी न किया कर !"

"नहीं रे, मसखरी नहीं !" मजदूर ने कहा, "ऊपर जात है न ! तनी सरदार के नीचे पठइ दे। हे ई बाबू जी बुलावत है।"

"अच्छा !" कहती हुई वह तेजी से चली गयी। उसे डर था कि गारा ढुलाई में एक तसला गारा की कमी न हो जाय, नहीं तो उसके हिसाब से पैसा कट जायेगा।

उसे भेज कर वह मजदूर फिर से अपने काम में लग गया। लल्लन बाबू चुपचाप खड़े रहे।

करीब पाँच मिनट बाद सिताबी लौटी।

"क्या कहा रे ?" उसे देखकर मजदूर ने पूछा।

"कहे है, अभी नहीं आयेंगे !" सिताबी ने बताया, "कहते हैं, काम का हर्जा होगा।"

"क्या ?" लल्लन बाबू अवाक् से हो गये। बड़ा काम वाला बना है। मजदूरों की यह हिम्मत ! जमाना बड़ा खराब आ गया है ! एक क्षण में ही वे बहुत-सी बातें सोच गये। फिर उस मजदूर से कोई और बात न कर वे सीधे ऊपर जाने वाले बाँस के पुल की ओर बढ़े। एक तो

गुस्सा, उस पर यह बाँस जोड़कर बनाया गया मचाननुमा पुल। ऊप पहुँचते-पहुँचते हाँफ गये थे। पर इस वक्त उन्हें किसी चीज की परवा. नहीं थी। एक क्षण को ठहर कर उन्होंने साँस ली, फिर एक मजदूर र पूछा, "मेट कहाँ है ?"

उसने छत के दूसरे कोने की ओर खड़े एक आदमी की ओर इशार कर दिया।

पर इसके पहले कि लल्लन बाबू उधर पैर बढ़ाये, कई मजदूर एव साथ चिल्ला उठे, "हाँ-हाँ! उधर न जाना बाबू जी। अभी गच गीली है। पलस्तर खराब हो जायेगा तो हमें दुबारा मेहनत करनी पड़ेगी।

"तो फिर मेट को बुला लाओ।"

"वो भी इधर कैसे आ सकते हैं ?"

"तुम लोग बदमाश हो। मैं जाऊँगा उधर। देखता हूँ कौन रोकता है मुझे ?" कहते हुए लल्लन बाबू ने पैर बढ़ा दिये।

पर उनका पैर जमीन पर पड़ने से पहले ही एक मजदूर ने उन्हें रोक दिया।

"तुम मुझसे हाथापाई करोगे ?" लल्लन बाबू ने बिगड़ कर कहा।

"नहीं, बाबू जी। हाथापाई कौन करता है ?"

"फिर मुझे हाथ लगाने का मतलब ?"

"हाथ नही लगाया बाबू जी। आप नाहक बिगड़ते हैं।"

"फिर मुझे क्यों रोकता है ?" कहते हुए लल्लन बाबू ने फिर अपने पैर बढ़ाये।

मजदूर ने उन्हें फिर रोक दिया। उसके हाथ की पहुँच से परे होने के लिए वे जरा पीछे हटे। पर यह क्या ? पीछे तो कुछ था ही नहीं!

कुछ हलचल-सी हुई। बाँस की कुछ बल्लियाँ अपनी जगह से उखड कर नीचे गिरीं और उन्हीं के साथ कुछ दूर तक लुढ़क कर लल्लन बाबू भी नीचे आ रहे। चौदह-पन्द्रह फुट की ऊँचाई से सीधे जमीन पर।

कोई समझ नहीं सका कि पल भर में क्या हो गया।

बात की बात में काम छोड़ कर सारे मजदूर उनकी ओर दौड पड़े। इस बीच कोई दौड़ कर रामलखन जी को भी बुला लाया।

"क्यों, क्या है ?" उसने पूछा।

"तुम्हें इससे क्या मतलब ?" लल्लन बाबू ने कहा, "जल्दी बताओ, कहाँ है तुम्हारा सरदार ?"

"हम अभी कहीं और काम नहीं लगा सकते।" उसने कहा।

"अरे, काम नहीं लगाना है !" लल्लन बाबू का गुस्सा बढ़ता जा रहा था, "बस, तुम्हारे सरदार से बात करनी है ! जल्दी बताओ, कहाँ है ?"

"ऊपर हैं, मजदूर ने कहा, "लिंटर पड रहा है न, वहीं मुआयना कर रहे हैं।"

"जरा नीचे बुला लाओ !"

"अब साहेब, हम तो काम छोड़ के नहीं जा सकते। अभी कोई जाता है ऊपर तो बुला देते है।"

फिर वह गारा लेकर ऊपर को जाती एक औरत की ओर मुखातिब हुआ, "ए रे सितबिया···!"

"क्या है ! मैं कह देवे हूँ, बात-बेबात मोसे मसखरी न किया कर !"

"नहीं रे, मसखरी नहीं !" मजदूर ने कहा, "ऊपर जात है न ! तनी सरदार के नीचे पठइ दे। हे ई बाबू जी बुलावत है।"

"अच्छा !" कहती हुई वह तेजी से चली गयी। उसे डर था कि गारा ढुलाई में एक तसला गारा की कमी न हो जाय, नहीं तो उसके हिसाब से पैसा कट आयेगा।

उसे भेज कर वह मजदूर फिर से अपने काम में लग गया। लल्लन बाबू चुपचाप खड़े रहे।

करीब पाँच मिनट बाद सिताबी लौटी।

"क्या कहा रे ?" उसे देखकर मजदूर ने पूछा।

"कहे हैं, अभी नहीं आयेंगे !" सिताबी ने बताया, 'कहते हैं, काम का हर्जा होगा।"

"क्या ?" लल्लन बाबू अवाक् से हो गये। बडा काम बान्दा बना है। मजदूरों की यह हिम्मत ! जमाना बड़ा खराब आ गया है ! एक क्षण में ही वे बहुत-सी बातें सोच गये। फिर उस मजदूर से कोई और बात न कर वे सीधे ऊपर जाने वाले बाँस के पुल की ओर बढ़े। एक तो

गुस्सा, उस पर यह बाँस जोड़कर बनाया गया मचाननुमा पुल। ऊपर पहुँचते-पहुँचते हाँफ गये थे। पर इस वक्त उन्हें किसी चीज की परवाह नहीं थी। एक क्षण को ठहर कर उन्होंने साँस ली, फिर एक मजदूर से पूछा, "मेट कहाँ है ?"

उसने छत के दूसरे कोने की ओर खड़े एक आदमी की ओर इशारा कर दिया।

पर इसके पहले कि लल्लन बाबू उधर पैर बढ़ायें, कई मजदूर एक साथ चिल्ला उठे, "हाँ-हाँ ! उधर न जाना बाबू जी। अभी गच गीली है। पलस्तर खराब हो जायेगा तो हमें दुबारा मेहनत करनी पड़ेगी।

"तो फिर मेट को बुला लाओ।"

"वो भी इधर कैसे आ सकते है ?"

"तुम लोग बदमाश हो। मै जाऊँगा उधर। देखता हूँ कौन रोकता है मुझे ?" कहते हुए लल्लन बाबू ने पैर बढ़ा दिये।

पर उनका पैर जमीन पर पड़ने से पहले ही एक मजदूर ने उन्हे रोक दिया।

"तुम मुझसे हाथापाई करोगे ?" लल्लन बाबू ने बिगड़ कर कहा।

"नहीं, बाबू जी। हाथापाई कौन करता है ?"

"फिर मुझे हाथ लगाने का मतलब ?"

"हाथ नही लगाया बाबू जी। आप नाहक बिगड़ते हैं।"

"फिर मुझे क्यों रोकता है ?" कहते हुए लल्लन बाबू ने फिर अपने पैर बढाये।

मजदूर ने उन्हें फिर रोक दिया। उसके हाथ की पहुँच से परे होने के लिए वे जरा पीछे हटे। पर यह क्या ? पीछे तो कुछ था ही नही !

कुछ हलचल-सी हुई। बाँस की कुछ बल्लियाँ अपनी जगह से उखड़ कर नीचे गिरी और उन्हीं के साथ कुछ दूर तक लुढ़क कर लल्लन बाबू भी नीचे आ रहे। चौदह-पन्द्रह फुट की ऊँचाई से सीधे जमीन पर।

कोई समझ नही सका कि पल भर में क्या हो गया।

बात की बात मे काम छोड कर सारे मजदूर उनकी ओर दौड पड़े। इस बीच कोई दौड़ कर रामलखन जी को भी बुला लाया।

वे कुछ उनींदे से थे। रोज की तरह पड़ोसी के बरामदे में बैठे रात देर गये तक काम का मुआयना करते रहे, फिर उसके बाद आराम करने के लिए अपने कमरे मे चले गये थे। अभी लेटे ही थे कि यह मजदूर दौड़ता हुआ पहुँचा। यहाँ का दृश्य देखा तो उनका उनीदापन काफूर हो गया।

—लल्लन बाबू जमीन पर बिल्कुल चित पड़े थे। आँखें मुँदी हुई थी। नाक से खून निकल कर दोनो ओर गालो के गड्ढो के पास आकर कुछ गाढ़ा हो रहा था। सिर में भी जहाँ-तहाँ चोट लगने से खिचड़ी बाल खून में सने थे। चादर कही ऊपर ही किसी बॉस में फँस कर लटकी थी। बनियान के बाहर जो अंग दिखायी दे रहा था उस पर हर जगह बुरी तरह छिल जाने के निशान थे। लुंगी ढीली होने से एक टॉग पूरी तरह उधड़ गयी थी। एक चप्पल पैर मे थी, दूसरी कुछ दूर जमीन पर पड़ी थी।

रामलखन जी कुछ क्षण अवाक् मे खडे रहे। फिर अपने ही एक मजदूर से पूछा, "तुममें मे किसी ने मारा है इनको?"

"नहीं बाबू जी!" मजदूरो की ओर से उनके सरदार ने जवाब दिया। और फिर सारा किस्सा सुनाते हुए कहा, "एक बार ये और आये थे, कहते थे रात में काम बन्द करो, हमारी नींद खराब होती है। हमने कहा, आपसे बोलें ''। आज भी मालूम होता है इसीलिए आये थे, बहुत गुस्से में थे!"

"ये इसी कालोनी में रहते है? कोई जानता है इन्हें?"

"हाँ, बाबू जी! ये साव जी की दूकान है न। इसी के पिछवाड़े वाली सड़क पर नन्दो चौधरानी के मकान मे रहते हैं।"

"अच्छा, तो यहाँ के पुराने बाशिन्दा है।" रामलखन जी ने कहा। "क्या हाल है इनका, जिन्दा हैं या'' ?"

"नबज तो चल रही है सरकार," एक बूढ़े मजदूर ने कहा, "साँस भी चल रही है, मुदा बहुत धीरे-धीरे!"

"हुँ!" रामलखन जी ने कुछ सोचते हुए कहा, "इन्हे उठाकर इनके घर पहुँचा दो, चलो, मै भी चलता हूँ। लोग गलती खुद करते है और

दण्ड मुझे भोगना पड़ता है।···चलो, ले चलो।"

चार-पाँच मजदूरों ने मिलकर उन्हे हलके हाथों उठा लिया।

घर में पहुँचते ही कुहराम मच गया।

"दैया री···ई···ई···।" राजेन की माँ पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

हाँफती-कराहती नन्दो बुआ उन्हे सँभालने मे लग गयी। राजेन हड़बड़ा कर उठ बैठा था। आश्चर्य से कभी वह चारपाई पर लिटाये घायल बाप की ओर देखता, कभी उन्हे ले आने वालों की ओर···। यह एकाएक क्या हो गया! जब वह सोया था तो बाबू अच्छे-भले चारपाई पर लेटे थे। इस बीच यह क्या हो गया, कैसे हो गया? उसने रामलखन जी को पहचान लिया और रामलखन जी ने उसे भी।

रामलखन जी ने आश्चर्य से पूछा, "क्या तुम यही रहते हो?"

"जी, हाँ!"

"ये तुम्हारे कौन हैं?"

"मेरे पिता हैं।"

"अच्छा! मुझे तो मालूम नहीं था।" लेकिन इन्हें समझाओ भाई कि ऐसी नादानी न किया करें। इसमें हमारा कोई कसूर नही है, न मेरा, न मेरे इन मजदूरों का। अगर कोई शिकायत थी तो सीधे मेरे पास चले आते और फिर शिकायत भी कैसी? ये भी कोई बात है कि रात मे काम न कराओ।" रामलखन जी का स्वर रूखा और घुड़की भरा था।

राजेन अब भी हतप्रभ था। वह अब भी नही समझ सका कि पिता जी ने कौन-सी नादानी कर दी है। उसे इस घटना की पृष्ठभूमि नही मालूम थी। ऊपर से रामलखन जी की यह घुड़की उसे बुरी लगी।

माँ की हालत अलग खराब थी। नन्दो बुआ उसे सँभालते-सँभालते खुद भी जैसे लोट जायेगी। इस पर भी वह उन्हें ढाँढ़स बधाने की कोशिश कर रही थी, "धीरज करो बहू, धीरज करो! तुम्हें ऐसे रोओगी तो उन्हें कौन सँभालेगा···।"

राजेन की माँ का जैसे कलेजा फट रहा था। "अरे, मैं तो कहीं की

नही रही, बुआ !···मैं कैसे जीऊँगी···। किस सत्यानासी ने यह हालत की है इनकी।" वह जैसे बेहोशी की हालत मे नन्दो बुआ के हाथो से अपने को अलग कर दौड़ती हुई लल्लन बाबू की चारपाई के पास पहुँची। उनका सिर अपनी गोद मे ले लिया और उनके चेहरे की ओर देखकर फिर जोर से पछाड़ खाकर रोने लगी।

नन्दो बुआ ने राजेन से कहा, "खड़ा-खड़ा देख न बेटा दौड़कर जो किसी डागडर को बुला···। सुना है, इस बस्ती में कई बड़े-बड़े आये हैं···।" फिर वह रामलखन जी की ओर मुखातिब हुई—"और भैया, ई बखत लड़के को सीख देने या दोस देखने का नही है।···बड़े मनई हो, कुछ भी हो दोस तो हमारे सिर आना ही है। अगर कुछ हुआ था तो पहले कुछ दवा-दारू का इन्तजाम कर देते तब कह लेते जो जी में आता···।"

"मैं ? मैं क्यो करता," रामलखन जी ने कहा, "मैं तो इन्हें जानता भी नहीं था।" अब रामलखन जी ने सारी बात शुरू से बता दी, कि कैसे लल्लन बाबू आये और कैसे वे गिर गये। अन्त मे कहा, "अब किसी को परेशानी हो तो उसके लिए रात में काम तो बन्द नही होगा! फिर एक इन्हीं को क्यों परेशानी हुई ? यहाँ इस बस्ती में और भी बड़ी-बड़ी कोठियों वाले हैं, उनको तो कोई परेशानी नही हुई आज तक···?" उनके स्वर में अब भी रुखाई थी, यद्यपि पहले जैसी नही।

"हाँ, भैया !" नन्दो बुआ ने कहा, "अगर कोई कोठी वाला शिका-यत करे तब तो सुनी भी जाय, हम गरीब-गुरबा, हमे क्या हक···? मगर कोई कोठी वाला होता तो तुम भी ये बातें न कह सकते।" बुढ़िया को बातों में हरा सकना मुश्किल था। तीर अचूक निशाने पर बैठा।

रामलखन जी कुछ कह न सके। नीचे देखने लगे और वहाँ से किसी तरह खिसकने के उपाय सोचने लगे।

राजेन को डाक्टर के लिए दूर नहीं जाना पड़ा। चीख-पुकार सुन कर रघुनाथ साव और आस-पास के दो-एक पड़ोसी भी आ गये थे जिनमे से एक को उन्होंने राय साहब के यहाँ भेज दिया। अनुभवी राय साहब यहाँ आने के पहले इसी बस्ती के दूसरे ब्लाक में रहने वाले एक डाक्टर

साहब को साथ लिवाते लाये। मुहल्ले के नाते डाक्टर साहब ने इतनी रात को भी निकलने में कोई खास एतराज नहीं किया था। हुआ भी हो तो ऊपर से प्रदर्शित नहीं किया।

डाक्टर के जाँच शुरू करने के साथ ही वहाँ एक सन्नाटा-सा छा गया। डाक्टर के निर्णय की प्रतीक्षा में आशा और आशंका की आतुर घड़ियाँ! लल्लन बाबू के गले से रह-रहकर धीमी घुरघुराहट उठती। या फिर बीच-बीच में उनकी पत्नी की, जो अब चारपाई से नीचे उतर कर जमीन पर बैठी थीं, घुटी हुई सिसकियाँ कभी कानों में पड़ जाती।

आला लगाकर डाक्टर ने लल्लन बाबू के दिल की धड़कन जाँची, आँख की पुतलियाँ देखीं। जोड़ों और गर्दन की हड्डियों को धीरे-धीरे बजाकर कुछ समझा, ब्लडप्रेशर नापा। फिर पत्थर की तरह भावहीन चेहरे के साथ धीरे-धीरे अपने औजार बक्स में रखने लगे।

"क्या हाल है डाक्टर साहब!" राय साहब ने चुप्पी तोड़ी।

"मैं एक इंजेक्शन दे रहा हूँ," डाक्टर ने उसी तरह भावहीन स्वर में कहा, "लेकिन इन्हें जल्द अस्पताल पहुँचाना पड़ेगा। मेरे काबू से बाहर है यह केस! मेरे पास जाँच के पूरे सामान नहीं हैं। फिर यहाँ ठीक देख-भाल भी नहीं हो पायेगी।···इन्हें भीतरी चोट आयी है···गनीमत समझें कि जमीन सख्त नहीं थी।"

इंजेक्शन के बाद डाक्टर ने ही अपने घर से एम्बुलेंस के लिए अस्पताल को टेलीफोन कर दिया। डाक्टर ने टेलीफोन किया था, इसलिए अस्पताल वालों ने कोई कानूनी अड़चन नहीं बतायी। और आध घंटे बाद अस्पताल की पीली गाड़ी घर पर आ लगी। इसके बाद सब कुछ सधे, अभ्यस्त हाथों के अधीन था। दो कर्मचारियों ने लल्लन बाबू को सावधानी से स्ट्रेचर पर लिटाया और उठाकर एम्बुलेंस में लिटा दिया। राय साहब और राजेन भी पीछे बैठ गये। इसके बाद गाड़ी चल दी।

राजेन की माँ फिर जोर से रो पड़ी।

—लल्लन बाबू घर से कभी इस तरह नहीं निकले थे।

इस बीच किसी ने ध्यान नहीं दिया, रामलखन जी कभी के खिसक चुके थे। हाँ! आज रात उनकी कोठी का और काम नहीं हो सका।

लल्लन बाबू को तीसरे दिन होश आया। लेकिन कस तीन दिन होश आने पर लल्लन बाबू ने सुना, सब कुछ सुना।

कई बार डाक्टरों को निराशा होने लगी। इसी बीच राजेन की माँ उनके वार्ड के बाहर बरामदे मे ही रही। एक मिनट के लिए उनकी आँख नही लगी, न उन्होंने एक घूँट पानी पिया। नन्दो बुआ और राजेन कहते-कहते हार गये, उन्होंने दाना-पानी छुआ भी नही। हर वक्त दिल पत्ते की तरह काँपा करता। नन्दो बुआ भी साथ रही। राजेन को अस्पताल के अन्दर रोगी के पास रहने की इजाजत दे दी गई थी। राय साहब सुबह-शाम आ जाते। जिस दिन उन्हे होश आया, उस दिन शाम को उनकी पत्नी भी आयी थी। एक-एक करके उनके दफ्तर के साथी भी उन्हें देख गये। बड़े बाबू और निर्मल बाबू भी। बड़े बाबू राजेन की माँ को यह अश्वासन भी दे गये कि दवा-दारू या और किसी चीज के लिए रुपये-पैसे की जरूरत हो तो दफ्तर में खबर करा दे, फंड के रुपये तुरन्त मिल जायेंगे। साहब तुरन्त पास कर देंगे। छुट्टी भी जब तक ठीक न हो, तब तक मंजूर है। किसी बात की चिन्ता-फिकर न करे।

निर्मल बाबू ने वार्ड ब्वाय को ठीक से देख-रेख करने के लिए पाँच रुपये दिये थे। चपरासी किशोर भी आया था। राजेन की माँ के पैर के पास बीस रुपये रखकर हाथ जोड़ दिये, "बाबू जी की ही किरपा से खाते हैं—बहू जी! आपको काहे की कमी है, मगर मदद करना मेरा भी फर्ज है···।"

लल्लन बाबू यह सुन रहे थे और करुणा-विगलित हो आँसू बहाते जा रहे थे।

—क्या यह सब सच है?

—क्या ऐसा हो सकता है?

—क्या सचमुच राजेन की माँ तीन दिन से सोई नहीं और खाना-पीना भूल गयी?

और बड़े बाबू! क्या सचमुच उन्होंने ऐसा कहा कि किसी बात की फिक्र न करें। वह तो बहुत तंग करते हैं लोगों को! दफ्तर में पहले

पहुच कर घड़ी तेज कर देते हैं, जिससे हर आदमी लेट मालूम हो। और शाम को पाँच-दस मिनट धीमी, ताकि लोग देर से उठें।

और निर्मल बाबू तो खैर दोस्त हैं। पर यह किशोर! कैसी सख्ती से ब्याज वसूलता है, और यहाँ रुपये दे गया। लेना नहीं चाहिए था उससे। फिर भी उसने अपनी ओर से तो मदद की ही बात की। अपने बचाया रुपया तो नही माँगे…।

यह सब महज दिखावा तो नहीं, एक औपचारिकता भर…?

पर सबके ऊपर तो रेजिडेंट इंजीनियर साहब! एडवांस की अरजी पर दस्तखत नही करते। छुट्टी की दरख्वास्त भी जल्दी नही मानते। आर प्राविडेंट फड का कर्ज तो पास होने मे दो महीने लग जाते है।

क्या सचमुच उन्होंने कहा था कि उनकी अरजी तुरन्त पास कर देंगे? लल्लन बाबू कृतज्ञता से विह्वल हो सोचते हैं और आँसू बहा रहे हैं। झर-झर आँसू!

राय साहब समझाते है, "रोये नहीं लल्लन बाबू! आदमी का स्वभाव ऐसा ही होता है। अलग-अलग हालतो मे अलग-अलग। हमेशा एक रग नही। न हमेशा दूध का धोया, न सदा मन का काला।…पर आप ज्यादा सोचे नही।…आराम करें…।"

पर आँसू है कि थमते नही। झर-झर बहते जाते है…।

दवाओ की तेज गंध आती है और जैसे दिमाग में भर रही है।

बगल मे बेड पर कोई दर्द के मारे तेजी से चीख रहा है।

—क्या है यह सब? यह कैसी जगह है। यहाँ क्यों आ गया। क्या हुआ है मुझे?

नर्स ने घंटी बजाकर मिलने का वक्त खत्म होने की सूचना दी है। डाक्टर शाम के राउण्ड पर आ रहे है।

और राजेश उनके सिरहाने क्यों खडा है? क्या कर रहा है?

—"क्यों रे! आज तू कालेज नहीं गया!"

राजेश की तीन दिनों से बोझिल, थकी आँखों की बदलियाँ जैसे और गाढ़ी हो गयीं। वह कुछ उत्तर नही देता। चुपचाप देखता रहता है लल्लन बाबू की ओर—और उनका रुग्ण, जर्जर चेहरा। इन तीन दिनों

मे ही कैसे कृशकाय जजर हो गये है बाबू ठीक तो हो जायगे न कब तक ठीक होंगे···?

डाक्टर आ गये है।

लल्लन बाबू की शैया के सिरहाने लगा टेम्परेचर और ब्लडप्रेशर का चार्ट देखते है। स्टेथस्कोप से दिल की धडकन सुनते है। फिर जैसे राजेन के चेहरे का भाव पढ लेते है।

"पहले से बेहतर।"

"लेकिन रह-रहकर ऐसी बातें करते हैं, जैसे होश न हो।"

"हाँ, अभी बेहोशी टूटी है, दिमाग मे गहरी चोट लगी थी, पर डैमेज ज्यादा नहीं हुआ है, धीरे-धीरे ठीक होगा।"

"लेकिन कब तक डाक्टर साहब ?"

"बस ! आज बस !···मरीज को आराम करने दो···।"

डाक्टर चले जाते है। यहाँ कोई आदमी नही लेटा है। यह बस एक 'बेड नम्बर' है, रजिस्टर में दर्ज एक केस मात्र ! सिर्फ दो खाने भरने बाकी है। मरीज ठीक हो जाये तो 'रिकवर्ड' और अस्पताल छोड़ने की तारीख, और न हो तो 'एक्सपायर्ड' लिखकर, मरने की तारीख, समय। सिर्फ एक बेड नम्बर, एक केस। डाक्टर और कुछ नहीं जानता, बहुत से 'बेडस' हैं, बहुत से 'केस' ! वह इससे ज्यादा नही बतला सकता। मरीज दवा के प्रति 'रिएक्ट' कर रहा हैं, यह अच्छा है। बस इससे ज्यादा डाक्टर नहीं जानता।

लेकिन एक दिन उसे कहना पड़ता है, अप्रिय हो या प्रिय, सब बताना पडता है।

पाँचवे दिन लल्लन बाबू का बुखार टूट गया था, शरीर पर जो चोटे आई थी, सूज रही थी। तभी जाँच करते हुए डाक्टर ने सब कुछ निश्चित रूप से जान लिया था। डाक्टर ब्लडप्रेशर नापने का गाज उनकी बाँह में कस रहे थे। लल्लन बाबू निरीह से अ लक उनकी ओर देखते रहे, फिर सहसा पूछ बैठे थे, "डाक्टर साहब ! उन बदमाशो ने काम बन्द किया या नहीं ?···मैं उन पर मुकदमा व रूंगा, जरूरत हुई तो···।"

डाक्टर ने सुना, पर भावहीन खड़े रहे। हाथ उठाकर उन्हें चुप रहने का संकेत किया।...आँखें ब्लडप्रेशर की रीडिंग पर टिकी रहीं ...नार्मल ! पचासी—एक सौ तीस। एकाएक कोलैप्स का कोई खतरा नहीं। नाड़ी की गति सामान्य से कुछ कम है, पर कोई खतरा नहीं ' कमजोरी दूर होते ही सामान्य हो जायेगी। एक हफ्ता बाद मरीज डिस्चार्ज किया जा सकता है। लेकिन यह सवाल ! दिमाग पर गहरा सदमा है, 'परमानेंट डैमेज' तो नहीं !—एक हफ्ता देखना पड़ेगा ! सोजिश या फ्रैक्चर नहीं है, नहीं तो बुखार क्यों उतर गया ? और मरीज कुछ देख भी नहीं सकता। 'वाच' करना ही होगा। मरीज अच्छा होता है तो डाक्टर को खुशी होती है। यह फल होता है उसकी प्रतिभा का, उसकी लगन, उसकी मेहनत का: और उसका पुरस्कार होता है रोगी की कृतज्ञता से भरी वह दृष्टि जिससे वह अस्पताल से छूटने से पहले डाक्टर को देखता है। लेकिन कौन देखता है यह सब। प्रतिभा और लगन को कौन पूछता है। रजिस्टरों और कागजों की खानापूरी कितनी सरल होती है—मरीज ठीक हो गया, छुट्टी दे दी गयी। और नहीं तो ...मृत्यु...बहुत-सी समस्याओं का समाधान कर देती है। यह सब कुछ बहुत सरल है, बहुत ही आसान। रजिस्टर में दर्ज केस में यह नहीं लिखा होता कि डाक्टर कौन है। बस डिपार्टमेंट लिखा होता है। आदमी कहीं नहीं—विभाग, बेड नम्बर और केस—पहियेदार स्ट्रेचरों पर आदमी नहीं ढोया जाता, बस नामहीन, रूपहीन 'केस' वही डिस्चार्ज होता या मरता है। डाक्टर भी आदमी नहीं होता यहाँ, इसी प्रक्रिया का एक अंग, यांत्रिक गतिविधि का एक पुर्जा, और इसी पुर्जे की एक क्रिया है, भावहीन चेहरे के साथ, भावहीन स्वर में एक दिन सब कुछ बता देना। प्रिय हो, अप्रिय हो, सब कुछ बता देना...।

राजेन को वह लल्लन बाबू के बिस्तर से अलग ले गये।

"यहाँ तुम्हीं हो। तुम्हारे साथ कोई बड़ा नहीं ?"

"नहीं ! सुबह-शाम राय साहब आते हैं।"

"ठीक है, आयें तो मेरे पास भेज देना।"

"आप मुझे नहीं बता सकते...?"

बता सकता हू पर तुम्हे समझ मे नही आयेगा कोई घबराने क
ात नही है।···तुम्हारे पिता ठीक हो रहे है···ठीक हो जायेंगे।"

—हाँ, ठीक हो जायेंगे। लेकिन जो जिन्दगी जीयेंगे वह मृत्यु से भ
बदतर है। दिमाग की सर्जरी अभी यहाँ हो नही पायेगी, और हो भी
पाये तो पूरी उम्मीद नही कि ठीक हो ही जायेंगे। दूसरा कोई चार
नही, साइकियेट्री, मनोविज्ञान भी वहाँ कुछ नही कर पायेगा। शारीरिक
चोट में मनोचिकित्सा कर भी क्या सकती है! लल्लन बाबू जीवित रहेंगे,
पर कैसा जीवन! वे जीवित है, यह चेतना रहेगी भी या नही ? निश्चित
नही कहा जा सकता। रह-रह कर स्मृति-लोप हो सकता है। हो सकता
है साल-दो साल में यह लक्षण कम हो जाये, पर यह भी सम्भव है कि
इसका दौरा लम्बे अरसे तक जारी रहे।

—अब क्या होगा···क्या होगा अब···?

राय साहब गम्भीर है। कभी वे लल्लन बाबू की ओर देखते है, और
कभी राजेन की ओर। लल्लन बाबू सो रहे है; राजेन उनके गन्दे बरतन
वगैरह धोकर लौटा है और बिस्तरे के पीछे रखी जालीदार आलमारी
मे रख रहा है। दोनों ही अपनी भावी नियति से बेखबर। लल्लन
बाबू का छोटा-सा संसार उनकी आँखों के सामने ही ध्वस्त हो रहा था।
उसे कौन सँभालेगा अब। न उसे लल्लन बाबू समेट सकते हैं अब, न और
कोई।

"ताऊ जी, क्या बताया डाक्टर साहब ने ?"

राय साहब सच नही कह सकते। लल्लन बाबू की कितनी सारी
योजनाएँ थी, इस लड़के को लेकर। उनका क्या होगा ? और यह लडका
क्या अपनी आकांक्षाओं का ध्वस्त होना सह सकेगा ?

"कुछ खास नही, कहा है जल्द ही आराम हो जायेगा और तुम इन्हे
घर ले जा सकोगे।"

"लेकिन यह तो उन्होंने मुझसे भी कहा था," राजेन ने कहा, "आप
से तो कुछ खास बात कहना चाहते थे।"

"हाँ-हाँ, वह भी बताया। पर कोई खास बात नही है," रायसाहब
ने अपने स्वर को हल्का बनाते हुए कहा, "बताया है कि इन्हें ज्यादा

गुस्सा मत दिखाना और य ज्यादा चिन्तान कर पायें बस पर यह कोई कहने की बात नही है। तुम तो अब खुद ही समझदार हो।"

राजेन ने आगे कुछ नही पूछा। वह मूर्ख नही है—यथार्थ और बनावट का भेद अनुभव कर सकता है। राय साहब के स्वर की बनावट वह पहचान गया। फिर भी उसने कुछ और नही पूछा। समझना और उसकी प्रतिक्रिया को एक शब्द कहे बिना झेल लेना, उसकी आदत ही नहीं, विरासत भी है। वह पिता के बिस्तरे की चादर, उनके कपड़े वगैरह ठीक करने लगा। राय साहब एक अखबार ले आये थे, उसी को लल्लन बाबू के बिस्तर की बगल में रखी बेंच पर बैठ कर पढ़ने लगे।

थोड़ी देर में लल्लन बाबू की नींद टूटी। वे पहले की अपेक्षा काफी स्वस्थ दीखे। राय साहब को उन्होंने पहचान लिया—"क्या खबर है, अखबार में राय साहब ?"

"मैं तो वक्त काट रहा था कि आप जागें तो हालचाल पूछ लूँ। अब दो-चार दिन में आप खुद ही खबरें जानने लगेंगे।···" राय साहब ने कहा, "कैसी तबीयत है अब आपकी।"

लल्लन बाबू ने कोई उत्तर नही दिया। थोड़ा खिसक कर तकिये के सहारे अधलेटे बैठ गये और चुपचाप सामने देखते रहे। खिड़की से वार्ड के बाहर का लम्बा लान दिखायी देता था जिसके छोर पर शीशम के पेड़ थे। उनकी फुनगियों पर गौरैयों की भीड़ चक्कर काटा करती। उधर देखने से अस्पताल की इस दुनिया से मुक्ति की आशा बलवती होती थी।

राय साहब ने कहा, "अब आपको जल्दी ही यहाँ से छुट्टी मिल जायेगी। डाक्टर से मेरी बात हुई है।"

"कितने दिन में ?"

"बस एकाध हफ्ता !"

"ए···काध···हफ्ता ?"

"एक हफ्ता बीतने में क्या लगता है ?" राय साहब ने कहा।

"लेकिन यहाँ तो एक दिन भी नहीं रहना चाहता···।"

राय साहब धीरे से हस पड । हाँ, भाई, आपको तो एसा ही लगेगा···पर बीमारी-आरामी आती है तो झेलना ही पडता है।"

"हॉ, ये तो है," लेकिन राय साहब !"

"हाँ !"

"आखिर मुझे हुआ क्या है ?···मुझे यहॉ क्यो लाया गया है ? राजेन से पूछता हूँ तो वह कुछ जवाब नही देता । क्या मुझे कोई गहरी बीमारी हो गयी है···?"

मन की पीड़ा राय साहब ने चेहरे की मुस्कराहट के नीचे छिपा दी स्वर को हल्का बनाने की कोशिश करते हुए पूछा—

"आपको कैसा लगता है ?"

"कुछ समझ मे नही आता···। मुझे यहॉ लाया ही क्यों गया !" लल्लन बाबू की आवाज बहुत थकी हुई लग रही थी ।

"आपको चोट आ गयी थी।···कैसे आयी, मैं भी नही जानता। कहते हैं—आप गिर पड़े थे । लेकिन अब चिन्ता की कोई बात नही। आप ठीक हो रहे हैं···हफ्ता-दस दिन और रहें यहाँ। जगह की इतनी तगी रहती है कि अस्पताल वाले तो खुद किसी को ज्यादा दिन रोकना नही चाहते···।"

"बडा भारी लगता है," लल्लन बाबू ने क्षीण-सी आवाज में कहा। चुप होकर वे फिर खिडकी के बाहर शीशम के दरख्तों के ऊपर चिडियों का मँडराना देखने लगे।···

नर्स ने मुलाकातियों का समय खत्म होने की घंटी बजा दी।

"अच्छा, चलता हूँ," राय साहब ने उठते हुए कहा, "आपको किसी चीज की जरूरत तो नही है···?"

"जरूरत ?···नही तो·· ?"

"अखबार छोड़ जाऊँ, कहे तो···?"

"अखबार·· ? छोड जाएँ···देख लूँगा, देख सका तो···।"

नर्स ने दुबारा घटी बजा दी। रोगियों को देखने आयी भीड़ के साथ राय साहब भी चले गये। थोड़ी देर पहले की चहल-पहल खत्म हो गयी। बिस्तरों से उभरती कराहटों के बीच चिकने फर्श पर नर्सों के ऊँची एडियों

वाले सैंडिलो की खट्'''खट् और कलफदार एप्रनों की सरसराहट गाढी होती शाम पर जैसे भारी हो जाती है। कितना अकेला लगता है। अब खिड़की से शीशम के वृक्षों की फुनगियाँ साफ नहीं दिखायी दे रही हैं। कहीं कोई कुत्ता रो रहा है। ठंडी साँस खींच कर लल्लन बाबू फिर सीधे लेट गए।

डाक्टर के राउण्ड के पहले दो-तीन नर्सों का जत्था हर मरीज के बिस्तर के पास आता है। एक टेम्परेचर लेती है, दूसरी उसे बिस्तर पर बँधे चार्ट पर दर्ज करती है, एक मरीज का बिस्तर, तकिया, चादर वगैरह ठीक करती है। यह सब करती हुई वे अक्सर शहर में चल रही नयी फिल्मों या कपडों के नये फैशनो की बात करती हैं। टेम्परेचर लेने वाली नर्स मरीज के मुँह मे थर्मामीटर लगा कर एक हाथ में मरीज की नाडी की गति भी देखती है, नजर घडी की ओर रहती है और उनकी बाते भी जारी रहती है। लेकिन वे अपना काम भी जानती है, एक मिनट होते ही रोगी की नाडी छोड़ देती हैं, और डेढ मिनट पूरा होने पर मुह से थर्मामीटर निकाल कर उसकी रीडिंग नोट कर लेती है। मरीज की हालत खराब होती है तो फौरन जान जाती है और डाक्टर को खबर कर देती है। बडी उमर की नर्से अपने घर की या नौकरी की बातें करती है, छुट्टी न देने के लिए इन्चार्ज या डाक्टर की शिकायतें। मरीज या रोग के बारे में तभी बात करती हैं जब उनमे पटती नहीं, पर ड्यूटी की वजह से वे साथ-साथ ही जाती है।

अड़तालीस नम्बर के बिस्तर का रोगी हर पाँच मिनट बाद बुरी तरह चिल्लाता है और नर्स के लिए हर पन्द्रह-बीस मिनट पर आवाज लगाता है। उसके गले की हड्डी टूटी है। उसकी ओर नर्स ध्यान ही नहीं देती। ज्यादा चिल्लाने पर कोई बुरी तरह उसे डाँटती है और वह जिद्दी बच्चे की तरह कुछ देर के लिए चुप हो जाता है। पर दस-पाँच मिनट बाद फिर वही, "नर्स'''नर्स'''?"

बीच-बीच में कोई मर्मान्तिक कराह उठती है। वार्ड के बाहर गलियारे में लगी वार्ड-मैट्रन की मेज तक ही नहीं, उसके आगे, शायद इन्चार्ज-डाक्टर के कमरे तक या उससे भी आगे, बाहर के मैदान तक उसकी

आवाज फैलती है पर यहां कोई ध्यान नहीं देता दूसरे मरीज सहम जाते हैं, जबर्दस्ती उसकी ओर से दिमाग हटाने की, उसकी ओर से मुंह फेरने की कोशिश करते हैं। पर डाक्टर या नर्स सभी के लिए यह एक आम बात है। किसी में हरकत नहीं होती। होती तब है जब मरीज बहुत तेजी से या बहुत दूर तक चिल्लाता रहता है या फिर जब मरीज के साथ का कोई आदमी डाक्टर या नर्स के पास पहुँचता है। वहाँ भी अलग-अलग स्तर है। किसी के लिए डाक्टर या नर्स जल्दी, ज्यादा तत्परता के साथ जाते हैं और किसी के लिए उपेक्षा के साथ, अनमने भाव से।

कभी-कभी किसी चीख पर डाक्टर और नर्स दोनों दौड़ पड़ते हैं। जल्दी-जल्दी बिस्तर के इर्द-गिर्द लकड़ी के फ्रेम पर कसा स्क्रीन तान दिया जाता है। सिरिंजों और दवाओं की तीखी गंध जैसे और भारी हो जाती है। लेकिन अक्सर ये सारी हलचलें एकबारगी ही खामोश हो जाती है और मरीज के बिस्तर के पास जमा लोगों की भीड़ में कुछ लोगों के धीमे या जोर से रोने के स्वर उभरने लगते हैं। फिर कुछ देर बाद एक पहियेदार स्ट्रेचर आता है और मरीज, जो अब तक एक शव-मात्र होता है, उस पर लिटाकर हटा दिया जाता है। बिस्तर खाली नहीं रह पाता, चादर और तकिये के गिलाफ बदल दिये जाते हैं। पुराने मरीज के चार्ट, दवाएँ, कपड़े, बर्तन, प्याले वगैरह हटाने के साथ ही बिस्तर पर नया मरीज आ जाता है।

एक रात लल्लन बाबू के ठीक बगल वाले बिस्तर पर ही ऐसी घटना हुई। वही हलचल, वही भागदौड़, वही स्क्रीन का तनना, दवा, सिरिंज की तेज गंध। पर न वह रोगी कराहा था, न चीखा था। उन्होंने देखा था— जैसे वह एक गहरी नींद में डूबता चला गया था। फिर किसी ने उसकी नब्ज टटोली, और सहसा जैसे बिजली के धक्के से चौंक कर भागता हुआ डाक्टर के कमरे की ओर चला गया। कुल जैसे दस मिनट में ही सारी हलचल खत्म हो गयी थी। कुछ देर तक उसके सम्बन्धियों के रोने का स्वर उठता-गिरता रहा, फिर लाश हटाते ही वह सब भी एकबारगी थम गया।

लल्लन बाबू को उस रात जैसा महसूस हुआ; वैसा पहले कभी नहीं हुआ था। इसके पहले इसी वार्ड में हुई मौतों से वे इतना नहीं घबराये थे। बिस्तरों की दूरियाँ जैसे दीवारें बन गयी थीं, पर आज मौत उन दीवारों को लाँघ कर ठीक उनकी बगल में दस्तक दे गयी थी।

उस रात राजेन को अपने पास खींचकर वे कई बार बच्चों की तरह रो पड़े। जैसे किसी अज्ञात भय से रह-रहकर काँप उठते। और यही कहते रहे, "ले चल बेटा! मुझे ले चल यहाँ से···मैं एक मिनट यहाँ नहीं रह सकता···।"

अगले दिन राय साहब ने, और थोड़ा-बहुत डाक्टर ने समझाया, तब कहीं वे शान्त हुए। लेकिन इस चीज ने अस्पताल से उनकी रिहाई में जल्दी भी करा दी। डाक्टर ने सोचा कि कहीं इसका मरीज के दिमाग पर उलटा असर न पड़ जाय। उसी शाम को डाक्टर ने उन्हें घर जाने की इजाजत दे दी।

राजेन की माँ ने मनौती मानी थी। अगले ही दिन उन्होंने सत-नारायन भगवान की कथा सुनी।

लल्लन बाबू इस सब पर फालतू खर्च के लिए मना करना चाहते थे। पर वे इतने कमजोर और शिथिल थे कि एक शब्द भी नहीं कह पाये। फिर अब उन्होंने बहुत-सी चीजें नये सिरे से देखी थी—यही राजेन की माँ अस्पताल के बरामदे में तीन दिन तक बिना कुछ खाये-पीये पड़ी रही। आज कैसे उन्हें मना कर दें।

नन्दो बुआ का इन्तजाम भी बड़ा अच्छा था। सब कुछ बड़ी सहू-लियत से निबट गया।

दस

ल्लन बाबू ने पन्द्रह दिन और आराम किया। उसके बाद जीवन धीरे-धीरे पुराने ढर्रे पर लौटने लगा। वही अपनी लीक पर बँधा हुआ

जीवन। सुबह दफ्तर चले जाना, शाम को लौटना, कुछ देर रघुनाथ साव की दूकान पर गपशप करना, उसके बाद घर लौटकर खा-पीकर सो जाना…। लगता था मानो बीच में कुछ हुआ ही नही। धूप भरे दिनो के बीच जैसे दो-तीन दिनों का मामूली-सा विपर्यय हो गया था और अब बदलियाँ छँट जाने के कारण धूप फिर होने लगी थी।

राजेन भी अपनी पढ़ाई में लग गया। अब इम्तहान मे करीब दो महीने और रह गये थे। इधर पिता की बीमारी से करीब बीस दिनो तक कालेज नही जा सका था। इसलिए पिछली पढ़ाई भी पूरी करनी थी। आजकल सुबह बहुत जल्दी उठता था और नहा-धोकर जल्द ही पढने बैठ जाता तो नौ बजे तक पढ़ता रहता। उसके बाद खाना खाकर कालेज चला जाता। कालेज से देर से लौटना तो बहुत पहले ही छोड दिया था। अब उसका कोई कारण भी नही रह गया था। कहाँ था जगदीश और कहाँ थी मजु… ! हवा के एक भूले-भटके झोंके की तरह थोडी देर के लिए आ गये थे उसके जीवन मे, और इस बीच इतना कुछ घट चुका था कि उनकी याद भी नही आती थी।

कालेज से लौटने के बाद अगर घर का कोई काम-धाम होता तो उसे कर देता, उसके बाद पढ़ने बैठ जाता, फिर उसे समय का ध्यान न रह जाता। कभी-कभी बारह-एक भी बज जाता।

अब वह पहले का छोटा बच्चा नहीं था। अब वह बहुत सी चीजें जानता था। पिता की स्थिति उससे छिपी नही थी, उसे यह पता था कि आगे की पढ़ाई का खर्च चला पाना उनके लिए मुश्किल होगा। लल्लन बाबू बराबर दम बाँधते रहे है, कहते रहे हैं कि आगे की पढ़ाई में जो भी खर्च होगा उससे मुँह नही मोड़ेंगे। यह बात वे सच्ची भावना सेक हते रहे हैं—यह भी राजेन जानता था, पर साथ ही यह भी जानता था कि भावना कितनी ही सच्ची हो, सिर्फ उसके और साहस के बूते पर पढाई का खर्च दे पाना सम्भव नही है। न वह उदासीन है, न नासमझ। माँ से जब कभी बाबू एक-एक बात के लिए अपनी मुश्किलों की चर्चा करते रहे है उसे पता है कि कैसे वे बहुत दिन से सोचते रहने के बाद आज तक एक सायकिल नहीं खरीद पाये हैं और अब तक दफ्तर पैदल ही जाते रहे हैं,

उसके लिए जाड़े की एक कोट सिलवानी पड़ी थी तो कैसे महीनों उसकी योजना बनाते रहे है और सिलवा देने के बाद कैसे महीनों खर्च मे कतर-ब्योंत करते रहे हैं और अब तो उसने अपनी इन जरूरतों के लिए कहना भी छोड़ दिया है। इधर खुद अपने लिए एक चश्मा लेना था तो कैसे महीनों जुगत बैठाते रहे है। फिर भी नही ले पाये। आखिरकार आया भी तो कैसे ? बीमारी मे जब दफ्तर ने प्राविडेंट फंड से कर्जा दे दिया तब जो अब साल भर बीस-बीस रुपया कर कटेगा, रोज की दिक्कते और भी बढ जायेगी। आखिर वे कहाँ से आगे की पढ़ाई का खर्च दे पायेंगे।

अगर बहुत अच्छे नम्बरों से पास हो जाये तो आगे की पढ़ाई के लिए सरकारी वजीफा मिल सकता था। फिर उसका पिछला रिकार्ड भी अच्छा था। कक्षा मे हमेशा पोजीशन पायी है, हाई स्कूल पहले दर्जे मे पास किया। अब प्रिंसिपल सेन साहब और अंग्रेजी के लेक्चरर खरे साहब बराबर उत्साह दिलाते है कि मेहनत करे तो उसे स्कालरशिप मिलने मे कोई दिक्कत नही होगी। पिता का ऋणी था कि उन्होंने डाँट-डपटकर उसे मेहनत की आदत लगा दी थी।

लड़के की एकाग्रता देखकर लल्लन बाबू भी कम प्रसन्न नहीं होते। इधर उसके प्रति एक नया विश्वास उनमे भर उठा है। अभी तक उसके व्यक्तित्व का यह पहलू उन्होंने नही देखा था—वह अपने आप में गुमसुम रहने वाला एक नादान लडका ही नही था बल्कि वक्त पड़ने पर अपने ढग से स्थिति का मुकाबला भी कर सकता था—अस्पताल मे कैसे बीस दिनो तक उनकी देखभाल की, न दिन का ख्याल किया, न रात का। खाने-पीने, दवा देने से लेकर कपड़े-बर्तन साफ करने तक सारा काम किस तरह करता रहा है, वे कैसे बीस दिनों तक उसके आश्रित रहे हैं। अपनी जिम्मेदारी पूरी निभायेगा—लल्लन बाबू की यह धारणा पक्की हो गयी है। उस अफसर लड़के की तरह बाप को घर से निकाल नही देगा जिसके बारे में राय साहब ने बताया था।

एक दिन उन्होंने राजेन से पूछा—

"क्या पढ़ाई बहुत पिछड गयी है ?"

"हाँ।"

अजीब अहमक है यह   लल्लन बाबू न सोचा । बोलगा अपने पुराने ढंग से ही, छोटा सा 'हाँ' या 'नहीं' । कभी पूरी बात बतायेगा ही नही । लेकिन अब उसकी इस आदत पर उन्हे गुस्से से अधिक दुलार आया । अपनी-अपनी आदत ही तो है । अगर ज्यादा नही बोलना चाहता तो न बोले । अब बडा भी तो हो रहा है—मेरे कान तक की ऊँचाई को छूने लगा है । शायद साल-दो साल में मेरे बराबर या मुझसे भी ऊँचा निकल जाये···। फिर भी सारा ब्योरा तो ले ही लेना चाहिए ।

"तो तुम्हारा कोर्स पूरा तो हो जायेगा न ?"

"हाँ ।"

"पास हो जायेगा ?"

"हाँ ।"

"अच्छे नम्बरों से ?"

"हाँ ।"

"तू जानता है यह अभी से ? कैसे जानता है ?"

"पढ़ तो रहा हूँ···। अच्छा नम्बर ही आना चाहिए ।"

"वो तो तू कर रहा है, खैर किसी चीज की जरूरत होगी तो बता देना···इधर-उधर मन न दौड़ाना···ठीक है, तू पढ़ ।"

"जी ।"

लल्लन बाबू मन-ही-मन हिसाब लगाने लगे । इस साल इन्टर हो जाता है तो बस चार साल और । और अभी उनके रिटायर होने में छः-सात साल है । इस बीच वह एम० ए० तक पढ़कर किसी सरकारी इम्तहान मे बैठकर ठीक-ठिकाने लग जायेगा । जिला हाकिम और नही तो हाकिम परगना भी बन गया कही, तो जिन्दगी बनी समझो । बड़ा रोब-रुतबा होता है, सरकारी गाडी मिलती है, सैकड़ों लोग नीचे काम करते हैं । बस, चार-पाँच साल और···। तकलीफे उठाते हुए उसे पाला है, उसके-ठीक ठिकाने लग जाने के बाद संकल्प पूरा होगा ।

मन में योजनाएँ बनती हैं···। यहीं इसी मुहल्ले मे कोई जमीन लेंगे और ऐसा ही मकान बनवायेंगे जैसे बने हैं, बल्कि उनसे अच्छा और बड़ा···। गाँव वाला मकान भी ठीक करा लेंगे । चाहे जहाँ रहें, असली घर

तो वही है, पुरखों का जमाना है। अब वहाँ कुछ भी नहीं रहा, सिर्फ पुराना टूटा-फूटा मकान है, कोठरियों की छतें धसक गयी हैं, बहुत-सी दीवारें गिर गई हैं, फिर भी अपनी मिट्टी का मोह नहीं छूटता। हर साल एक बार जाते रहे हैं, कभी-कभी राजेन को भी ले गये हैं···। जब छोटा था तो उनके साथ वह भी पुरखों की ड्योढ़ी पर माथा टेकता था। क्या उसके अन्दर पुरखों की मिट्टी के लिए मोह नहीं होगा?

लेकिन बीच-बीच में मन को शंकाएँ भी कुरेद जाती हैं। अब तक टेढ़े-सीधे कठिनाई से या आसानी से, जैसे भी बन पड़ा है उसी तरह राजेन को जिस रास्ते पर लगाना चाहते थे, लगा दिया है। न उसे बहकने दिया है, न और कोई रुकावट पड़ने दी है। बाधाएँ जो पड़ी भी उन्हें रो कर या हँस कर पार भी किया है। और यही सम्बल विश्वास देता है कि आगे भी जो पड़ेगा उसे झेल लेंगे, पार कर लेंगे। पर यही वे आशंकाओं से सिहर उठते हैं। जीवन में निश्चित क्या है? कौन कह सकता है कि आगे क्या है? ऐसी भी बाधाएँ आ सकती हैं जिन पर कोई बस न चले। कौन जाने किस्मत ऐसी ही खराब हो···?

बाधाओं को टालने और उन पर विजय पाने के लिए उनके पिता दुर्गा सप्तशती का पाठ किया करते थे। सुबह घर के दरवाजे पर ही बड़े कुएँ पर खुद पानी खींचकर नहाते और उसके बाद उसकी जगत पर ही एक किनारे मूँज का आसन बिछा कर एक घंटे तक पाठ करते। बाद में घर की ही एक कोठरी में गाँव के सितई भगत से देवता की प्रतिष्ठा करायी थी, बहुत से देवी-देवताओं की तस्वीरें लगा ली थीं और अब वहीं सप्तशती का पाठ करते। उनके पास एक घोड़ी थी जिस पर अपने पटवारियों के बस्ते के साथ बैठकर वे अपने हलके के गाँवों में घूमते या तहसील-कचहरी जाया करते। कहते हैं—उन्होंने बड़ी जायदाद खड़ी की—कई बीघे खेत, बाग-बगीचे और तालाब। वह देखभाल नहीं कर पाये और पूजा-पाठ शुरू किया तो धीरे-धीरे सबसे उदासीन हो गये और सब कुछ यहाँ-वहाँ बिखर गया। उन्होंने किन बाधाओं पर विजय पायी, किन पर नहीं, यह लल्लन बाबू को भी मालूम नहीं, पर एक इतवार को शहर में दुर्गा मन्दिर में दर्शन करने गये। काफी बड़ा मन्दिर है, आसपास के इलाके के लिए एक

छोटा-मोटा तीर्थ। बाहर से आने वाला हर यात्री दुर्गा के दर्शन किए बिना नही लौटता। वहाँ से लौटते समय लल्लन बाबू भी धार्मिक किताबे बेचने वाली एक दूकान से 'दुर्गा सप्तशती' टीका सहित खरीद लाये थे। तब से अब वह भी सुबह एक घंटे तक पाठ करते है···।

अधिक तेजी से पाठ नही करते, क्योंकि राजेन पढता रहता है, फिर भी सप्तशती के पाठ से मन को ढाढ़स और शान्ति मिलती है।

एक दिन दफ्तर से घर लौटते हुए, उनका ध्यान रामलखन जी के मकान की ओर गया। अब वह पूरा हो गया था। लगता था हाल मे ही गृह-प्रवेश भी हो चुका था। बाहर के बरामदे मे खम्भो के बीच आम की टहनियों की झालरे अब भी लटकी हुई थी, हालाँकि पत्ते अब सूखकर पीले पड रहे थे। रामलखन जी बरामदे में आरामकुर्सी डाले बैठे थे। कुछ और कुर्सियों पर उनके मुसाहिब जैसे कई लोग बैठे बातचीत कर रहे थे।

लल्लन बाबू चलते-चलते ठिठक कर खड़े हो गए और कुछ देर तक उनके मकान की ओर न जाने क्या देखते रहे। उसके बाद बगल वाली जमीन से होते हुए मकान के पीछे की ओर गये। लल्लन बाबू के दिमाग मे कुछ लहरें-सी उठने लगी। शायद यही जगह थी जहाँ उस रात आये थे। सीढी पर चढ़ कर मजदूरों के सरदार से मिलने गये थे।···उसके बाद कुछ पता नहीं। आँखों पर एक अँधेरा पर्दा-सा खिंच उठा। लोग कहते है गिर गये थे और बाद में अस्पताल पहुँचाया गया। हो सकता है गिर ही गये हों। पर अब यहाँ न सीढ़ी है न मजदूर। काम भी नही हो रहा है और न वह शोरगुल है।

मालूम होता है वे सब भाग गये। अब वे शोर नहीं मचायेंगे।

लल्लन बाबू सहसा बहुत खुश हो गये। जल्दी-जल्दी वहाँ से घर पहुँचे और अन्दर दाखिल होते ही राजेन की माँ को आवाज दी—

"अरे सुनती हो···!"

राजेन की माँ उनका चेहरा देख कर चौंक पडी। इस तरह तो कभी नही हँसते थे और आँखें कैसी सूनी लग रही है जैसे अपनी सारी चमक खो बैठी हैं। एकदम कोई भाव नही।

लल्लन बाबू ने हँसते-हँसते कहा —"वे अब भाग गये।"

"कौन ?"

"तुम कुछ भी नहीं समझती। पूछती हो कौन ?··· अरे वे ही जो रात को शोर मचाते थे···। चले थे मुझसे लड़ने।··· मैंने तो सोच लिया था कि उन सबको भगा कर छोड़ूँगा···।"

हाय दैया, क्या हो गया यह !

राजेन की माँ का कलेजा थरथरा उठा। बदन पर काबू कर पाना भी मुश्किल हो गया। दौड़ कर उस ताखे के पास पहुँची जिस पर कई तरह की शीशियों में लाल-पीली गोलियाँ रखी थीं। उनमें से एक सुबह-शाम खाना खाने के बाद देने की थी। एक नींद न आने पर और एक दिमाग गरम होने या घबराहट होने पर। राजेन कई बार समझा चुका है कि कब कौन दवा देनी है, पर आज तक ठीक से समझ नहीं पायीं। अभी वह पढ़ कर लौटा नहीं था। आ ही रहा होगा, पर उसके आते-आते बीच में ही कहीं कुछ ऐसा-वैसा न हो जाय।

—हे भगवान, हे माता विन्देसरी, हे संकर जी, हे माता भवानी···? बुदबुदा कर किया गया देवताओं का आवाहन तुरन्त ही भयाक्रान्त, आतुर चीखों में बदल गया।

नन्दो बुआ ही उसे एकमात्र सुनने वालों में थी। अपने ओसारे से हाँफती हुई दौड़ी आयी।

"क्या हुआ राजे की माँ, क्या हुआ ?" फिर लल्लन बाबू की ओर देखते हुए जैसे सारा मामला भाँप कर बोली, "क्या हुआ भैया को, भले-चंगे तो दीखते हैं, नाहक जी क्यों छोटा करती है ?"

लल्लन बाबू भावशून्य आँखों से दोनों औरतों की तरफ देखते खड़े रहे। फिर सहसा तेजी से हँस पड़े। हँसते-हँसते ही कहा—

"आखिर वे भाग ही गये।···चले थे मुझसे लड़ने !"

नन्दो बुआ को कभी कोई भय या घबराहट नहीं होती। अज्ञानवश भी जो लोग दुनिया को उसी रूप में ग्रहण करते हैं जैसी कि वह होती है, उन्हें भय या घबराहट होती भी नहीं। दुनिया की उनकी परिभाषा में गरीब, रोगी या पागल भी उतने ही जरूरी होते हैं जितनी कोई और

चीज । बहुत-से लोग रोगी होते हैं, बहुत-से लोग पागल होते हैं, लल्लन बाबू भी हो गये तो क्या ऐसी आफत आ गयी ! अपनी लम्बी उम्र मे उसने बहुतो को पागल होकर जीते-मरते देखा है । उसकी जेठानी कुल्लन की मौसी तो उमर ढलते-ढलते ऐसी पागल हो गयी थी कि धोती भी न सँभाल पाती। इसी मुहल्ले का भैरो गाड़ीवान भग के साथ धतूरा खाकर पागल हुआ था। गोरू की सिक्कड़ में बाँधा रहता। उसी तरह बूढा हुआ, उसी तरह मरा । लल्लन बाबू का पागलपन उनके मुकाबले कुछ भी नही । जो कहते है सुनते जाओ, कुछ कहो मत, तब तक सब ठीक है । जुनून तभी बढ़ता है जब उनकी बात मे मीन-मेख करो ।

लल्लन बाबू का हाथ पकड कर उनकी चारपाई की ओर खींचते हुए बोली, "हाँ, हाँ, ठीक ही तो कहते हो, भागेंगे नहीं तो क्या सामत बुलायेंगे अपनी ।...मगर तुम आराम करो अब । दफ्तर से आये हो, थके होगे !"

लल्लन बाबू मेमने की तरह खिंचते चले गये और किसी बेजान कुन्दे की तरह चारपाई पर ढरक रहे । कुछ देर तक वे रह-रह कर हँसते और अपनी बात दुहराते रहे—'वे चले गये... चले ही गये ।' लेकिन चारपाई से उठने की कोशिश उन्होंने नहीं की ।

थोड़ी देर बाद राजेन आ गया। घर का दृश्य देखा तो हत्प्रभ रह गया । पर अब वह जानता है कि ऐसी हालत मे क्या करना है । डाक्टर ने यह तो साफ-साफ नही बताया था कि ऐसा होगा ही, पर दवाये लिखते वक्त बता दिया था कि कैसी हालत मे क्या देना होगा । एक शीशी मे से वह नीद लाने वाली एक गोली निकाल लाया । लल्लन बाबू ने एक बार आनाकानी की लेकिन फिर खा लिया। थोड़ी ही देर बाद उनकी नाक की घुरघुराहट सुनायी देने लगी। सब कुछ फिर जैसे यथावत हो गया । राजेन की माँ ने चूल्हा-चौका जल्दी से निबटा लिया। सिर्फ राजेन को खिलाना था। लल्लन बाबू सो गये थे इसलिए खाना नही खा सके, और इस हालत में पति-परमेश्वर के खाये बगैर वे कैसे खाना खा लेती ! चुपचाप आकर कमरे में अपनी चारपाई पर लेट रही । फिर भी आँखो मे नीद नही थी । रह-रह कर वे चौंक कर लल्लन बाबू की ओर इस तरह देखने लगतीं, मानो उन्हें विश्वास न हो रहा हो कि वे सही-सलामत सो रहे हैं ।

राजेन का मन पढ़ाई में नहीं लग रहा था। कारण पिता की तबीयत खराब होना ही नहीं था। आज कुछ ऐसी बातें हो गयी थीं जिनसे कुछ महीनों पहले की भूली हुई घटनाओं से वह फिर जुड़ गया। कालेज लाइब्रेरी में आज अखबार पढ़ते हुए एक समाचार को उसने विशेष दिलचस्पी से पढ़ा था। समाचार था बाबू गोविन्द नारायण के अभिनन्दन का। प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री सदानन्द ने समारोह की अध्यक्षता की थी और वही प्रमुख वक्ता थे। समारोह का संचालन रामलखन जी ने किया था। लेकिन खास बात यह थी कि समारोह की एक कड़ी के ही रूप मे गोविन्द नारायण जी ने 'बलिदानी' नामक नाटक का उद्घाटन भी किया जिसका निर्देशन अतुल चक्रवर्ती ने किया था। इस एक बात से ही वह चौंक गया। आखिरी बार जब वह रिहर्सल में गया था तो इन्हीं अतुल दादा और रामलखल जी में लड़ाई हो रही थी। पर इस बीच दोनों में फिर कब समझौता हो गया, कैसे हो गया, यह सब राजेन को नहीं मालूम। लेकिन प्रमुख अभिनेताओं-अभिनेत्रियों मे मंजु का भी नाम दिया हुआ था।

इसके बाद इस अभिनन्दन को ही अवसर बना कर बीच के पन्ने मे एक टिप्पणी भी दी गयी थी। शासक पार्टी के विग्रह और सम्भावित फूट की पृष्ठभूमि मे प्रदेश और स्थानीय राजनीति मे होने वाले परिवर्तनों की ओर संकेत करते हुए मध्यावधि चुनाव की भविष्यवाणी की गयी थी। इस सन्दर्भ में एक उपमंत्री के अभिनन्दन में मुख्यमंत्री के सभापतित्व को अर्थपूर्ण बताते हुए उनके राजनीतिक भविष्य के बारे में तरह-तरह की अटकलें लगायी गयी थीं।

राजनीति की गूढ़ बातें राजेन नहीं समझता था और न समझने मे उसकी दिलचस्पी थी। सामान्य बातें न जानता हो, या राजनीति के सामान्य घटना-प्रवाह से एकदम कटा हुआ हो, ऐसा नहीं। बहुत कुछ उसे पता था। पर दूर से ही, उसका वह हिस्सा कभी नहीं बन पाया।

कालेज में अलग-अलग दलों के छात्र संगठन भी थे जो छात्रों की फीस माफी, फीस घटाने, कम अंक पाने वाले छात्रों की भरती के सवालो पर आन्दोलन किया करते। पर इनमें भी वह किसी के साथ सक्रिय रूप से कभी जुड़ नहीं पाया।

जगदीश जब तक तक कालेज आता रहा, वह ऐसे हर आन्दोलन मे आगे-आगे रहता, छात्रों की हर कमेटी में वह रहता । उसकी आवाज सुनी भी जाती. राजेन ने अक्सर महसूस किया था कि कुछ शिक्षक उससे डरते भी थे । कुछ लोग तो बराबर उसके निकट सम्पर्क मे आने की भी कोशिश करते । सुना था दो-एक लोगों को उसने अपने पिता से पैरवी कर प्रदेश सरकार में अच्छी नौकरियाँ भी दिलवा दी थी । कुछ नौजवान शिक्षकों का उससे छात्र-शिक्षक का नाता ही न था । वे उससे सिगरेट-पान लेकर पीते-खाते और खुद भी पेश करते । स्टाफ रूम में अपने बराबर बैठाते और हँसी-मजाक तक किया करते । पर जगदीश से अपनी दोस्ती के बावजूद राजेन किसी आन्दोलन मे शरीक नही हो सका ।

आज इस समाचार का इतना ही महत्व था कि जगदीश और मंजु के बारे मे काफी दिनो बाद कुछ मालूम हुआ । अभिनन्दन के समाचार मे मंजु के बारे मे पढ़ कर फिर उनकी याद ताजा हो गयी थी । उसने टिप्पणी भी इसी आशा से पढ डाली थी कि शायद उनके बारे में कुछ और जानने को मिले । लेकिन वह दूसरा ही विषय था । दूसरे पन्नो पर भी उसने ऐसे समाचार खोजे जिनमें इस अभिनन्दन के बहाने उनके बारे मे कुछ जानने को मिले । पर और कोई समाचार नही मिला । लेकिन जितना जान लिया वही उत्सुकता जगा देने के लिए काफी था ।

नाटक होने का मतलब यही नहीं था कि अतुल दादा और रामलखन जी मे समझौता हो गया था, बल्कि यह भी कि जगदीश और मंजु जहाँ भी थे वहाँ से लौट आये थे ।

मंजु के साथ अपने थोड़ी देर के सम्पर्क से उसने जो धारणा बनायी थी शायद उसका कोई आधार नही था । जगदीश के प्रति मंजु के व्यवहार मे उसे मजबूरी और असहायता का भाव अधिक मालूम हुआ । पर अब ? जगदीश के साथ सहसा इस तरह चली जाने का अर्थ स्पष्ट था । जगदीश से वह प्रेम ही करती होगी । मंजु के प्रति उसके मन में गलत भाव उठे ही क्यों ? जगदीश को पता चलेगा तो वह क्या कहेगा ?

क्या जगदीश ने जब मंजु को उसके साथ घर भेजा था तो उसने कभी यह सोचा था कि उसके मन में ऐसी बात उठेगी ? और मंजु के

सहृदय, आत्मीय व्यवहार को उसने गलत रूप में समझा ही क्या ?

इस बीच मंजु से कभी मुलाकात होती तो पूछता उससे। लेकिन क्या इसका साहस कर पाता कभी ? उस दिन खाली बस पर उसके संकोच पर ही हँस पड़ी थी वह। और फिर उसी के पास आकर बैठ गयी थी। और उसके बाद पार्क में किस तरह देर तक बैठने का आग्रह किया था उसने। और भी कितनी बार उसके साथ-साथ आया था, उसकी निकटता का अनुभव किया था। तब लगा था ये क्षण सदा शाश्वत बने रहेंगे। यह रिहर्सल हमेशा होता रहेगा और वह हमेशा इसी तरह मंजु की निकटता का सुख पाता रहेगा…। अगर पता होता कि यह सब किसी दिन एका-एक खत्म हो जायेगा तो शायद किसी दिन साहस जुटा कर मंजु से पूछ डाला होता; पूछ डाला होता कि उसके साथ इतना आत्मीय इतनी निकटता का व्यवहार क्यों करती है ?

पर अब तो पूछने के लिए कुछ रह ही नहीं गया। राजेन के लिए रह गया था बस एक मृत अतीत, और अतीत भी ऐसा जिसका खुद वह कोई अंग नहीं।

वह उस दुनिया का भी हिस्सा नहीं था जिसमें जगदीश और मंजु रहते थे, मंजु के साथ बिताये क्षण भी उसके अपने नहीं थे। वह एक दर्शक मात्र था जिसने कुछ क्षण चुरा लिये थे और अब उन्हीं की पूंजी पर महल खड़ा करना चाहता था। इसीलिए शायद बनने के पहले ही वह ध्वस्त हो गया।…

—पिता के गले में किसी वजह से घुरघुराहट होने लगी थी और वह सब कुछ भूलकर उनके पास दौड़ गया। नींद की गोलियों ने अपना असर दिखाया था और अब तक वे बड़े आराम से सो रहे थे। एकाएक यह घुरघुराहट कैसी होने लगी। उसकी माँ भी घबराकर उठ बैठी। पास आकर राजेन ने उनका माथा देखा, नब्ज टटोली, सीने पर कान रख कर दिल की धड़कन सुनी। यह सब वह अस्पताल में करीब तीन हफ्ते रहकर देख-सीख आया था। सब ठीक मालूम हुआ। गला शायद नींद में किसी वजह से यों ही घुरघुराने लगा होगा, हो सकता है, प्यास लगी हो पर गहरी नींद के कारण उठ न पाने से ऐसा हुआ हो या खाँसना चाहते हों।

पर कोई परेशानी वाली बात नहीं थी मॉं को ढाढस बंधाकर वह अपनी जगह पर आ बैठा। थोड़ी देर पहले उसके ऊपर छाया यादो का सम्मोहन टूट गया और कुछ देर तक वह पढ़ाई मे अपना ध्यान लगा सका।

सुबह लल्लन बाबू सोकर उठे तो भले चगे थे। पिछली शाम को सनक का कही नामोनिशान नही था। नहा-धोकर दुर्गापाठ किया, खाना भी खाया, लेकिन दफ्तर जाने की हालत में न रहे। उन्हें पता नही चल पाया कि पिछले दिन क्या हो गया था, पर मन अलसाया लगा और बहुत कमजोरी मालूम हो रही थी। राजेन ने उन्हें कल की याद दिलायी भी नहीं क्योंकि हो सकता था इससे उनकी घबराहट बढ़ जाती या फिर वही सनक सवार हो जाती। इसके बदले कल की तरह उन्हे फिर नीद की एक गोली खिला दी। थोड़ी देर बाद जब वे खुर्राटे भरने लगे तो उनकी ओर से खुद ही दफ्तर मे दो दिन की छुट्टी की अर्जी भी पहुँचा आया। वह भी कालेज नही गया, उनकी देखभाल के लिए अकेले माँ पर विश्वास नही कर सकता था। पढ़ाई भी अब कोई खास नहीं होती थी, कोर्स पूरा हो चुका था, चार-छः दिनों में इम्तहान की तैयारी के लिए फाइनल कक्षाओं के विद्यार्थियों की छुट्टियाँ हो जाने वाली थीं। लेक्चरर क्लासों मे आते तो इम्तहान के बारे में कुछ सामान्य बातें ही होती रहती। जाना-न जाना अब बराबर था।

लेकिन बेटे की परिचर्या और नीद की गोलियों के असर से लल्लन बाबू की तबीयत सुधरने के बावजूद राजेन की माँ को सन्तोष नहीं हुआ। यह सब लल्लन बाबू के साथ जो हो रहा था वह भाग्य के फेर और शनि की कोपदृष्टि के अलावा भी कुछ है, यह मानने को मन तैयार नही होता। नन्दो बुआ पहले ही तरह-तरह के जतन-टोटके कराया करती।

आज राजेन घर पर था तो नन्दो बुआ को लेकर वे शहर के सभी देवी-देवताओं के मन्दिरों और सिद्ध-संन्यासियों के यहाँ घूम आयी। मनौतियाँ और संकल्प किये। लौटी तो काले धागों की एक अठसुत्ती करधनी सिद्ध करा कर लेती आयीं जिसमें तरह-तरह की कौड़ियाँ, ताँबे के दो-तीन पुराने पैसे और तावीजें पिरोई हुई थीं।

लल्लन बाबू ने देखा तो नाराज हो गये। पर इस नाराजी में उला-

हना अधिक, जोर कम था। ऊपर से नन्दो बुआ ने जड़ा, "अरे तड़पते-मिनकते काहे हो ! पिसाचमोचन के सत्संगी बाबा की एक सौ सत्तासी बार हनुमान नाम से सिद्ध करी करधनी है। रोग-बियाधी क्या मजाल जो पास फटकें। ऐसे सिद्ध-जोगी-महात्मा का अपमान न करे चाही··· फिर राजे की अम्मा का भी तो मान रखो कुछ···।"

लल्लन बाबू शरीर से ही कमजोर नही हुए, भीतर ही भीतर कही मन से भी कमजोर हो गये थे। नन्दो बुआ का प्रतिवाद नहीं कर सके। मन में भी मानो कोई क्षोभ और झल्लाहट नहीं हुई। चुपचाप उठ कर खडे हो गये और लटकी हुई झुर्रियों वाली—बूढ़ी होती कमर में काले धागों की तावीजों वाली करधनी सज गयी।

ग्यारह

लेकिन करधनी का कवच भी लल्लन बाबू की रक्षा न कर सका। अगले एक-डेढ़ महीने में उन्हें चार-पाँच बार अलग-अलग तरह के दौरे पड़े। कभी वे किसी नये बनते मकान के सामने खड़े होकर जोर-जोर से मजदूरों को और मकान बनवाने वाले को गालियाँ देते तो कभी बिना खाये-पीये सुबह ही घर से निकल जाते और दफ्तर जाना भूल कर दिन-भर घर मे गायब रहते। ऐसे हर मौके पर उनके लिए हेरवा निकलते। एक बार वे सिंघाड़े वाले तालाब के किनारे गाय-गोरुओं के साथ अपने सारे कपड़े पहने नहाते पाये गये तो दूसरी बार छोटे-छोटे बच्चों के साथ कीचड़ के लोंदे बना कर फेंकते हुए। एक बार नहा-धोकर दुर्गापाठ करने बैठे तो जैसे अक्षर-ज्ञान ही भूल गये और धीरे-धीरे अक्षर पहचानने का प्रयत्न करते हुए इस तरह पढ़ने लगे जैसे बारहखड़ी का अभ्यास करते बच्चे पढ़ते है। और ऐसे हर अवसर के बाद राजेन की माँ की मनौतियों-संकल्पों की संख्या बढ़ती जाती, और लल्लन बाबू के गले, हाथ और कलाइयों में गंडे-तावीजों के कवच।

एक दिन जब वे कुछ ठीक थे तो राय साहब और राजेन उन्हें लेकर

फिर अस्पताल गये और उनका इलाज करने वाले डाक्टर से मिले। डाक्टर ने दवाओं में एक और दवा जोड़ दी और छ: सूइयों का एक कोर्स लिख दिया। लल्लन बाबू की खूब अच्छी तरह जाँच कर उनके सामने यही कहते रहे कि उनकी तबीयत बिल्कुल ठीक है, उन्हें कोई रोग नहीं है, थोड़ा बहुत जो है वह कुछ दिनों में ठीक हो जायेगा। लेकिन जब राय साहब और लल्लन बाबू बाहर निकल गये तो राजेन को बड़ी होशियारी से जैसे कोई भूली बात याद आ गयी, इस तरह फिर अपने पास बुला लिया। शायद वे कुछ फुरसत में थे। काफी रुचि और आत्मीयता से पूछा—

"ये तुम्हारे पिता हैं ?"

"जी।"

"तुम क्या करते हो, पढ़ते हो ?"

"जी हाँ, इन्टर फाइनल है इस साल।"

"ये क्या करते हैं ?"

"बिजली कम्पनी में एकाउन्ट्स क्लर्क हैं।"

"हूँ···।" डाक्टर कुछ सोचते हुए बोले, "तुम्हे मैंने इसलिए रोका है कि मैं किसी को अँधेरे मे नही रखना चाहता···। मैं तुम्हारे पिता के लिए बाजार में मिलने वाली सबसे अच्छी दवायें प्रेस्क्राइब कर रहा हूँ,···लेकिन भाई ! मेडिकल साइंस की भी एक सीमा है, अभी बहुत से रोगों पर रिसर्च हो रही है, सफलता मिल रही है, फिर भी सीमा तो है ही। मेडिसिन न तो 'नेचर' है और न डाक्टर 'गाड', तुम्हारे पिता की हालत 'मोर ऑर लेस' यही बनी रहेगी।

"अगर कोई धनी-मानी होते, चार लोग हर वक्त सेवा-टहल करने वाले होते, जीवन चलाने के लिए काम-धाम का बोझ न होता, कोई फिक्र न होती, तो हो सकता है कुछ हालत सुधर जाती···लेकिन कुछ ही, पूरी तरह कभी नहीं।···दवाओं से कुछ सुधर जायेगी लेकिन स्थायी रूप से कुछ भी नहीं होगा। गनीमत यही है कि वे इस चोट को झेल कर 'सर्वाइव' कर गये और तुम्हारे ऊपर उनका साया बना रहेगा। हाँ, यह जरूर है कि उन्हे इसी तरह बर्दाश्त करना होगा।"

डाक्टर अन्दर आने के इन्तजार मे दरवाजे पर खड़े एक दूसरे रोगी

की ओर मुखातिब हुए।

"कम इन!" कहते हुए डाक्टर ने राजेन से कहा, "ठीक है, तुम जाओ अब। जब जरूरत समझो, मुझसे मिल लेना, 'आई विल डू माई बेस्ट', जरूरत हुई तो मैं तुम्हारे पिता को 'मेंटल हास्पिटल' के लिए भी 'रेकमेंड' कर दूँगा। 'यू आर ए यंग मैन', कठिनाइयों को 'फेस' कर सकते हो, हरेक पर मुसीबतें आती है···।"

—मेंटल हास्पिटल? यानी पागलखाना! इस शब्द के डंक को छिपाने के लिए ही जैसे इसे यह शरीफाना नाम दे दिया गया है।

—क्या बाबू पागल हो गये हैं?···राजेन कुछ सोच नही पा रहा था। मस्तिष्क मे जैसे हवा सी भर गयी थी। और पैर बेजान होकर जैसे अभी जवाब दे जायेंगे।

किसी तरह, जैसे भयमोहित-सा वह बाहर पहुँचा।

राय साहब अकेले ही एक बेंच पर बैठे उसका इन्तजार कर रहे थे। लल्लन बाबू की छुट्टी आज नही थी। इस वक्त कोई खास परेशानी नहीं थी इसलिए राय साहब ने उन्हे वही से दफ्तर चले जाने से रोका नहीं।

"क्यों, क्या कहा डाक्टर ने?" राजेन के पास आते ही राय साहब ने पूछा, "क्यों रोक लिया था तुम्हे?"

राजेन के होंठों तक बात आयी, पर वह कुछ कह न सका।

"घबरा क्यों रहे हो?" राय साहब ने फिर पूछा, "क्यों, क्या कोई बहुत खराब बीमारी बता दी।"

"कहते हैं···कहते हैं···" राजेन फिर कुछ बोल नही सका। उसके होंठ और नथुने फड़फड़ाने लगे। बहुत कोशिश की अपने को सँभालने की। पर अब तक का रुका हुआ बाँध जैसे एकाएक बह निकला। वह फफक-फफक कर जोर से रो पड़ा। बाबू ने भी यह कैसा दिन दिखाया। अब तक सब बड़े धीरज और साहस के साथ इस आशा मे सहता आया था कि वे एक दिन बिल्कुल ठीक हो जायेंगे। बड़े जतन और लगन से उनकी सेवा करता आया था। पर यह अब निष्फल रहेगा, सेवा-जतन कुछ काम नही आयेगा—वे जब तक जीयेंगे ऐसे ही रहेंगे—यह बात रह-रह कर शूल सी चुभ रही थी।

राय साहब कुछ देर तक सिर नीचा किये बैठे रहे। लड़के को क्या कह कर ढाढ़स बँधायें। आखिर लड़का ही तो है। इसी उमर मे इतना बड़ा बोझ। कैसे सँभालेगा, क्या करेगा? कोई झूठा दिलासा भी नही दिला सकते थे। लल्लन बाबू की मौत भी शायद इतनी दुखदायी न होती। यह एक ऐसी चरम स्थिति होती है जिससे हर कोई देर-सबेर समझौता कर लेता है फिर उसकी चिन्ता से मुक्त हो जाता है। पर एक जीवित व्यक्ति को लाश की तरह कोई कब तक ढोता रह सकता था!

राजेन अपने आँसुओ को रोकने का भी कोई प्रयत्न नही कर रहा था। एक बार आँसू बह निकले तो फिर संकोच किस बात का। राय साहब ने भी उसे चुप कराने का कोई प्रयत्न नही किया। हर बात अपनी अनुभवी दृष्टि से परखने के आदी है। सान्त्वना के झूठे शब्दों के मुकाबले सच्चे आँसू मन का बोझ अधिक हल्का कर सकते हैं।

थोड़ी देर बाद जब राजेन की रुलाई खुद-ब-खुद थम गयी तब राय साहब उसके साथ अस्पताल से बाहर आये।

घर पर माँ बड़ी अधीरता से उसकी बाट देख रही थी—किसी अशुभ की आशंका से अन्दर ही अन्दर पत्ते की तरह काँपती हुई।

"क्या कहा रे, क्या कहा डागदार ने?" राजेन को देखते ही पूछा।

शुभ-अशुभ जानने की आतुरता में यह साधारण-सा प्रश्न भी अन्तर से उठी चीत्कार की तरह मालूम हो रहा था।

लेकिन अस्पताल से घर आने के बीच ही राजेन में कैसा एक कड़ापन आ गया था। अभी थोड़ी देर पहले जो बच्चो की तरह रोने लगा था, माँ का भय-कातर, झुर्रियों भरा दयनीय चेहरा देखकर जैसे एकाएक वयस्क बन गया। बाबू के ऊपर जो पड़ेगी उसे वे झेलेगे ही, वह भी अब सब कुछ जानता है इसलिए झेलेगा—नाहक एक और पर वही बोझ क्यो पडे। उसने वही बातें दुहरा दी जो डाक्टर ने लल्लन बाबू के सामने कही थी—"दवा एक और बढ़ा दी है, छः सूइयाँ लगेंगी, पर वह ठीक हो रहे है, कुछ दिन में एकदम ठीक हो जायेंगे—हाँ, अभी कुछ दिनों तक ऐसी हालत चलेगी, बीच-बीच में दिमाग गरम हो जाये, तो कहा है, घबडाने की बात नही है•••।"

उसे अपने ऊपर ताज्जुब हुआ। इतनी आसानी से इतना बड़ा झूठ कैसे बोल सका ! एक बार भी न पलकें झपकीं न जीभ लड़खड़ाई। लेकिन यदि झूठ दूसरे का संबल बने तो शायद आसानी से बोला जा सकता है। माँ के चेहरे पर झलकता सन्तोष ही जैसे इस झूठ का पुरस्कार था और थोड़ी देर पहले के अपने आँसुओं को भी वह भूल गया।

चार-पाँच दिन बाद राजेन को फिर लल्लन बाबू की अर्जी लेकर उनके दफ्तर जाना पड़ा। अच्छा यही था कि इस बार उसके लिए कुछ अप्रत्याशित नहीं था, हालाँकि लल्लन बाबू ने जो किया, इसके पहले कभी किया नहीं था। सुबह-सबेरे ही वे पास में खटिकों के बाग में चले गये और पिउनी बेरों से लदे एक पेड़ पर चढ़कर कुछ देर बेरें तोड़-तोड़ कर खाते रहे। कुछ देर बाद खटिक आया और डपटकर पेड़ से उतरने के लिए कहने लगा तो उन्होंने उतरने से इन्कार कर दिया और इसके बदले उससे कहने लगे, "तुम भी पेड़ पर ही चले आओ चौधरी, देखते नहीं, सारी दुनिया में प्रलय आ गयी है, मेरे घर वालों को भी बुला लो···अब सब डूबा ही चाहता है, बस यह पेड़ नहीं डूबेगा, जल्दी चले आओ···।"

जल्दी ही वहाँ आसपास के लोगों की भीड़ लग गयी। बस्ती में यह खबर फैल गयी कि दुक्खन खटिक के पेड़ पर कोई पागल चढ़ गया है जो उतर ही नहीं रहा है। राजेन और नन्दो बुआ ने सुना तो भागे-भागे गये। घंटे भर उनकी मान-मनौती की तब किसी तरह नीचे उतरे।

बड़े बाबू ने भी यह सारा किस्सा सुना लेकिन उस दिन उनका रुख कुछ बदला हुआ था। हर बार अर्जी ले जाता तो बड़ी सलीकत से 'बेटा, बेटा' कहते सामने की कुर्सी पर बैठा लेते। बाबू का और उसकी पढ़ाई का भी हाल-चाल पूछते, कुछ सहानुभूति भी प्रकट करते। इस सबके पीछे की औपचारिकता स्पष्ट होती, फिर भी दफ्तर का अफ़सराना अन्दाज कभी सामने न आता। ऊपर आने के लिए जैसे सिर्फ कसमसा कर रह जाता।

आज भी उन्होंने सारी औपचारिकता निभाई। पर कुछ रुखे स्वर में। अपना अफसराना अंदाज भी न छिपा पाये।

"अपने बाबू से कहो कि जितने दिन जरूरी समझें उतने दिन की

छुट्टी एक साथ ल ल   अब इसी महीने दो दो दिन की छुट्टी चार बार ले चुके हैं।···रिकार्ड खराब होता है।"

"बता दूंगा," राजेन ने कहा, "लेकिन किसी को मालूम तो होता नहीं कि कब, किस दिन उनकी तबीयत खराब हो जायेगी, न मुझे, न खुद उन्हे।"

बड़े बाबू जैसे इस ज्ञान से खीझ उठे कि बीमारी उनका हुक्म क्यो नहीं मानती। अपनी भावनाओ के आगे साहब की ढाल लगाकर कहा, "भाई, मैं तो सब समझता हूँ, लेकिन साहब जो नही सुनते। कहते है लल्लन बाबू बीमारी का बहाना तो नही बनाते। उनसे कहो थोड़ा अपने ऊपर काबू रखें। ऐसे कितने दिन चलेगा। आखिर दफ्तर तो दफ्तर है···।"

इस बार लल्लन बाबू के दफ्तर के एक अन्तरंग परमात्मा बाबू ने जवाब दिया—

"अरे बेटा, इस बार ऐसा करना कि जब तुम्हारे बाबू ऐसा कुछ करें तो खबर कर देना, बड़े बाबू और साहब जाकर लिवा लायेंगे उन्हे···।"

बड़े बाबू को छोड़कर जिन लोगों ने भी यह सुना होठों ही होठो मे हँस पड़े। इसका बदला कभी आगे लेने के लिए इस कटूक्ति को अपने दिमागी रिकार्ड मे दबाकर बड़े बाबू सामने रखे रजिस्टर मे मशगूल हो गये। कुछ देर बाद जैसे अपने सामने बैठे राजेन का ख्याल आया तो सिर उठा था और स्वर को भरसक मीठा बनाते हुए कहा, "तुम क्यों बैठे हो, जाओ। यह छुट्टी तो मंजूर हो ही जायेगी।···लेकिन जो कहा है उसके बारे मे बता देना, ख्याल रखेंगे···।"

लल्लन बाबू को ये बातें दूसरे दिन पता चली जब गोलियों के असर ने उनका दिमाग कुछ ठिकाने था। उन्हें देखने के लिए उस वक्त राय साहब भी आये थे। लल्लन बाबू तुरन्त आपे से बाहर हो गये।

"देखते हैं, देखते हैं राय साहब आप! महा फरेबी है वह। आप लोग कहते हैं—मुझे अस्पताल मे देखने आया था और इसकी माँ के हाथ पर प्राविडेंट फड के पैसे भी धरे और दिलासा भी दे गया था कि इलाज मे जितने दिन लगेंगे उतने दिन की छुट्टी मजूर। और आज कह रहा

है नौकरों का ख्याल रखें। जैसे मैं नहीं रखता सालन् साल की नौकरी मे मैंने एक-दो महीने की छुट्टी भी नही ली होगी। मैं उसका काँइयाँपन खूब समझता हूँ। उस वक्त बड़े साहब ने फंड से लोन और छुट्टी मजूर कर ली होगी तो जस लूटने के लिए सबसे आगे-आगे हमदर्दी दिखाने आया था और अब मेरी अर्जियाँ गिनाते हुए साहब के कान भरेगा, अपनी वफादारी का सबूत देकर सालाना तरक्की मे खास रकम मारेगा। महा काँइयाँ है। देखिए, मै कल क्या थुक्का-फजीहत करता हूँ उनकी। साले को बीस बाते सुनाऊँगा और उसके सामने साहब मे पूछूँगा कि क्या सचमुच उन्होंने यह कहा है जो वह बता रहा है।···हुँह, बखेड़ेबाज कही का।"

राय साहब ने उन्हें शान्त कराने की कोशिश की, ऐसा न हो कि ज्यादा तैश मे आ जाने से उनकी तबीयत फिर खराब हो जाय।

"धीरज रखिये लल्लन बाबू!" उन्होंने कहा, "वक्त आने पर हर तरह की चीज सहनी पड़ती है। ऐसे आदमी किसी न किसी रूप में हर जगह मौजूद रहते हैं। दफ्तरों मे वह हेडक्लर्क होता है तो स्कूलों में हेडमास्टर या उनके दरबारी · यहाँ तक कि बड़े परिवारों में भी परिवार मुखिया की नजरों मे ऊँचा उठने के लिए लोग यही सब करते हैं···आप इस वक्त इन बेकार की बातों पर मत सोचिए···। आपके राजेन का इम्तहान शुरू होने वाला है। ऐसी बातो में उलझेंगे तो वह इम्तहान क्या देगा?"

"क्यों? क्या वह पढ नही रहा है?···क्या करता है वह?"

"मेरा यह मतलब नही। अपने भरसक वह खूब पढ़ रहा है, पर आपकी बीमारी से पढ़ाई कही गड़बड़ा न जाये···।"

इस स्थिति ने उनके आक्रोश पर ठंडे पानी के छीटे का काम किया। कुछ भी हो राजेन की पढ़ाई का नुकसान वे नही सह सकते थे। बड़े बाबू की बातें सुनकर उन्होंने जिस अपमान का अनुभव किया था उसकी कटुता चुपचाप पी ली और राय साहब से उसके बारे में कोई बात नही की। जब तक राय साहब उनके पास बैठे उतनी देर तक दूसरी बातें करते रहे।

पर अब लल्लन बाबू का स्वयं अपने ऊपर कोई नियन्त्रण नही था। रात को किसी वक्त वे फिर भभक उठे और सब कुछ भूल कर अगले दिन

दफ्तर जाकर बड़े बाबू की लानत मलामत करने की कसमे खाने लग अजीब बात थी यह। जीवन भर कटुताएँ और अपमान झेलने वाले लल्लन बाबू उस अपमान के विरुद्ध अपना मानसिक सन्तुलन खोने के बाद ही विद्रोह कर पाये थे।

पर उन्हें किसी की लानत-मलामत के लिए अगले दिन दफ्तर नहीं जाना पड़ा। इस हालत में वे थे ही नहीं। राजेन को रात में ही उठकर उन्हें फिर डाक्टर की लिखी नयी दवा देनी पड़ी जिसके असर में वे अगले दिन दोपहर तक बेहोशी की नींद सोते रहे। राजेन को उनकी तबीयत खराब होने की खबर फिर दफ्तर पहुँचानी पड़ी।

शाम को लल्लन बाबू घर के बाहर वाली घोड़िया पर कुछ सुस्त से बैठे थे। मन न शान्त था, न अशान्त। अब जैसे उन्हें इसकी चेतना ही नहीं होती थी। सूनी आँखों वे घर के सामने से गुजरने वाली उस सड़क की ओर देख रहे थे जो आगे जाकर आम, जामुन, गूलर के अधघने पेड़ों के बीच न जाने कहाँ खो जाती थी। यहाँ रहते सोलह साल हो गये, लेकिन आज तक वे उस सड़क पर फर्लांग-दो फर्लांग से आगे तक नहीं जा सके। इसीलिए उन्हें पता भी नहीं था कि यह कहाँ जाती थी।

सामने, सड़क के उस पार कच्चे, खपरैलों वाले, छोटे-बड़े मकानों की भीड़ थी जिनकी गलियों में अब भी खम्भों में लटकी मिट्टी के तेल की लालटेनें जलतीं। उधर देखने को भी मन न करता। उनके आगे खेत और बाग-बगीचे थे, कुछ कच्चे तालाबों में सिंघाड़े बोये जाते और ढोर नहाया करते। घरों की आड़ से यह सब दिखाई न देता। किसी-किसी मकान की दीवारें ऐसी उखड़ी-पुखड़ी होतीं मानो किसी कोढ़ी का शरीर हो, घरों से निकलकर गंदा पानी रास्तों के किनारे सड़ता रहता, इधर-उधर कूड़े के ढेर पड़े रहते। महीने-बीस दिन में एकाध बार नगर निगम की भैंसा गाड़ी आती तभी एक-दो दिन के लिए वे जगहें साफ रह पातीं। लेकिन देखते-ही-देखते फिर कूड़े के वैसे ही पहाड़ खड़े हो जाते। अगर कभी पानी बरस जाता तो दो-चार दिन तक ऐसी बदबू उठती कि नाक सड़ जाती। उधर देखना भी अच्छा न लगता। पर आज लल्लन बाबू को अच्छे-बुरे की चेतना नहीं थी। भावशून्य आँखों से कभी वे सामने

वाली बस्ती की ओर और कभी पेड़ों के बीच खो जाने वाली उसी सड़क की ओर देखते बैठे थे, और इसी तरह बैठे रहे काफी देर।

तभी वहाँ एक छोटे-मोटे हंगामे जैसी बात हो गयी।

हाँ, हंगामा ही कहना चाहिए इसे।

एक चमचमाती काली कार आकर ठीक लल्लन बाबू के घर के सामने रुक गयी। इतना ही नहीं, वर्दीधारी ड्राइवर ने उतर कर उन्हें सलाम भी किया। मुहल्ले के जो लोग वहाँ उस वक्त थे, आँखें फाड़े यह दृश्य देख रहे थे। आज तक तो ऐसा कभी नहीं हुआ। उस टूटे मकान के भाग कैसे जाग गए? उसके आगे यह चमचमाती कार कैसे खड़ी हो गयी?

लल्लन बाबू अपने होश में होते तो सगर्व सारे मुहल्ले की ओर सीना फुला कर देखते। जो न देखता उसे बुला कर दिखाते कि देखो मेरा कैसा रुतबा है। पर इस वक्त उन्हें इसका कोई ध्यान नहीं था। वे कुछ देर तक अपलक कार और उसके ड्राइवर की ओर देखते रहे। फिर पूछा, "क्या यह राजेन की गाडी है?...और प्यारेलाल, उसे तुम कब से चलाने लगे?...लेकिन ठीक है, मैं उससे कह दूंगा कि वह तुम्हारा अच्छी तरह ख्याल रखेगा...।"

ड्राइवर हक्का-बक्का लल्लन बाबू की ओर देखता रह गया।

"लेकिन तुम खाकी वर्दी क्यों पहनते हो, नीली अच्छी लगती है।" लल्लन बाबू ने कहा, "अच्छा मैं राजेन से कहकर बनवा दूंगा।"

तब तक गाडी का पिछला दरवाजा खोल कर दो और सज्जन नीचे उतरे! सिर पर गोल टोपी और आँखो पर कमानीदार चश्मा लगाये बड़े बाबू और उनके साथ थे निर्मल बाबू, मलमल का सफेद झकाझक कुर्ता और धोती पहने।

"अरे लल्लन बाबू, हम हैं हम...।" बड़े बाबू ने मुँह में दबी पान की गिलौरियों को मुँह उठाकर सँभालते हुए कहा।

'आप लोग कौन?"

"अरे भाई मैं, जनार्दन, और ये है, निर्मल बाबू!"

लल्लन बाबू फिर उनकी ओर देखकर जैसे उन्हें पहचानने की कोशिश करते रहे। एकाएक ठठाकर हँस पड़े—"अच्छा आप, बड़े बाबू! साथ में

निर्मल बाबू भी हैं। क्या यह देखने आये हैं कि मैं सचमुच बीमार हूँ या नहीं···! कहीं मैं बहाना बना कर बीमारी की छुट्टी तो नहीं ले रहा हूँ···! डाक्टर साथ ले आये है न··?"

बड़े बाबू और निर्मल बाबू ने एक दूसरे की ओर देखा।

लल्लन बाबू जबान के इतने तेज कभी नहीं रहे। रहे भी हों तो बड़े बाबू के सामने नहीं।

बड़े बाबू पर इस कटाक्ष से निर्मल बाबू का का हल्का-सा मनोरंजन हुआ पर होंठों पर फूटती हँसी भीतर-ही-भीतर पी गये। बड़े बाबू ने मन में कुछ भी महसूस किया हो, ऊपर से निर्विकार बने रहे। पीठ पीछे और कभी-कभी मुँह पर सुनी गयी निन्दाओं के प्रति उदासीन बना रहना स्वभाव हो गया है। दफ्तर के प्रशासन के प्रति अपने व्यक्तित्व और अहं को समर्पित कर लोगों की कटूक्तियों के प्रति अपनी खाल को मजबूत बना चुके हैं। फिर लल्लन बाबू का तो दिमाग भी ठीक नहीं था, उन्हें आसानी से माफ कर सकते थे।

उनकी बात पर कहा, "नहीं, नहीं! कैसी बात करते हैं? क्या हम आपका विश्वास नहीं करते। आपकी कोई छुट्टी नामंजूर की है कभी···। सिर्फ आपसे मिलने आये हैं।"

अब तक दरवाजे की ओट से नन्दो बुआ और राजेन की माँ बाहर का दृश्य देख रही थीं। नन्दो बुआ की नजर में लल्लन बाबू की इज्जत सहसा बहुत बढ़ गयी थी। दरिद्र के घर के आगे यह राजरथ! उसका किरायेदार कोई ऐसा-वैसा आदमी नहीं। इस मुहल्ले में और किसी के घर के आगे कभी गाड़ी खड़ी हुई है!

पर लल्लन बाबू के बहकने से वह घबरा रही थी। कहीं इससे ये लोग नाराज होकर चले न जायें। राजेन की माँ से उसे यह भी पता चल गया कि लल्लन बाबू के दफ्तर के ही हैं, एक उनके साथी है और दूसरे अफसर! वह लल्लन बाबू को बहकने का और मौका नहीं देना चाहती थी। बाहर निकलकर कहने लगी, "अरे भैया, घर आये मेहमान को बैठाओ तो, कुछ पान-पत्ती तो कराओ!"

"अरे नहीं, नहीं, हम लोग अपने घर आये है, कोई मेहमान नहीं हैं,

कोई तकलीफ करने की जरूरत नहीं।" बड़े बाबू ने कहा।

"नहीं, यह कैसे हो सकता है," नन्दो बुआ ने कहा, और लल्लन बाबू को हाथ पकड़कर उठाते हुए उनकी सफाई भी देने लगी, "इधर इनकी तबीयत खराब रहने लगी है, आप लोग कोई ख्याल न करें।"

लल्लन बाबू पर भी जैसे इनका असर पड़ा और वे कुछ होश की बातें करने लगे।

"हाँ, हाँ, आइये बैठिये, बाहर क्यों खड़े हैं ?"

राजेन की माँ ने इस बीच जल्दी-जल्दी कमरे को बुहार दिया था और चारपाई पर एक धुली चादर बिछा दी थी। घर में मेज-कुर्सियाँ नहीं थी। बड़े बाबू और निर्मल बाबू को चारपाई पर बैठाकर लल्लन बाबू एक मचिया पर बैठ गये। कुछ देर में नन्दो बुआ ही रघुनाथ साव की दूकान तक जाकर पान और कुछ मिठाइयाँ ले आयी। राजेन जिस तिपाई पर बैठ कर पढता था, वही सामने रखकर पान और मिठाइयों की तश्त-रियाँ सजा दी गयी।

"अरे यह तकलीफ बेकार ही की।" बड़े बाबू ने कहा।

"नही, नही, तकलीफ क्या ? लल्लन बाबू ने कहा, "आप पहली बार आये है मेरे घर ! मेरा भी तो कुछ फर्ज है···।"

बड़े बाबू ने बर्फी का एक टुकडा तोड़ कर मुँह में रखा। फिर निर्मल बाबू ने भी। उन्होंने एक पूरा लड्डू मुँह में रखने के बाद पानी का ग्लास उठा लिया। उसके बाद पान का बीड़ा मुह में रख कर जेब मे अपनी 'स्पेशल' तम्बाकू की डिबिया निकाली।

"मुझे भी दीजियेगा निर्मल बाबू !" बड़े बाबू ने भी पानी पीने के बाद पान उठाते हुए कहा, "आपकी तम्बाकू का जायका बड़ा मजेदार है···।"

"हाँ, हाँ, जरूर ! अफसोस है कि लल्लन बाबू नही खाते यह सब ! सभी रस इस एक ही चीज में मिल जाते हैं। ऐसा संजम भी किस काम का।"

बड़े बाबू और लल्लन बाबू दोनों के होठों पर हल्की-सी मुस्कान फैल गयी।

कुछ देर चुभलाने के बाद पान अच्छी तरह जम गया तब बड़े बाबू

ने मतलब की बात शुरू की।

"लल्लन बाबू, हम एक खास काम से आये हैं आपके पास···।"

लल्लन बाबू निर्विकार भाव से देखते रहे बड़े बाबू की ओर। न उत्सुकता थी चेहरे पर, न जिज्ञासा। फिर भी कहा, "बतायें !"

"आप पर साहब बहुत मेहरबान हैं।"

इस बार लल्लन बाबू के चेहरे पर हल्की-सी प्रतिक्रिया हुई। भीतर ही भीतर वे इस कृपा-भार से जैसे विगलित होते जा रहे थे।

"आप लोगों की दया है," उन्होंने कहा, "मैं किस काबिल हूँ !"

"आपकी काबिलीयत को कौन नहीं मानेगा।···इसीलिए तो साहब मेहरबान हैं, आप पर !" बड़े बाबू ने कहा।

लल्लन बाबू जैसे कृपा-भार से दबते जा रहे थे। कहा, "बतायें, क्या आज्ञा है ?"

"बताता हूँ, अधीर न हों आप। आपके लिए खुशी की ही बात है।"

बड़े बाबू फिर कुछ देर तक मुँह में पान घुलाते रहे। जैसे सोच रहे हों कि कैसे बात शुरू करें। तभी निर्मल बाबू ने पूछा, "राजेन नहीं दिखाई दे रहा है कहीं।"

"इम्तहान की तैयारी के लिए छुट्टियाँ हो गयी हैं, किसी दोस्त के यहाँ पढ़ने गया है।"

"क्या उम्मीद है, पास तो हो ही जायेगा !"

"कहता तो है कि अव्वल दर्जा आयेगा, आगे कह नहीं सकता कि क्या होगा···।"

"हाँ, तेज तो है लड़का !" बड़े बाबू ने कहा, मैंने साहब से सब बताया है उसके बारे में कि हाई स्कूल में फर्स्ट डिवीजन मिली थी, इन्टर मे भी पीछे नहीं रहेगा।"

लल्लन बाबू पर उपकार का एक बोझ जैसे और बढ़ गया।

"लेकिन बहुत बुरा जमाना है," निर्मल बाबू ने कहा, "आजकल पढ-लिख कर भी जल्दी काम नहीं मिलता। अच्छे डिवीजन के बाद भी पैरवी-कोशिश चलती है, रकम की लेन-देन, भाई-भतीजावाद चलता है, हमीं लोगों का जमाना अच्छा था, इन्ट्रेंस पास नहीं हुए कि नौकरी मिल

ाती थी।

"इसमे क्या शक है।" बड़े बाबू ने कहा, बड़े-बड़े बी० ए०, एम० ए० बेकार घूमते हैं। इसीलिए तो कहता हूँ, कि हम लल्लन बाबू के लिए खुशखबरी ही लाये है···।"

लल्लन बाबू कुछ समझ नहीं पा रहे थे। साहब की मेहरबानी, खुशखबरी ! ये लोग कैसी पहेलियाँ बुझा रहे हैं !

अब निर्मल बाबू समझाने के स्वर में बोले, "लल्लन बाबू, असल मे बात ये है कि आपको जरा लम्बी छुट्टी की जरूरत है। भई ये तो मनुष्य की काया है, किसी का क्या ठिकाना। अभी बोल-बतिया रहे हैं और अभी-भगवान न करे कुछ भी हो सकता है। तकलीफ-आराम भी इसी काया को भोगनी पड़ती है। आप भाग्यवान है जो ज्यादा कुछ नहीं बिगड़ा। राजेन के सिर पर आपका साया बना रहेगा। लेकिन आपको छुट्टी की जरूरत है। हो सकता है, साल-छः महीना भी लग जाय···।"

लल्लन बाबू अनमने भाव से सुनते रहे। इस भूमिका का अर्थ वे कुछ-कुछ समझने लगे थे। बोले, "तो सीधे क्यों नहीं कहते कि मुझे नौकरी से अलग करना चाहते है आप सब लोग···!"

"न-न ! कैसी बात करते है आप," बड़े बाबू ने कहा, "भाई वैसे तो कम्पनी है, उसके आगे हमारी-आपकी क्या बिसात ! जब चाहे हमको, आपको, किसी को भी अलग कर सकती है। कह सकती है कि आपकी तन्दुरुस्ती काम करने लायक नहीं है इसलिए आपको हटा रही है··· पर कहा न कि रेजिडेन्ट इंजीनियर साहब आप पर मेहरबान हैं। मैंने और निर्मल बाबू ने उन्हे समझाया कि आपको हटा देने पर घर की गाड़ी कैसे चलेगी ? और साहब की समझ में बात आ गयी है···।"

"क्या ?"

"वैसे तो सुझाव निर्मल बाबू का है पर मैं पूरी तरह उसकी ताईद करता हूँ। साहब आपको साल-दो साल तक की लम्बी छुट्टी देने को तैयार हैं, पर किसी भी कानून के मुताबिक यह नहीं दी जा सकती, आखिर उनके भी तो हाथ बँधे हैं। इसलिए हमारा और उनका भी सुझाव है कि फिलहाल आप रिटायर हो जायें।···पर बात यहीं खत्म नही

होती। आखिर आपकी जगह किसी और को लेना ही पड़ेगा। वह जग, साहब आपकी ही तनखाह पर राजेन को देने के लिए तैयार हो गये हैं। मैने और निर्मल जी ने बता दिया है कि वह कितना तेज और समझदार लडका है···अरे किसी गैर की देखरेख में रहेगा क्या, जैसे आपका लडका वैसे मेरा, मै हफ्ते-पन्द्रह दिन में सब सिखाकर उसे पक्का कर दूंगा···। ···बोलिए, क्या कहते है! है न खुशखबरी अरे भाई चार-छः साल मे तो रिटायर होना ही है, तो अभी से ही क्या बुरा है आपकी आँखों के सामने लडका अपने हाथ-पैर का हो जाय और आप आराम से घर सभाले। इससे अच्छा और क्या हो सकता है।"

लल्लन बाबू कुछ देर तक बिना पल झपकाये बड़े बाबू और निर्मल बाबू की ओर देखते रहे। राजेन के बारे में क्या-क्या आकाक्षाएँ सचित की थी, पर क्या वे इतने हीन, इतने नगण्य है कि बड़े बाबू और निर्मल बाबू उसके भविष्य के नियता बनेंगे? और किसी बात की चेतना रहे न रहे, राजेन के भविष्य के प्रति सदा सचेत रहे है। किसी भी हालत मे उसे आँखो से ओझल नहीं होने देते। इन लोगों को उस पर जबरन विराम नहीं लगाने दे सकते। नही, वे नही मानेंगे यह।

पर यह चीत्कार जितनी तीव्रता से मन में उभरा उतनी ही तेजी से व्यक्त नही कर पाये। इसे न मानने के विकल्प का भय जैसे भीतर से कमजोर बना गया। फिर ये लोग अपनी समझ से उनके भले की ही बात कर रहे थे। यह और बात थी कि इस भलाई में उनका कितना बड़ा अहित हो रहा था, पर क्या इस वक्त ऐसी बात जबान पर ला सकते? सिर्फ क्षीण-सा प्रतिवाद कर पाये।

"मैं चाहता था पढ़-लिखकर किसी ढंग के, अच्छे ओहदे पर लग सके···।"

"यह कौन नही चाहता," निर्मल बाबू ने तपाक से कहा, "लेकिन चाहने से ही क्या सब हो सकता है?···फिर कुछ अपना समय भी तो देखना चाहिए···।"

"इसमें क्या शक है," बड़े बाबू ने उनका समर्थन किया, "फिर बी० ए०, एम० ए० करके ही कही ठीक-ठिकाने लग जायेगा इसका क्या

ठिकाना, अभी इस जगह के लिए अखबार में 'वांटेड' निकले तो देखिये. बडी-बड़ी डिगरियों वालो की कितनी अर्जियाँ आती है।···आपकी किस्मत अच्छी है, बैठे-बिठाये लडके को ढाई सौ की नौकरी. फिर यह न समझें कि हम आप पर कोई मेहरबानी कर रहे हैं. लडका काबिल है, उसकी मदद करना हमारा फर्ज है। देखियेगा यहीं कितनी तरक्की कर लेगा···अभी उमर ही क्या है।"

आखिर बात लल्लन बाबू को रुची। धीमे स्वर में कहा, "ठीक है, सोचूंगा—आपकी बात पर, लेकिन इधर उसका इम्तहान भी तो है···।"

"हमें पता है," बड़े बाबू ने कहा. "तब तक के लिए साहब आपकी छुट्टी मंजूर कर लेंगे, उसकी बहाली इम्तहान के बाद ही करेंगे।"

वे लोग थोड़ी देर में चले गये। किसी अज्ञात, असह्य दुख के आघात से मानो संज्ञाशून्य होकर लल्लन बाबू बहुत देर तक बैठे रहे। उन्हे किसी चीज का ध्यान नही रह गया।

कब साँझ घिर आयी। राजेन कब लौटा, कब खा-पीकर सो गया कुछ पता नही चला। उसकी पढाई कैसी चल रही है, आज उन्होंने यह भी नही पूछा!

बारह

नही, नही। यह सब कुछ भी सही नहीं था। दुर्घटनाएँ हमेशा दूसरो के साथ होती हैं। उनका संसार इस तरह एक धक्के में नही उजड सकता। उनकी जिन्दगी में ऐसा आकस्मिक भूचाल नही आ सकता। न वे कभी बीमार पड़े और न कभी उनके यहाँ बड़े बाबू या निर्मल बाबू किसी तरह के प्रस्ताव के साथ आये। सब झूठ। रात मे देखा शायद एक डरावना सपना। और कुछ भी नहीं। जल्द ही वे अपने दफ्तर पहुँच जायेंगे, कई जगह दीमक खायी, उखड़ी पालिश वाली, अपनी मेज-कुर्सी पर बैठकर काले जिल्दों वाले अपने मोटे-मोटे रजिस्टरों में खो जायेंगे और फिर

सब कुछ सामान्य गति पर आ जायेगा राजन की पढ़ाई चलती रहेगी और सब कुछ उसी तरह होता जायेगा जैसे पहले चलता रहा है।

लल्लन बाबू को कुछ ठीक याद नहीं कि वे रात को सो पाए या नहीं। लेकिन सुकवा उगने के साथ पौ फटते ही बिस्तर पर पड़े नहीं रह सके। वे उठ बैठे। उठ ही नहीं बैठे, उनका यह विश्वास भी पक्का हो गया कि उन्हें कुछ नहीं हुआ है, पर अपने को ही विश्वास दिलाने से क्या होता है, दूसरों को भी यकीन दिलाना है कि सब कुछ यथावत् कर सकते है, करते रह सकते हैं। उठ कर बिस्तर को सिरहाने की तरफ लपेट दिया और झाड़ू उठा कर आँगन बुहारने लगे।

ओह! किसी वजह से दो-चार दिन नहीं लगा पाये झाड़ू तो देखो कैसा कूड़ा जमा हो गया है। हुँह, सब निकम्मे हैं। खासकर यह नन्दो बुआ। उसी के घर का आँगन है, और वह भी करीब-करीब इसी वक्त उठ जाती है, लेकिन चारपाई के नीचे पाँव भी नहीं धरती। अपने ओसारे मे टाट के पर्दों के पीछे चारपाई पर ही बैठी मरियल, बेसुरे अलाप में तीस साल पुराने भजन गाया करती है : और 'सित्ता···राम···राधे साम' की रट लगाती अपने तोते को पढ़ाया करती है। कैसा अटपटा लगता है, ठीक से कहना भी नहीं आता। पर आज अच्छा ही है कि न उठे। आज उसे भी दिखा देंगे, सारी दुनिया को दिखा देंगे कि उन्हें कुछ भी नहीं हुआ। और वे द्विगुणित वेग से आँगन की सफाई करने लगे, जहाँ-जहाँ काई और मिट्टी जमा थी उसे खुरच-खुरच कर साफ करने लगे।

नन्दो बुआ का भजन बीच में रुक गया···। सामने रहने वाले भगेलू मिस्त्री ने अपने घर के पास कुएँ मे झपाक से बाल्टी डाल दी थी। वह इसी तरह सुबह करता है···। या तो लोहे की गड़ारी पर खूब तेजी से रस्सी ढीलेगा, या फिर रस्सी का आखिरी सिरा पकड़ कर रस्सी को गड़ारी पर रखे बिना बाल्टी सहित सारी रस्सी एक साथ कुएँ में डाल देगा···। कुएँ में बाल्टी किसी बमगोले जैसी आवाज के साथ पानी से टकराती है। कभी-कभी पेड़ों पर बसेरा लेने वाली चिड़ियाँ भी घबरा कर पंख फड़फड़ाने लगती हैं···।

नन्दो बुआ का भजन रुकने का शायद यही कारण था। पर नहीं, यह

तो रोज ही होता है, और उसका भजन चलता रहता है। कुछ और ही बात होगी…।

हाँ, कुछ और ही बात थी। वह चारपाई से उठ कर बाहर आँगन के एक कोने में आकर खड़ी हो गयी और भोर के हल्के अँधेरे में अपनी कमजोर आँखों से मानो लल्लन बाबू को पहचानने की कोशिश करने लगी। आज अचानक इतने दिनों बाद वे फिर झाड़ू क्यों लगा रहे थे। तबीयत खराब होने से उन्होंने यह सब बन्द कर रखा था। दोपहर को कभी वह, और कभी राजेन की माँ यह किया करतीं। आज क्या तबीयत ठीक हो गयी…हाँ, हाँ, राम करे, ठीक ही हो जाये, न होने से कच्ची गिरस्ती का बेड़ा कैसे पार लगेगा।

"कौन हो! लल्लन भैया हो क्या?"

"हूँ…!" अविराम गति से झाड़ू चलाने के बीच उन्होंने कहा, "देखो, कैसा कूड़ा जमा हो गया है…।"

"अभी कल ही तो मैंने झाड़ू लगायी है,…लेकिन तुम यह क्यों करने लगे। क्या तबीयत ठीक है अब? मगर मैं कहती हूँ, अभी कुछ दिन और आराम करो। इस भोर में ठिठुरोगे तो नुकसान होगा…।"

लल्लन बाबू कुछ नहीं बोले।

कुछ देर तक नन्दो बुआ भी चुप खड़ी रहीं। फिर अपनी आवाज को कुछ तेज बनाते हुए कहा, "अरे मैं कहती हूँ तुम क्यों यह सब कर रहे हो? तबीयत ठीक हो जाय तो करना…और नहीं बहू लगा देगी…तुम क्यों करो इस हालत में…?"

किसी और वक्त शायद यह सहानुभूति अच्छी लगती। पर आज वे किसी की हमदर्दी स्वीकार नहीं कर सकते, न दफ्तर के साहब और बड़े बाबू की और न इस नन्दो बुआ की। हमदर्दी कमजोर बना जाती है। वे जरा भी कमजोर नहीं हैं, न कमजोरी आने देना चाहते हैं। जरा भी कमजोरी आते ही सब कुछ बिखर जायेगा।

वे आधा आँगन बुहार चुके थे। आँगन था ही कितना बड़ा—बीस-बाईस फुट लम्बा और करीब उतना ही चौड़ा। किसी जुग-जमाने में जड़ी हुई पत्थर की पटियों में कितनी ही उखड़ चुकी थीं और जो थीं, इतनी

ढीली-ढाली कि मानो झाड़ू के धक्के से भी हिल जाती, उनकी दरारो मे जमा कूड़ा निकालने में जैसे झाड़ू टूटी जा रही थी। नन्दो बुआ की बात का जवाब नही देना चाहते थे, लेकिन यही मौका था उसे, और उसे ही नही, सबको यह बता देने का कि उन्हे कुछ नही हुआ। और इसके साथ ही दिमाग पर लगा आत्मविश्वास का अंकुश कुछ ढीला पड गया। नन्दो बुआ की आखिरी बात पर तिनक कर कहा, "तुम लोग क्या लगाओगी, एक-एक दरार मे सेरो कूड़ा भरा है, कोई पक्की सीमेंट की फरश नही है जो फूल बुहारने से कूड़ा निकल जायेगा···।"

नन्दो बुआ भीतर-ही-भीतर जल उठी। कुछ भी हो, चाहे जैसा टूटा-फूटा हो, उसका यह घर है। कोई और मौका होता तो तुर्की-बतुर्की जवाब दे देती कि जहाँ पक्की फरश हो वहाँ ले लो आठ रुपल्ली मे मकान। पर मुँह तक आयी बात भीतर ही भीतर पी गयी—दिमाग बहका हुआ है क्या ठिकाना, ऐसी-वैसी बात से बहक जाये। अपने स्वर से कटुता का हर चिह्न दबाने की कोशिश करती हुई बोली—

"अब हमारे हाथ में इतना दम कहाँ रहा·· मैं तो इसलिए कह रही थी कि बड़ी ठंड है, पूस उतर रही है, मगर जाड़ा जाने का नाम ही नही लेता···देखो कैसी हुहुआ रही हूँ···।"

"तुम्हें तो जाड़ा लगेगा ही···खाट छोड़ोगी नही तो जाड़ा कैसे जायेगा।···मुझे तो पसीना आ रहा है·· ।" लल्लन बाबू ने कहा। नन्दो बुआ मकान मालकिन है तो क्या हुआ ? उस जाहिल, गँवार औरत का उनसे क्या मुकाबला···। बहुत दिन तक बहुत लोगों का सहा है, अब चुप रहने वाले नही हैं···।

नन्दो बुआ को यह बात भी बुरी लगी। पर अब भी उसने कड़वा-हट जबान पर नही आने दी···।

"मैंने सोचा, तुम्हारी तबियत ठीक नही है, मगर ठीक हो तो करो जो मन आये···कौन मना करता है · ।"

लल्लन बाबू की झाड़ू चलते-चलते रुक गयी। उसे छोड़ कर वे जैसे लडने की मुद्रा में अपनी दोनों हथेलियाँ कूल्हो पर टिका कर खड़े हो गये और कुछ कड़ी आवाज मे कहा, "तबियत !···तबियत को क्या हुआ है

मेरी ? सब कहते हैं—मेरी तबियत खराब है,···मेरा दिमाग खराब है, मैं पागल हूँ ···। हूँ, पागल हूँ मैं···लो, देख लो आँख खोल कर···क्या मैं पागल दिखायी देता हूँ···?"

नन्दो बुआ सहम गयी। लड़ाई के डर से नहीं। मौका पड़ने पर ऐसी जली-कटी सुनाती है कि इस मामले में अच्छे-अच्छे योद्धा उससे पनाह माँगें। वह सहम गयी लल्लन बाबू की वाग्मिता से। जो कभी बोले ही न उसकी जबान तभी टपर-टपर चलती है जब सिर पर कोई और चढ़ कर बोलता है। नहीं तो ऐसा गऊ आदमी जो रँभाना भी न जाने वह कैसे दहाड़ने लगेगा—उसे जीवन का लम्बा अनुभव है। जितने सिद्ध जोगी हो सकते थे, सब पुजा दिये, जितने तरह के गंडे-तावीज थे सब पहनवा दिये, फिर अब कौन चढ़ आया ? वह सचमुच डर गयी।

ऐसे आदमी को रिस नहीं दिलानी चाहिए, इसलिए ढाढ़स बंधाने की आवाज में बोली—"नहीं, नहीं, कैसी बात करते हो··। तुम्हारे जैसे सरेख को कौन पागल कह सकता है·· ?"

लल्लन बाबू की बाछें खिल गयीं। आज तक इस बुढ़िया पर इतने खुश कभी नहीं हुए थे। जो बात औरों को नहीं समझ में आयी वह इस छोटी बुद्धि की औरत को समझ में आ गयी।

"हाँ, भला देखो तो नन्दो बुआ। लोग कहते हैं मैं पागल हो गया हूँ, तुम भी यह समझती हो कि मैं एकदम ठीक ठाक हूँ।···भला देखो तो, क्या मैं तुम्हें कहीं से पागल दिखायी देता हूँ ?"

नन्दो कुछ कहते-कहते रुक गयी। बातचीत की आहट पाकर राजेन की माँ और राजेन भी किवाड़ खोल कर बाहर आते दिखाई दिये। अब शायद ये लोग इन्हें अन्दर लिवा जायें, यही सोचकर चुप रही। पर इनमें से किसी को यह पता नहीं कि ऐसे मौकों पर क्या करें। छोटी-से-छोटी बात पर राजेन की माँ के मानो परान अधर में टँग जाते हैं, जैसे हाथ-पाँव तोड़ कर बैठ जाती है, और राजेन को भी अभी समझ ही क्या है ? हक्का-बक्का खड़ा देखता रहता है।

लल्लन बाबू ने उन पर एक उड़ती नजर डाली, फिर नन्दो बुआ से ही क्या, "हाँ, तुम बताती क्यों नहीं हो ? क्या मैं तुम्हें कहीं से पागल

नजर आता हू ?

नन्दो अपनी बुद्धि से कुछ भी नही जानती है। बस जीवन का लम्बा अनुभव—जानती है कि जो बार-बार अपने को सरेख कहे उसके दिमाग मे जरूर कुछ फेरबट होती है। पर यह भी जानती है कि ऐसे आदमी से वही कहो जो वह चाहता है।

"नही भैया ! तुम काहे पागल होने लगे ? पागल होयँगे तुम्हारे दुश्मन।...कौन कहता है, तुम पागल हो...!"

लल्लन बाबू ठठाकर हँस पड़े। सुबह का उजाला कुछ-कुछ फूटने लगा था लेकिन अँधेरा कभी कोने-कुतरों मे दुबका हुआ था, और जहाँ दिन मे भी जीवन की कोई बडी हलचल न होती हो वहाँ इस वक्त दम साध कर दुबका सन्नाटा उनकी तेज हँसी से जैसे फट गया।

"ठीक कहती हो ! उस साले बड़े बाबू से ज्यादा अक्ल तुम भी रखती हो...।" उन्होने हँसते-हँसते ही कहा।

राजेन उनकी हँसी से जैसे सहम गया। उसे याद नही कि अपने पिता को कभी हँसते देखा था। उसे उनकी कोई मुस्कराहट भी याद नही। हमेशा उनका तना रहने वाला कठोर चेहरा ही देखा था। इस वक्त हँसते हुए वे अच्छे लग रहे थे, लेकिन जैसे यह उसके पिता नही कोई और ही थे...और हँसी भी कैसी तेज, कैसी तीखी !

"हाँ तुम्हे भी उससे ज्यादा अक्ल है। उन सबने, सारे लोगों ने, मेरे खिलाफ साजिश कर रखी है।..."

अब ये सब बाते नन्दो बुआ नहीं समझती। प्रेत-बाधा से आगे उसका दिमाग नही चलता। उसे पता है कि नयी बस्ती के उस मकान से गिर पडे थे। उससे भी ऊँची जगहों से गिर कर लोग ठीक हो गये हैं। एक यही क्यो नही हुए, इतने डाक्टर-बैद की दवा के बाद। फिर वहाँ गये ही क्यों ? पुराने खेत-टीले और पेड़ उजाड़ कर मकान बन रहे है। वहाँ वास करने वाले बरम-पित्तर इधर-उधर विचरते है, न जाने कौन भरमा कर वहाँ ले गया और फिर ऊपर से गिरा दिया। और अभी तक मन भरमा रहा है। कैसी बाते कर रहे हैं, और यह सब नही, तो फिर भाग का फेर हैं...।

नहीं समझी नन्दो बुआ ? ललन बाबू ने भौचक से दिखते सभी लोगों पर नजर डालते हुए कहा, "हाँ, तुम लोग नहीं समझोगे !" उन्होंने अपनी बायीं हथेली पर दायें हाथ की मुट्ठी मारी जैसे कोई बहुत गूढ़ बात समझा रहे हों···।" सचमुच यह उसी साले की साजिश है, और मैं तो कहता हूँ वह भी इसमें शामिल है···क्या नाम है उसका। वह गंजी चाँद वाला नेता जो यहाँ कोठी बनवा रहा है···उसी ने तो यह सब किया है. और उसके साथ ये ससुरे दफ्तर वाले मिल गये हैं···वे सब चाहते हैं कि मैं इस घर से न निकल पाऊँ···राजेन को कोई बड़ा, ऊँचा ओहदा न मिल पाये···। वे सब यही चाहते हैं···।"

अभी वे और न जाने क्या-क्या कहते. पर उनकी आवाज इतनी तेज थी कि पास-पड़ोस तक सुनी जा सकती थी। नन्दो बुआ को डर लगा कि कहीं आवाज उस नेता जी तक न पहुँच जाये और वे कुछ कर न बैठें। बैठे-बिठाये एक और आफत न खड़ी हो जाये। बड़े लोग हैं, कुछ भी कर सकते हैं, इसलिए उसने धीरे से उनका हाथ पकड़ लिया और उन्हें घर के अन्दर ले जाने की कोशिश करती कहने लगी, "हाँ-हाँ ! भैया होगा। मुदा चलो अब घर में चलो।"

ललन बाबू ने हाथ झटक कर छुड़ा लिया और चीख कर बोले "नहीं, नहीं, बहुत दिनों तक घर में बैठा रहा, आज मैं दफ्तर जाऊँगा··· उस साले बड़े बाबू को बता दूँगा कि उसकी साजिश नहीं चल सकती, वे राजेन की जिन्दगी के साथ खिलवाड़ नहीं कर सकते···मैं सबको बता दूँगा, उस नेता को भी बता दूँगा. उसी ने मुझे गिराया था न···।"

एक क्षण को सन्नाटा छा गया। नन्दो बुआ, राजेन की माँ और राजेन सभी जैसे किसी अज्ञात भय से सकते में आ गये।

"बोलो, तुम लोग बोलते क्यों नहीं ?···क्या तुम भी उनकी साजिश में शरीक हो···? तुम लोग भी यही चाहते हो जो वे चाहते हैं ? कि राजेन आगे न बढ़ पाये और मैं बुढ़ापे के पहले ही दम तोड़ कर बैठ जाऊँ ! बोलो, क्या यही चाहते हो ?"

—भेजा पूरी तरह गरम हो उठा है, नन्दो बुआ के दिमाग में बात आयी। भंग, धतूरा या दारू पीकर ऐसा होता है—सामने की गली में

रहने वाला नत्थू चूड़िहार भी ऐसा करता था और इसी मे मरा···हे भगवान क्या होने वाला है।···रच्छा करो हरी···। उसने एक बार फिर लल्लन बाबू का हाथ पकड़ लिया, दूसरा हाथ राजेन की माँ के बेजान से हाथों में थमा दिया और उन्हें घर के अन्दर घसीटने का प्रयत्न करने लगी।

"हाँ-हाँ, पहले घर में तो चलो···।"

लल्लन बाबू फिर हाथ झटकने लगे। राजेन की माँ से एक ही बार मे हाथ छुडा लिया, लेकिन नन्दो की पकड़ इस बार मजबूत थी, उससे काफी जोर लगाने पर भी हाथ नही छुडा पा रहे थे पर वह भी अकेले उन्हें घर की तरफ खीच नही पा रही थी। राजेन की माँ ने फिर उनका हाथ पकडने की कोशिश की।

राजेन को यह सब बहुत भोंडा लग रहा था। वह उस छोटे से आँगन से दिखायी देने वाले आसमान के टुकड़े की ओर देखने लगा जहाँ सुबह का पीलापन धीरे-धीरे फैल रहा था।

लल्लन बाबू फिर चिल्ला रहे थे, "छोड़ दो, छोड़ दो मुझे—मैं अभी जाकर सबको बताता हूँ···।"

तभी नन्दो बुआ को जैसे युक्ति सूझ गयी।

"हाँ, हाँ चले जाना," उसने कहा, "पर क्या दफ्तर-कचहरी ऐसे ही जाओगे, यह लुंगी पहन कर···न जूता··· न टोपी, न कमीज-पजामा, ऐसे ही जाओगे, नंगे पैर···!"

और इस बात ने काम कर दिखाया। वे तुरन्त किसी जिद्दी बच्चे की तरह सीधे हो गये और चुपचाप घर के भीतर चले गये। राजेन ने उन्हे किसी तरह बिस्तर पर लिटा कर सोने वाली दवा दे दी, और उसके बाद वे फिर सब-कुछ भूल गये।

स्कूल-कालेजों मे हड़ताल के कारण हाई स्कूल और इण्टर के इम्तहान एक महीने के लिए टल गये थे। राजेन को पढ़ने के लिए कुछ और समय मिल गया। इधर पढाई का काफी नुकसान हुआ था। लेकिन पढ़ना इसके बावजूद हो नही पा रहा था।

मुख्य कारण था पिता की यह बीमारी ही—माँ के लिए कुछ करना सम्भव नहीं था, उनकी अर्जियाँ ले जाने से लेकर दवा-दारू और घर के दूसरे जरूरी सामान लाने तक सारे काम खुद करने पड़ते। अब पिछले महीने से बीमारी के नाम पर दफ्तर से प्राविडेंट फंड का जो कर्ज मिला था उसकी किस्तों के रूप में भी बीस रुपया कटने लगा था। ढाई सौ में से भी बीस कम, और इस बार तनखवाह लेने के लिए गया था तो किसी ने यह इशारा भी किया कि छुट्टी और बढ़ायी जायेगी तो यह तनखवाह भी आधी मिला करेगी···। सिर्फ एक सौ पच्चीस रुपये और उसमें से भी बीस कट जायेंगे। अब तक वह बहुत कुछ सीख चुका था, बीस-एक साल की उमर में ही जैसे एक पूरी जिन्दगी के उतार-चढ़ावों से गुजर चुका था। इस उम्र में ही वह अच्छी तरह जान चुका था कि हर कदम पर अँधेरा कैसा होता है।

बीच-बीच में राय साहब और नन्दो बुआ किसी आड़े वक्त पर मदद करते हैं। उसने उनकी हमदर्दी को पहचाना है—खास कर नन्दो बुआ जो हर वक्त उठते-बैठते खोज-खबर रखती है। दवा आ गयी या नहीं, राजेन ने खाना खा लिया या नहीं, और कभी बहुत जतन से अपनी पुरानी सन्दूकची में गठियाकर रखे गये दस-पाँच रुपयों में से कुछ उधार भी दे देती है। पर उनकी इस हमदर्दी के बावजूद, उनकी सीमाएँ भी जानता है और यह भी समझता है कि सब कुछ अकेले ही झेलना है। और यह अहसास अक्सर भीतर ही भीतर थरथरा जाता!

कुछ समय निकाल कर पढ़ने के लिए बैठते ही जैसे एकबारगी सारी चिन्ताएँ घेर लेतीं। कभी अनायास रुलाई-सी छूटने लगती और कभी वह भयंकर विचार उसे डरा देता कि अगर बाबू न रहे तो क्या होगा! वह जबरन इस मनहूस बात को दिमाग से निकालने की कोशिश करता, पर अँधेरे में छिपे चोर की तरह यह अशुभ आशंका जैसे पूरी तरह मन से कभी न हटती। और जब यह सब न होता, तो किसी बात पर बाबू का बड़बड़ाना या चीखना-चिल्लाना शुरू हो जाता। और इसके साथ ही माँ का करुण मौन-चीत्कार···। जबान से चाहे कुछ न कहती, उसके माथे पर चिन्ता की हर सिलवट, असमय ही ढलती उम्र की हर झुर्री अब जैसे एकबारगी आर्तनाद कर उठती। और उसे अपनी किताबें परे रखकर उन्हें

सभालन मे लगना पडता ।

लेकिन इसके साथ ही कुछ और भी हुआ था।

एक दिन दवा के लिए बाजार जाते समय उसने मंजु को देखा था। वह रिक्शे पर जा रही थी और उसके साथ खादी की साड़ी पहने अधेड़ उम्र की एक और महिला थी। उसने उन्हे कहीं देखा था, पर ठीक से पहचान नहीं सका। जब से जगदीश के साथ मंजु के कही जाने की खबर सुनी थी उसके बाद मे उसे पहली बार देखा था। कुछ दिन पहले बाबू गोविन्द-नारायण के अभिनन्दन के सिलसिले मे अखबार मे उसका नाम पढ़ कर यह पता चल गया था कि वह लौट आयी है, लेकिन देखा पहली बार ही था। एक बार तो इस अचानक, आशातीत मुलाकात से मन मे एक खुशी भरी हूक-सी उठी, फिर तुरन्त दब गयी। उसके साथ यह महिला न होती तो शायद उसे रोकता और उससे बहुत कुछ पूछता कि कहाँ रही, किस तरह रही, जगदीश क्या कर रहा है, आदि-आदि। लेकिन एक तो मंजु ने उसे देखा नही, दूसरे साथ की यह महिला, उसने अपनी उत्कंठा को भीतर ही भीतर दबा दिया और रिक्शे को धीरे-धीरे जाते देखता रहा जो कुछ दूर आगे एक मोड़ घूम कर नजरो से ओझल हो गया।

मंजु का रूप कुछ और निखर आया था। माथे पर विवाहित औरतो जैसी गोल लाल बिन्दी से चेहरे की दमक और बढ़ गयी थी, और अंगो मे पहले के मुकाबले कुछ अधिक मासलता और सुडौलपन आ गया था।

लेकिन नही,···वह जैसे अपने आप को ही धिक्कारने लगा। उसे मंजु के बारे में इस तरह नही सोचना चाहिए··। उसे लेकर ऐसी बाते सोची ही क्यो···? फिर अब मंजु का समाज भी उससे कितना दूर है। पहले कुछ भी रही हो, कितनी ही बार उसके साथ अकेले कुछ क्षणो का सुख पाया हो, वह अब वही नहीं जो पहले थी। एक मंत्री के बेटे की पत्नी है मंत्री की पुत्र-वधू जो शायद अब सामने आकर भी आज की तरह ही उससे एकदम बेखबर, उसके अस्तित्व से पूरी तरह अनभिज्ञ ही रहेगी···। वह मंजु को जबरन अपने दिमाग से निकालने की कोशिश करने लगा··।

ज्यादा प्रयत्न नहीं करना पडा। यथार्थ का काँटा किसी भी तरह के सम्मोहन को बहुत जल्द दूर कर देता है। और यथार्थ यह था कि दवा के

बावजूद बाबू नींद में रह-रह कर चौंक रहे थे, और जब भी ऐसा होता, माँ चिन्ताकुल होकर अपनी चारपाई पर उठकर बैठ जाती और अपलक उनकी ओर देखती रहती या फिर किसी अनिष्ट की आशंका से मानो भयभीत होकर राजेन को आवाज देने लगती।

माँ फिर उसे आवाज दे रही थी।

तेरह

रामलखन जी भारी उलझन में पड़ गये हैं।

सब कुछ जैसे उलट-पलट गया है। कोई प्रलय नहीं आयी है, लेकिन जो हुआ है, वह किसी बड़े भूचाल से कम भी नहीं है देखते-देखते सब कुछ कैसा अनिश्चित कैसा अस्थिर रहने लगा है। पहले कितना आसान, सीधा-सादा था सब कुछ। गाँधी-जवाहर के नाम का सिक्का राजनीति के बाजार में धूम से चलता था। पर अब कुछ भी इतना आसान नहीं रहा। अब यही काफी न था। देखते-देखते उसमें कैसी गिरावट कैसा अवमूल्यन आ गया। पैरों के नीचे की जमीन कैसी डाँवाडोल हो गयी है...।

रात काफी हो गयी थी। अभी थोड़ी देर पहले कुछ मुलाकातियों के साथ अपने बंगले के लान में बैठे इन्हीं बातों की चर्चा चल रही थी। अब ठंड कम हो गयी है और कुछ दिन में कुछ गर्मी भी पड़ने लगी है। अण्डी आर ऊनी जाकिट में पसीना आने लगता है, लेकिन अभी इतनी गर्मी भी नहीं है कि रात में देर तक बाहर खुले में बैठा जा सके। इसलिए मुलाकातियों के जाने के बाद अकेले रह गये तो घर में लौट कर अब सोने की तैयारी कर रहे थे। पर जो चर्चा छिड़ गयी थी उससे इस एकान्त में भी पीछा नहीं छूटा। शायद चर्चा न छिड़ती तो भी ये बातें दिमाग में आये बिना न रहतीं। ऐसा कुछ उलट-पलट तो हो ही गया था और वे नहीं सोचेंगे तो कौन सोचेगा? देश-समाज की चिन्ता से अगर कोई जनसेवक नहीं तो

कौन व्याकुल होता ?

उस दिन मुख्यमंत्री श्री सदानन्द आये थे तो कैसी रज-गज हो गयी थी। कैसी धूम-धाम थी। बाबू जी—बाबू गोविन्द नारायण तो समारोह के नायक थे···परन्तु दूल्हा बादशाह···जिसे स्वयं कुछ करने नहीं दिया जाता। सब कुछ तो किया था उन्होंने···रामलखन जी ने ही। स्वागत समिति के अध्यक्ष के नाते बाबू गोविन्द नारायण के साथ स्टेशन पर श्री सदानन्द के स्वागत के लिए गये थे और उन्होंने ही गोटों से झिलमिलाती फूलों की की माला उन्हें पहनायी थी। और तब श्री सदानन्द ने बीच में ही हाथ में माला लेकर गद्गद भाव से कैसे उन्हें गले लगा लिया था। कौन धन्य-धन्य नहीं हो जायेगा ऐसी विशाल हृदयता पर। और शाबाशी है अख-बारों के उन फोटोग्राफरों को जो ऐसे अवसरों पर कभी नहीं चूकते।

लेकिन यह कब की बातें है ? कल की या कभी बहुत पहले की ? जिस दिन श्री सदानन्द आये थे, उस दिन, और उसके कुछ दिन बाद तक भी सब ठीक-ठाक था। पर उसके बाद से ही कैसा विग्रह शुरू हो गया। दल बदल, बहुमत टूटने और नेता-पद की उठा-पटक में बड़े-बड़े उलट-फेर के लगातार एक के बाद एक कैसे विस्फोट। एकाएक कैसा बिखराव आ गया, संस्था के वट-वृक्ष में कैसी दरारें पड़ गयी और फिर एक दिन यही संस्था, कैसी बिखर गयी।

क्यों ऐसा हो गया ? राम लखन जी कुछ समझ नहीं पा रहे हैं। कल के साथी आज क्यों अलग-अलग मंचों पर जा विराजे, और कल के दुश्मन, राजनीति के व्यापार में एक-दूसरे के निन्दक और आलोचक अब क्यों एक-दूसरे के गले मिल गये, एक दूसरे के साझीदार बन गये ?

—उँह ! क्यों दुखी होते हो ? रामलखन जी ने अपने आपको समझाया।

अकेलेपन का एक बड़ा दोष है, यह कि कभी-कभी भीतर का आदमी प्रबल हो उठता है। उससे हर कोई साक्षात नहीं करना चाहता है और न रामलखन जी ही यह करना चाहते थे। पर अपने क्षणिक आभास में भी सच्चाई तो कान में फूंक ही गया। नहीं, उनका दुख संस्था-प्रेम का दुख नहीं था। वे न कांग्रेसी है न कम्युनिस्ट, न सोशलिस्ट न जनसंघी। वे दल-

सीमा से परे, इनसे ऊँचे है, चलते सिक्के के गाहक। दुख था तो उस फल-दार डाल के टूटने का, जिस पर अब तक पजा जमा कर बैठे रहे है।

उस दिन अभिनन्दन समारोह मे श्री सदानन्द ने कैसे आशीर्वचन कहे थे और कैसे स्नेहसिक्त शब्दो मे अपने नेता के प्रति बाबू गोविन्द नारायण ने अपना सम्मान प्रकट किया था। 'प्रदेश को गतिशील नेतृत्व देने वाले उनके गुणो' की कैसी मुक्त कंठ से सराहना की थी। मच पर कहे जाने वाले कोरे शब्द ये तब भी थे पर जैसे अभी उस दिन तक उनका इन्द्रजाल कायम था, उनकी प्रतिष्ठा थी, लोग उन पर विश्वास करते थे और उनकी बदौलत राजनीति भी चल जाती थी। पर उसके बाद ही कैसा हो गया है मूल्यह्रास! रद्दी कागज की चिन्नियों की तरह उनके अर्थ कैसे बिखर गये हैं···। उस दिन कौन कह सकता था कि ये बाते कभी इतनी बेमानी हो जायेंगी।

—प्रदेश की राजधानी लौटने के दस-एक दिन बाद ही श्री सदानन्द मुख्यमंत्री नही रह गये। दल के बहुमत ने उनके प्रति अविश्वास प्रकट किया था। उन्होंने दिल्ली की दौड़ लगायी, पर केन्द्र उनके नेतृत्व के प्रति आश्वस्त न हुआ और तब दल के छोटे से गुट के नेता बन कर तुरुप का पत्ता फेकने के अन्दाज में संगठन कॉंग्रेस में जाने की धमकी दे दी। ऐसा करके विरोधियों के समर्थन से नया मन्त्रिमडल बना सकते तो शायद यह कर भी बैठते, लेकिन जितने लोग उनके साथ जाने को तैयार थे उन्हे, और विरोध पक्ष की कुल संख्या को लेकर भी विधानसभा में बहुमत नहीं बनता था।

ऐसी हालत में श्री सदानन्द की धमकी उनका राजनीतिक काल सिद्ध हुई। दल का बहुमत पक्ष उनकी कमजोरी को भाँप गया और उनके इस्तीफे की पहले से अधिक जोरदार माँग करने लगा और फिर एक दिन दूरदर्शी टिप्पणीकारों की सारी अटकलों को झुठलाता, और सारे नाटक का पटाक्षेप करता हुआ सदानन्द मंत्रिमण्डल धराशायी हो गया।

लेकिन श्री सदानन्द गुटबाजी की राजनीति के कम धुरन्धर नहीं। जिन लोगों से सत्य-अहिंसा की दीक्षा ली थी उन्ही से नेतागीरी का यह गुरुमंत्र भी पाया था। उनके विरुद्ध अभियान का नेतृत्व किया था, उन्ही

के मंत्रिमंडल के एक वरिष्ठ सहयोगी ने। प्रदेश के ही एक केन्द्रीय नेता ने उन्हें समर्थन देकर प्रदेश की राजनीति मे भी अपनी धाक जमा ली थी। श्री सदानन्द ने एक सोशलिस्ट सदस्य से उनके मन्त्रित्वकाल के भ्रष्टाचार की फाइल विधानसभा में खुलवा दी और इस तरह उनका मुख्यमन्त्रित्व खटाई में डाल दिया। खुद कॉंग्रेस से विद्रोह कर संगठन कॉंग्रेस मे जा बैठे।

अभिनन्दन समारोह का सारा जादू उसी दिन खत्म हो गया था। गाँधी मैदान की सभा, शहर के सबसे बडे व्यापारी की ओर से सर्किट हाउस में दावत, कन्या कला-निकेतन का सांस्कृतिक कार्यक्रम, नाटक पत्रकार सम्मेलन—इन सबका इतनी मेहनत से खड़ा किया सारा इन्द्रजाल जैसे उसी दिन टूट गया था।

श्री सदानन्द ने आश्वासन दिया था—विद्रोह की वैसाखी यों ही नही टेक ली थी। उन्हें उम्मीद थी कि उनके दलबदल के समर्थन के बिना काँग्रेस का कोई नया मन्त्रिमण्डल भी बन नही पायेगा। बना भी तो टिक नही पायेगा—क्योंकि बहुमत ज्यादा नही रहेगा। उनके कुछ असन्तुष्टों को तोड़ कर उसे गिराया जा सकेगा।

लेकिन क्या करें बाबूजी—बाबू गोविन्द नारायण? दिग्गजों की टक्कर में कब तक त्रिशंकु बने रहें? रोज ध्यान से अखबार देखते है, रेडियो खबरों की हर बुलेटिन सुनते हैं—टेलीफोन पर टेलीफोन करते रहते हैं। पूरी खोज-खबर रखते हैं कि कौन किधर गया। कभी किसी के निर्णय की खबर अखबारों और रेडियो में आती, व्यक्तिगत सूत्रों से किसी-किसी के मिजाज का पता चलता।···तब खुद भी फैसला कर लेते है—श्री सदानन्द के नेतृत्व में नया मंत्रिमण्डल बना तो पद-वृद्धि निश्चित है। लेकिन न बन पाया तो···? और फैसला तोड़ देते है।

लेकिन यह स्थिति कब तक रहेगी? नगर के सारे पत्रकार किसी घोषणा का इन्तजार कर रहे हैं, लगभग रोज ही श्री सदानन्द के सन्देश आते हैं, बाबू जी पर जोर डालते हैं कि 'जल्द उनके पक्ष में घोषणा करें, इससे उनका पक्ष प्रबल होगा, उसे नैतिक बल मिलेगा। तुम्हीं लोगों के विश्वास पर यह कदम उठाया है।' जिला काँग्रेस कमेटी भी उन्हीं का

मुह जोह रही है व जिले के वरिष्ठ नेता है अध्यक्ष ब्रजविलास जी के गुट और युवक कॉंग्रेस को छोड़ कर, जिधर बाबू जी मुँह करेंगे, उधर शायद पूरी की पूरी जिला कमेटी घूम जायेगी।···फिर जल्द कोई घोषणा न करने में व्यक्तिगत बदनामी भी है। स्वार्थपरता, पदलिप्सा की बातें होने लगेंगी···सचमुच यह अनिश्चितता कब तक बनी रहेगी।

—तुम्हारी सेहत पर क्या असर पड़ता है रामलखन? तुम क्यो परेशान हो? रामलखन जी ने फिर अपने आपको समझाया। कमर तक ओढ़ी लिहाफ कन्धे तक खीच ली। पर इससे भी काम नही चलेगा! मच्छर अब तंग करने लगे है। अभी इतनी गर्मी नहीं कि पखा चलाया जा सके, पर सिर-मुँह सब ढक कर भी सोया नही जा सकता। सिर ढकते ही किसी हवागुम खोल में बन्द होने जैसा लगता है, और जहाँ बदन का कोई हिस्सा खुला नही कि फिर मच्छरों का हमला। धीरे-धीरे एक गहरी खीझ मन पर हावी होने लगी - मच्छर जैसे तुच्छ प्राणी के विरुद्ध इतनी अशक्तता!

और इसका जैसे प्रतीकात्मक अर्थ था। उस दिन मुख्यमत्री के साथ गले मिलते हुए फोटो छपी तो रातोरात रुतबा कैसा बढ़ गया था। बाबूजी का दाहिना हाथ होने के नाते जिले के सारे अफसर जानते पहले भी थे, लेकिन अब सामने पडते ही उनकी कैसी विनयशील मुद्रा हो जाती। कैसी आवभगत करते। कोई काम करने पर, किसी लाइसेंस, कोटा-परमिट के लिए सिर्फ इशारा भर कर देने पर, किसी की पैरवी करने पर कैसे कृपा-भार से लद जाते! कहा करते—'ठाकुर साहब, आपका काम भला क्यो नहीं होगा, 'ठाकुर साहब, आपने क्यों तकलीफ की, फोन कर देते या किसी से कहला देते, आखिर हम क्यो बैठे हैं', 'ठाकुर साहब, हम जन-सेवको का काम सबसे पहले करते हैं···।' सचमुच जनसेवा का बाजार इतना ऊँचा कभी नही रहा। सभी पूछने लगे, सभी याद करने लगे थे। लोहा-सीमेंट के सबसे बड़े व्यापारी झिंगन साहु जो पहले पाँच रुपया चन्दा मुश्किल से देते थे, अब कोई भी काम पड़ने पर टेलीफोन पर टेलीफोन करते, दावतें देते, संस्था के लिए जब जितना चन्दा कहो भेज देते। घी के व्यापारी छगाप्रसाद जनसंघी हैं तो क्या जनसंघ के टिकट पर कार्पोरेशन का चुनाव भी लड़ चुके हैं तो क्या, जब जाओ चन्दा दे देते, बाबू जी के अभिनन्दन

मे भी अच्छी रकम दी थी। दोगे, दोगे चन्दा छगाप्रसाद, जब तक मूँगफली का तेल घी कह कर चलाओगे, सरसों के तेल में घटिया अरंडी का तेल मिला कर बेचोगे तो हिन्दू राष्ट्र की कि नी दुहाई दो, बाबू जी के अभिनन्दन में चन्दा दोगे। और सोशलिस्ट नेता यूसुफ मुहम्मद सीताराम—खूब नाम है। कभी राष्ट्रीयता की लहर मे जब कांग्रेस मे थे तो हिन्दू-मुस्लिम ईसाई एकता के प्रतीकस्वरूप श्री सीताराम चौबे ने यह ऊट-पटाँग नाम रख लिया था। सिंहवाला या सिंह भाई भी जोड़ लेते तो सिख-पारसी भी पूरे हो जाते। जब भी यहाँ आते हैं सिधीमल ईंटवाले के यहाँ ठहरते है, क्योंकि ईंटवाले के भाई सोशलिस्ट है। खूब खातिर-तवज्जो करते है, देश-प्रदेश की राजनीति पर उनकी गर्म चर्चाएँ सुनते है, कुछ चन्दा भी थमा देते है। पर गाँधी-जवाहर की संस्था को वे भी चन्दा देने से इनकार नही कर सकते···! और भी बहुत-से लोग है—बर्तन व्यवसायी विक्रमदास, शहर ही नहीं, प्रदेश भर के कई शहरों मे बडे-बडे होटलों के मालिक बिट्ठल-बाबू, कालीन व्यापारी शफीउल्ला, साड़ियों वाले गोपीवल्लभ—इनमे से कोई राष्ट्रसेवी, दानवीर नही है। पर अब सभी मेलजोल रखते हैं, 'हे-हे' कर इस तरह चन्दा देते है, मानो इष्टदेव के यहाँ चढ़ावा चढ़ाते हों··· !

···और सबसे बडी बात यह कि नल्लो—बड़ी बेटी नलिनी—की माँ अब न बात-बात पर ताने देती हैं, न दो-दो पैसे के लिए करम ठोंकती आँसू बहाती है। उन्होंने कमरे की दूसरी ओर लगी पलंग पर सोई पत्नी की ओर देखा—अवस्था-बोझ से कमर के इर्द-गिर्द बढ़ती मांसलता मे जैसे नया कसाव आ गया है, पैरों और हथेलियों में नव-सुहागिनों जैसा महावर, और नाक-कान में जड़ाऊ काम वाले सोने की भारी लौंग और कर्णफूल। गले में तीन लड़ियों का लाकेट। चेहरे पर नये सिरे से कमनीयता जैसे खिलने लगी है। अब चाहे मुँह से न कहें, आँखों में सराहना भरी चितवन रहती है और कैसी रुच-रुच कर अपने हाथ से थाली लगाती हैं।

—पर कौन कह सकता था जनसेवा का यह सतयुग इतना अल्पजीवी होगा ?

—यह क्या किया श्री सदानन्द जी आपने ! अपनी कुर्सी और पद-

प्रतिष्ठा की लडाई मे इस तुच्छ जनसेवक की पीडा का जरा भी ध्यान क्यो नहीं रखा ? जब से मन्त्रिमण्डल गिरा है, पहले जैसी बात न रही, अमले-अहलकारों की मुद्रा अब भी विनयशील रहती है लेकिन उसके पीछे एक दबा हुआ विद्रूप भी होता । काम भी अब उतना तुर्त-फुर्त नही करते । सामने पडने से बचने की कोशिश करते है, और पड़ ही जाते है, तो कोशिश रहती है कि किसी तरह यह जल्द टल जायें या खुद किसी तरह टलने के बहाने तलाश करते हैं। अभी आने को कह कर बैठा जाते हैं, फिर देर तक नहीं आते···। हींगन साव चतुर व्यापारी हैं, चन्दा अब भी देते है, लेकिन जिला कांग्रेस के अध्यक्ष ब्रजविलास जी का भी नाम लेते है, जो सत्ताधारी कांग्रेस के साथ हैं। छगाप्रसाद कभी-कभी अब अपनी जनसंघी राजनीति समझाने की कोशिश करते है, औरों के भी रुख बदल गये है ··।

क्या इसीलिए मच्छर अब तंग करने लगे हैं ? और इसीलिए इन तुच्छ मच्छरों के आगे इतने अशक्त हो गये है ?

—बस एक बार ! श्री सदानन्द का मंत्रिमण्डल बस एक बार और बन जाये तो गिन-गिन कर सबसे पूछेंगे। पर श्री सदानन्द से क्या लेना-देना । मुख्यमन्त्री कोई भी हो—अपना ठौर तो सिर्फ बाबू जी तक है । बस, वे जिधर हों, उनका मन्त्रिमण्डल बने । पर वे किधर होंगे ? किसका मन्त्रि-मण्डल बनेगा ? पता नही कब वे निर्णय करेंगे ! सब कुछ अनिश्चित है · ।

—ओह, यह मच्छर !

उन्होंने ललक-भरी निगाह से पत्नी की ओर देखा। मानो नवयौवन का दूसरा उत्कर्ष कुछ देर तक उन्हें भरमाता रहा । शायद सोई नहीं थी, या सोई थीं तो भी पति की ललकभरी दृष्टि उनकी चेतना को उकसा गयी थी और अब वे रह-रह कर करवट बदल कर अधखुली आँखों से उन्हे देख लेती थी ।

रामलखन जी ने यह सब देखा—कुछ देर तक रससिक्त कल्पनाओ मे मुदित होते रहे । पर अब उस उम्र मे पहुँच चुके हैं जब देहसुख की जगह व्यवहार बुद्धि अधिक प्रबल हो जाती है। फिर जब मन पर बहुत-सी दूसरी बातों का बोझ हो तो लालसाएँ देर तक नही टिकती···। उन्होंने बत्ती बुझा दी और सोने की कोशिश में जबरन आँखें मूँद कर पड रहे ।

मे भी अच्छी रकम दी थी दोगे दो च दा छगाप्रसाद जब तक मगफली का तेल घी कह कर चलाओगे, सरसों के तेल मे घटिया अरंडी का तेल मिला कर बेचोगे तो हिन्दू राष्ट्र की कि नी दुहाई दो, बाबू जी के अभिनन्दन में चन्दा दोगे। और सोशलिस्ट नेता यूसुफ मुहम्मद सीताराम—खूब नाम है। कभी राष्ट्रीयता की लहर मे जब कांग्रेस में थे तो हिन्दू-मुस्लिम ईसाई एकता के प्रतीकस्वरूप श्री सीताराम चौबे ने यह ऊटपटाँग नाम रख लिया था। सिंहवाला या सिंह भाई भी जोड लेते तो सिख-पारसी भी पूरे हो जाते। जब भी यहाँ आते है सिंधीमल ईंटवाले के यहाँ ठहरते हैं, क्योंकि ईंटवाले के भाई सोशलिस्ट है। खूब खातिर-तवज्जो करते है, देश-प्रदेश की राजनीति पर उनकी गर्म चर्चाएँ सुनते हैं, कुछ चन्दा भी थमा देते है। पर गाँधी-जवाहर की सरथा को वे भी चन्दा देने से इनकार नही कर सकते ''! और भी बहुत-से लोग है—बर्तन व्यवसायी विक्रमदास, शहर ही नही, प्रदेश भर के कई शहरों में बडे-बडे होटलों के मालिक विट्ठल-बाबू, कालीन व्यापारी शफीउल्ला, साड़ियों वाले गोपीवल्लभ—इनमें से कोई राष्ट्रसेवी, दानवीर नही है। पर अब सभी मेलजोल रखते हैं, 'हे-हे' कर इस तरह चन्दा देते है, मानो इष्टदेव के यहाँ चढ़ावा चढ़ाते हो''' !

'''और सबसे बड़ी बात यह कि नल्लो—बड़ी बेटी नलिनी—की माँ अब न बात-बात पर ताने देती हैं, न दो-दो पैसे के लिए करम ठोंकती आँसू बहाती हैं। उन्होंने कमरे की दूसरी ओर लगी पलंग पर सोई पत्नी की ओर देखा—अवस्था-बोझ से कमर के इर्द-गिर्द बढती मांसलता में जैसे नया कसाव आ गया है, पैरों और हथेलियों में नव-सुहागिनो जैसा महावर, और नाक-कान में जड़ाऊ काम वाले सोने की भारी लौंग और कर्णफूल। गले में तीन लड़ियों का लाकेट। चेहरे पर नये सिरे से कमनीयता जैसे खिलने लगी है। अब चाहे मुँह से न कहें, आँखों में सराहना भरी चितवन रहती है और कैसी रुच-रुच कर अपने हाथ से थाली लगाती हैं।

—पर कौन कह सकता था जनसेवा का यह सतयुग इतना अल्पजीवी होगा ?

—यह क्या किया श्री सदानन्द जी आपने ! अपनी कुर्सी और पद-

प्रतिष्ठा की लड़ाई मे इस तुच्छ जनसेवक की पीडा का जरा भी ध्यान क्य नही रखा ? जब से मंत्रिमण्डल गिरा है, पहले जैसी बात न रही, अमले-अहलकारों की मुद्रा अब भी विनयशील रहती है लेकिन उसके पीछे एक दबा हुआ विद्रूप भी होता। काम भी अब उतना तुर्त-फुर्त नही करते। सामने पडने से बचने की कोशिश करते है, और पड़ ही जाते हैं, तो कोशिश रहती है कि किसी तरह यह जल्द टल जायें या खुद किसी तरह टलने के बहाने तलाश करते हैं। अभी आने को कह कर बैठा जाते हैं, फिर देर तक नहीं आते···। हींगन साव चतुर व्यापारी हैं, चन्दा अब भी देते है, लेकिन जिला कांग्रेस के अध्यक्ष ब्रजविलास जी का भी नाम लेते है, जो सत्ताधारी कांग्रेस के साथ हैं। छगाप्रसाद कभी-कभी अब अपनी जनसघी राजनीति समझाने की कोशिश करते हैं, औरों के भी रुख बदल गये है ···।

क्या इसीलिए मच्छर अब तंग करने लगे हैं ? और इसीलिए इन तुच्छ मच्छरों के आगे इतने अशक्त हो गये हैं ?

—बस एक बार ! श्री सदानन्द का मंत्रिमण्डल बस एक बार और बन जाये तो गिन-गिन कर सबसे पूछेंगे। पर श्री सदानन्द से क्या लेना-देना। मुख्यमंत्री कोई भी हो—अपना ठौर तो सिर्फ बाबू जी तक है। बस, वे जिधर हों, उनका मंत्रिमण्डल बने। पर वे किधर होंगे ? किसका मंत्रि-मण्डल बनेगा ? पता नहीं कब वे निर्णय करेंगे ! सब कुछ अनिश्चित है ···।

—ओह, यह मच्छर !

उन्होंने ललक-भरी निगाह से पत्नी की ओर देखा। मानो नवयौवन का दूसरा उत्कर्ष कुछ देर तक उन्हें भरमाता रहा। शायद सोई नहीं थी. या सोई थी तो भी पति की ललकभरी दृष्टि उनकी चेतना को उकसा गयी थी और अब वे रह-रह कर करवट बदल कर अधखुली आँखों से उन्हे देख लेती थीं।

रामलखन जी ने यह सब देखा—कुछ देर तक रससिक्त कल्पनाओ मे मुदित होते रहे। पर अब उस उम्र में पहुँच चुके हैं जब देहसुख की जगह व्यवहार बुद्धि अधिक प्रबल हो जाती है। फिर जब मन पर बहुत-सी दूसरी बातों का बोझ हो तो लालसाएँ देर तक नहीं टिकती···। उन्होने बत्ती बुझा दी और सोने की कोशिश में जबरन आँखें मूँद कर पड़ रहे।

कानों के पास मच्छर अब भी भनभना रहे थे।

चौदह

लल्लन बाबू किसी भी तरह हार नहीं मानना चाहते। उन्होंने तय कर लिया कि वे दुनिया को यह दिखा कर ही रहेंगे कि उन्हें कुछ नहीं हुआ और सब कुछ बदस्तूर कर सकते हैं। इसी झोंक में एक दिन बिना किसी से कुछ बताये वे घूमते-घामते दफ्तर जा पहुँचे। उन्हें यह देख कर बहुत सन्तोष हुआ कि अभी उनकी दीमक लगी मेज और पुरानी कुर्सी खाली थी। बिना किसी ओर देखे, वे चुपचाप अपनी पुरानी जगह पर जा बैठे। पुरानी जगह आदमी को आश्वस्त करती है—मानो शून्य में भटकता पद फिर जमीन पर खड़ा हो गया हो। कई बार आँखों के आगे काले पर्दे से खिंचे और सारी रोशनियाँ जैसे घुलमिल कर एक बड़े सफेद धब्बे में बदल गयीं। पर हर बार उन्होंने अपने-आपको जैसे अपने भीतर की सारी शक्ति लगाकर सँभाले रखा और इस बात का इन्तजार करते रहे कि कब चपरासी किशोर उनके मोटे-मोटे काले जिल्दों वाले रजिस्टर को सामने रख जाये और वे कब काम में लग जायें।

उन्हें देख कर क्षण-भर को जैसे सारे दफ्तर में हैरानी की एक लहर दौड़ गयी। वह तो बीमार थे? एकाएक इस तरह उठ कर कैसे चले आये? कुछ लोगों ने हाल-चाल पूछा, और कुछ ने दबे स्वर में नौकरी की अमानवीयताओं की चर्चा की जिसमें आदमी बीमार पड़े तो छुट्टी पर भी नहीं रह सकता। फिर धीरे-धीरे सभी लोग अपने कामों में लग गये।

लल्लन बाबू उनकी प्रतिक्रियाओं से अनभिज्ञ अपनी जगह पर चुपचाप बैठे किशोर के रजिस्टर लाने का इन्तजार करते रहे। उनकी सीट उसी कमरे में खिड़की की ओर थी जिसमें बड़े बाबू बैठा करते थे। लकड़ी का पार्टीशन देकर साहब का चैम्बर अलग किया हुआ था जिसके दरवाजे पर मोटे कपड़े का हरा पर्दा झूलता रहता। उन्हें देखते ही बड़े बाबू की आँखें

आश्चय से एक बार फैल गयी, फिर अपनी अभ्यस्त कूटनीति से उस भाव को छिपाते हुए गम्भीर औपचारिक लहजे में कहा—

"जै राम जी की, लल्लन बाबू ! तबीयत कैसी है ?"

"ठीक ही है अब तो !"

"हूँ !"

कुछ देर तक चुप बैठे वे मानो यह तय करते रहे कि अब क्या करना चाहिए। फिर एकदम से उछल कर उठे। जैसे हमेशा करते थे, उसी तरह लगभग दौडने जैसी चुस्ती अपने अन्दर लाकर फर्शी सलाम बजाने के अंदाज मे पर्दा उठा कर वे साहब के चैम्बर में घुस गये। कुछ देर बाद साहब के कमरे की घंटी तेजी से घनघना उठी। चपरासी किशोर अपनी चीकट, खाकी वर्दी का बटन बन्द करता हुआ साहब के चैम्बर की ओर भागता दिखायी दिया। घंटी बजते ही इस आलसी मे जो तीन आवाजों के बाद हाँ सुनता है, और पाँच बार बुलाने के पहले उठता ही नहीं, पता नहीं कहाँ की फुर्ती आ जाती है। तुरन्त ही वह बाहर आया और कुछ देर बाद निर्मल बाबू के साथ लौटा। निर्मल बाबू दो गलियारे छोड़ कर स्टोर विभाग में बैठते—नहीं, नहीं ! स्टोर की रियासत के मालिक हैं। लल्लन बाबू को देखकर वे भी क्षण भर को ठिठके। फिर तुरन्त ही अपने को सँभाल कर उन्हें बन्दगी की। एक-आध सेकेंड के लिए रुककर हाल-चाल पूछा, फिर यह कहते हुए कि—अभी आते हैं, देखें, साहब का क्या हुक्म है—वे भी अन्दर चले गये। पर वे बड़े बाबू की तरह फर्शी सलाम के अन्दाज मे भीतर नहीं जाते, आदमी की तरह जाते हैं। लेकिन जैसा उन्होंने कहा था वे तुरन्त नहीं आये और काफी देर तक न जाने क्या-क्या बातें करते रहे। टाइप बाबू परमात्मा प्रसाद और एक-दूसरे कैश-क्लर्क हीरालाल जी भी बुलाये गये। पता नहीं इन सबकी कैसी गुपचुप, साजिशनुमा बैठक चलती रही। करीब पन्द्रह मिनट बाद सभी लोग बाहर आये। एकाध मिनट लल्लन बाबू के पास रुक कर उनका हाल-चाल पूछा और फिर अपनी-अपनी जगहों पर चले गये।

अब उनके रजिस्टर आलमारी से निकाल कर किशोर लाता ही होगा—लल्लन बाबू सोचने लगे। वे मन ही मन यह हिसाब भी लगाने लगे कि

पता नहीं कितना काम बाकी होगा ! तभी फिर साहब के कमरे की घंटी घनघना उठी। किशोर फिर दौड़ता हुआ उनके चैम्बर में गया, और तुरन्त ही बाहर आया। पर इस बार वह कहीं और नहीं गया। सीधे लल्लन बाबू के पास आकर रुका—

"साहब आपको बुलाते हैं।"

"क्या कहा ? साहब !" लल्लन बाबू फौरन उठ खड़े हुए। कृशकाय शरीर में फुर्ती की बिजली दौड़ गयी और चुस्ती से साहब के कमरे की ओर बढ़ गये।

इसके पहले जब भी साहब को देखा, उनका चेहरा गम्भीर और तना-सा रहता। गम्भीर आज भी था ; पर कोई तनाव नहीं। और यह क्या ? आज उन्होंने मुस्कराते हुए अपने सामने की कुर्सी पर बैठने के लिए कहा।

सकुचाते हुए वे कुर्सी के अगले सिरे पर किसी तरह टिक गये। पर पीठ टिका कर, तन कर बैठने का जैसे अभी भी साहस नहीं कर पाये।

"आराम से बैठें लल्लन बाबू !"

वे कुर्सी पर थोड़ा और पीछे सरक गये।

"अब तबीयत कैसी रहती है···?"

लल्लन बाबू के जवाब देने के पहले ही साहब फिर बोल पड़े— "हाँ, ठीक ही रहती होगी, नहीं तो आ कैसे पाते !" और इसके साथ ही मेज पर लगी बटन दबाने के साथ कालबेल फिर घनघना उठी।

एक बार फिर किशोर आया। पर आश्चर्य ! इस बार वह दो प्याली चाय लेकर आया। एक साहब के सामने रख दी। दूसरी लल्लन बाबू के सामने। क्या साहब के सामने यह गुस्ताखी कर सकेंगे—चाय पीने की गुस्ताखी ? पर वे पीने के लिए आग्रह कर रहे हैं, उनकी बात भी तो रखनी होगी।

सकुचाते हुए उन्होंने एक चुस्की ली। साहब के माथे पर ऊब की सिलवटें उभरीं पर तुरन्त ही गायब हो गयी। चाय की चुस्कियों के बीच ही उन्होंने कहा—"अच्छा किया, आप आ गये ! कई दिनों से एक स्टेट-मेंट तैयार करना चाहता था, पर सोच नहीं पा रहा था कि किससे कहें···! आप आ गये तो इससे अच्छा और क्या होगा···!"

साहब की—या बड़े बाबू का सिखायी साहब की कूटनीति से अनभिज्ञ लल्लन बाबू की आत्मा अन्तस्तल तक तृप्त हो उठी। मानो एकाएक अपने कानों पर विश्वास न हुआ। क्या सचमुच साहब इतना बड़ा काम उन्हें सौंपने जा रहे हैं? ठीक है, पूरी कोशिश से करेंगे। हुँह—साला बड़ा बाबू—मुझे पागल बना कर चला था काम से हटाने। साहब को क्या बुद्धि नहीं है···?

"मैं तो न जाने क्या-क्या आपके बारे में सुनता था," साहब कह रहे थे, "पर आज आपको ठीक-ठीक देख कर खुशी हुई···। आप बड़े बाबू से कागज और पिछले दो सालों की चिट्ठी-पत्री की फाइल ले लें। उन्हीं को पढ कर ब्योरा तैयार कर लें—किस चीज की ज्यादा शिकायतें आयीं, किस इलाके से आयीं, कितने दिनों में ठीक हुई···। फिर एक छोटी-सी समरी तैयार कर दें—समझ रहे हैं न···?"

"जी हाँ! जी हाँ!"

"पर यह एक दिन का काम नहीं है। पन्द्रह-बीस दिन, महीना भी लग सकता है।"

"ठीक है सर···!"

"यहाँ कर सकें तो करें और न हो तो घर लेते जायें। काम खत्म करके ही ले आयें।"

बाहर आने पर बड़े बाबू ने दो पुरानी चिट्ठियों वाली जर्जर फाइलें और कागज दे दिये।

कुछ देर तक उन्होंने फाइल उलटीं-पलटीं, कुछ पुरानी चिट्ठियों को पढ़ा और सामने रखे कागजों को आगे खींच कर उन पर कुछ लिखते रहे। लेकिन सचमुच भारी काम है। तुरन्त कुछ किया नहीं जा सकता। पहले सारी चिट्ठियाँ पढ़नी पड़ेंगी, उनमें लोगों की क्या-क्या शिकायतें हैं, उन्हें अलग-अलग लिखना पड़ेगा—एक खाका बनाना पड़ेगा कि कैसे काम किया जाये। अलग-अलग खाने खींचकर हर चिट्ठी की इबारत के मुताबिक बने खाने में उन्हें नोट करते जाना होगा।···

कागज को उन्होंने अपने और आगे सरका लिया और उसकी ओर ध्यान से देखने लगे।···अब यह एक बड़ा सफेद धब्बा बनता जा रहा था।

कछ देर तक उसमें बड़े बाबू, निर्मल बाबू, बड़े साहब और किशोर की शक्लें परछाइयों की तरह तैरती रहीं। फिर खिंच उठा एक काला पर्दा—अजीब ढंग से खिंचता है यह। पहले सरसों की तरह एक छोटा-सा काला तिल होता है, फिर उसके इर्द-गिर्द काला घेरा बडा होता जाता है, अथाह अँधेरे की लहरें, फिर वही गाढा पर्दा जिसके पीछे सब कुछ छिप जाता है।

वे कहाँ बैठे है, क्या कर रहे हैं···? कुछ भी पता नही।···नही, नही, यह नहीं होना चाहिए। न कुर्सी से उठना चाहिए, न गिरना चाहिए।···पर यह कालापन, ये काली लहरें···? सब कुछ उन्हीं में डूबता जा रहा है···?

जब कागज फिर दिखायी देने लगा तो कितना समय बीत गया था ? खिड़की के बाहर सड़क पर धूप कुम्हलाने लगी थी। उन्होने कागज की ओर फिर ध्यान लगाया—पर अभी भी सब कुछ अस्थिर, मानो हिलता हुआ। और अब उस कागज की ओर देखने में भी डर लगने लगा—कौन जाने फिर वह उजला धब्बा बढ़ कर फैल जाये और वे फिर अँधेरे में डूब जायें। नही, उधर नहीं देखना चाहिए।

"सो गये थे क्या लल्लन बाबू ?" बड़े बाबू की आवाज कहीं बहुत दूर से आती मालूम हुई।

"कुछ पता नही !" लल्लन बाबू को अपनी ही आवाज कुछ बडी खोखली, बडी अजीब-सी मालूम हुई। "क्या सचमुच मैं सो गया था ? अगर ऐसा था तो गलती हुई···?"

"नहीं, नहीं, कोई बात नही !" बड़े बाबू ने कहा। "काफी दिनो बाद दफ्तर आये हैं न ! काम की आदत फिर से लगने में वक्त लगता है। कहे तो कुछ चाय-पानी मँगवाऊँ ? पान-बीड़ी तो आप छूते भी नहीं···।"

अपने मातहत की बड़े बाबू ऐसी खातिर करें—असम्भव ! ऐसा व्यवहार तो आदमी सिर्फ मेहमानों या बाहरी लोगों से करता है। अभी तक तो बड़े बाबू ने कभी दफ्तर में उनके साथ इतनी हमदर्दी नही दिखायी। आज ही ऐसा क्यों ? अजीब है यह। जब सोचो कि बहुत घटिया आदमी है तो कुछ ऐसा करता है कि अच्छा भलामानुस लगने लगता है और जब सोचो कि अच्छा आदमी है तो किसी हद दर्जे के कमीनेपन

पर उतर आता है। पर आज साहब ने चाय पिलायी है, इसलिए इतना उदार बन रहा है। ऊपर से नम्रता दिखाते हुए लल्लन बाबू ने चाय के लिए मना कर दिया।

थोड़ी देर बाद वे फाइलें और कागज समेट कर उठ खड़े हुए। साहब ने कह दिया है कि काम यहाँ पूरा नहीं होगा इसलिए घर लेते जायें और चाहे तो घर में रह कर इसे पूरा करें। इसलिए बड़े बाबू से कुछ पूछने की जरूरत नहीं है। पर आखिर है तो इसी के मातहत। न पूछने पर बुरा मानेगा, हो सकता है कि आगे कभी तंग करे।···

"मैं सोचता हूँ, काम घर लेता जाऊँ···।" उन्होंने क्षीण-सी आवाज मे कहा, "साहब ने जो कहा है, आपको मालूम ही होगा···।"

"हाँ, हाँ, बिल्कुल! मैंने ही तो साहब को यह सलाह दी थी।···" बड़े बाबू ने कहा।

—हुँह! यहाँ भी जस लूटने से बाज नहीं आयेगा। साहब ने कह दिया घर पर ही काम करने को तो उसे भी अपनी सलाह बता रहा है···। पर उन्होंने बड़े बाबू की बात पर कुछ कहा नहीं और आँधी में किसी कमजोर पेड़ की तरह हिलते-डगमगाते कदम से बाहर आ गये। कुछ देर के लिए निर्मल बाबू की तरफ गये। पुराने साथी हैं, उनकी भेंट की हुई चाय खुशी से पी, इतने सारे दिनों बड़े बाबू ने क्या-क्या योजनाएँ दफ्तर के लोगों के साथ की हैं—उनके चटपटे किस्से सुने, फिर घर के लिए चल पड़े।

साहब ने जो गुरुतर कार्यभार सौंपा था उससे भी अधिक वे उनके कृपा-बोझ से गद्गद हो रहे थे। सबसे ज्यादा खुशी यह थी कि उन्होंने इस काम के लिए किसी और को काबिल नहीं समझा, न बड़े बाबू को न निर्मल बाबू को। किसी दूसरे को भी नहीं—आखिर उन्होंने जीवन व्यर्थ नहीं गँवाया, उनका भी मूल्य है,···यह सोच-सोच कर मगन मन लल्लन बाबू यह समझ नहीं पाये कि यह सारा नाटक उन्हें फिलहाल किसी तरह दफ्तर से टालने के लिए रचा गया था। कहीं वे यहाँ कोई हंगामा न कर बैठें—इसीलिए साहब और बड़े बाबू ने प्रशासनिक अनुभव-चातुरी से आयी बला की तरह उन्हें टाल दिया था और तारीफ तो यह कि

लल्लन बाबू भी इससे खुश थे।

सहसा लल्लन बाबू को ध्यान आया कि वे जिस सड़क पर चल रहे थे वह घर जाने वाली सडक नहीं थी। यह शहर का कोई दूसरा छोर था। अब शाम भी गहरा रही थी। सँकरी-सी सड़क के दोनों ओर बने मकान आगे मानो अचानक खत्म हो जाते थे और—सरपत की झाड़ियों के बीच सपाट सड़क आगे जाती हुई किसी रेलवे क्रासिंग से मिलती थी। इस वक्त उसका फाटक बन्द था, कोई ट्रेन भी आने वाली थी और फाटक की लाल बत्ती दूर से चमक रही थी। लल्लन बाबू कुछ देर उधर चकराये-से देखते खड़े रहे। ट्रेन आयी और अपनी धमक से जमीन कँपाती हुई निकल गई। उन्हें अच्छी तरह याद था—घर के रास्ते में कहीं रेलवे लाइन नहीं पड़ती थी। फिर घर किधर था? इतने दिनों इसी शहर में रहते हुए इधर कभी नहीं आये? क्या कोई दूसरा शहर है? यह कौन-सी जगह है?

"लोहंदी कटरा," किसी ने बताया।

"रमई पट्टी किधर है?"

"रमई पट्टी? अरे तुम किधर चले आये? यह तो बिलकुल उल्टी तरफ है? यहाँ नये हो क्या?"

—नया? लल्लन बाबू ने सोचा। नहीं, नया तो नहीं, पर जिधर कभी नहीं आया, यहाँ तो नया ही हूँ। प्रकट में पूछा—"किधर है?"

"जिधर से आये हो, उसी तरफ लौट जाओ। अगले चौराहे पर रिक्शा कर लेना, चार-चार आना सवारी लेता है उधर जाने···।"

"क्या दूर है?"

"न···ही···यही साढ़े तीन-चार मील होगा। मगर रास्ता नहीं जानते तो भटकोगे। रिक्शे से मजे में पहुँच जाओगे।"

वे जिधर से आये थे उसी ओर लौट पड़े। लेकिन अगले चौराहे पर रिक्शा नहीं किया। पैसा था ही नहीं, कर भी नहीं सकते थे। कहीं एक आदमी से और रास्ता पूछा और कुछ दूर आगे चलने पर सड़क कुछ पह-चानी लगने लगी। एक ओर दुर्गा मन्दिर को रास्ता जाता था जहाँ एक बार गये थे? सीधे चलने पर वह चौराहा आ जाता जहाँ राजेन को बहुत

पहले स्कूल छोड़ा करते थे। यहाँ से अब आसानी से घर की तरफ जा सकते थे।

सहसा अपने ही ऊपर हल्की-सी हँसी आयी। खूब होता है यह जिन्दगी का चर्खा भी—जहाँ रहते हैं—वहाँ से सिर्फ तीन-चार मील दूर है यह जगह, फिर भी सोलह साल रहते हो गये और आज तक इधर नहीं आ पाये। पर यह सोचते ही हँसी सिर्फ हँसी न रही। यह एक हल्की-सी कसक—शरीर में किसी अनजान जगह धँसी हल्की-सी कील बन गयी जो सिर्फ सालती है, पर पता न होने से निकलती नहीं। आखिर ऐसी लीक से क्यों बँधे रहे—कौन बाँधे रहा कि घर से दफ्तर और दफ्तर से घर के अलावा यह चार मील की दूरी भी पिछले सोलह सालों में नहीं लाँघ पाये। और लाँघी भी तो आज भटक कर। एक मन हुआ कि भटकते ही रहें, भटकते ही चले जायें—और इस तरह भटक कर ही वे सारी जगहें देख लें जहाँ आज तक कभी नहीं गये। या फिर पैसे होते तो आज रिक्शा ही कर लेते। रिक्शे पर भी, और रिक्शा ही नहीं, किसी दूसरी सवारी पर भी वे बहुत कम बैठे हैं। आज जरूर रिक्शा कर लेते और सीधे घर न जाते। सारी रात उस पर बैठे शहर के कोने-कोने में घूमते, फिर घर पहुँचते।

पर मन के साथ पैरों को भी नहीं भटकने दे सकते। अब और भटकने का अर्थ होगा राजेन के भविष्य के साथ खिलवाड़—साहब ने जो काम सौंपा है वह जल्द पूरा होना है। न होने का मतलब होगा दफ्तर से हमेशा के लिए छुट्टी। यानी बड़े बाबू का, उस गंजी चाँद वाले नेता का अपनी इस योजना में सफल हो जाना कि राजेन आगे न बढ़ पाये…। और अब जाने-पहचाने रास्ते पर वे मानो हवा के धक्के से उड़ते पत्ते की तरह तेजी से घर की तरफ बढ़ते रहे।

उसी मुद्रा में उन्होंने नयी बस्ती की मुख्य सड़क करीब-करीब पार कर ली। अब बायीं ओर घूम कर रघुनाथ साव की दूकान आयेगी। उसके बाद कुछ दूर आगे घर। तभी वे फिर ठिठक गये। इसी सड़क पर आखिरी मकान उस गंजी चाँद वाले नेता का था। उसकी ओर उन्होंने एक बार बड़ी हिकारत से देखा। मानो वह कोई धराशायी शत्रु हो जिसे उन्होंने लड़ाई में पछाड़ दिया हो। हुँह, चला था मेरे राजेन की जिन्दगी

क साथ खिलवाड करने हुह उ होने सडक पर पड एक ककड को जोर का ठाकर मारी।

ककड़ कुछ दूर तक लुढ़क कर कही खो गया।

नही ! यह काफी नही था। उसे सीधे जाकर कम से कम उस नेता के घर की चारदीवारी से टकराना चाहिए था।

उन्होने फिर एक ककड़ पर और जोर से ठोकर मारी। यह पहले से बडा था, कुछ फुट ही खिसक कर रह गया, पैर के अँगूठे में भी तेज झन-झनाहट हुई...।

आगे बढ़कर उन्होंने कंकड़ को हाथ मे उठा लिया। उसी तरह मकान की चहारदीवारी के पास तक पहुँचे और पंजों के बल उचक कर भीतर देखने लगे। कुछ लोग आरामकुर्सियों पर बैठे थे और अभी-अभी किसी बात पर हँसी का एक फौवारा फूट कर फूलों की क्यारियों के बीच बिखर गया था।

ये लोग क्यो हँस रहे थे ? क्या उनमें से किसी ने उन्हे वहाँ खडा देख लिया था और उन्ही के ऊपर हँस रहे थे ? उनके दुर्भाग्य पर ? क्या दूसरो के दुर्भाग्य पर उन्हें इसी तरह हँसने देना चाहिए... ?

नेता का चेहरा ठीक उनके सामने था। पर उन्हे महसूस हुआ उसका कोई चेहरा नही था। वह था सिर्फ एक आबनूसी, काला धब्बा, जिसमें न आँखें थी, न कान, न पहचान का कोई और चिह्न ! वह न तो जैसे कुछ महसूस करता था, न सोचता था। बस था सिर्फ एक काला धब्बा और बीच में चमकती, पान की पीक के कारण वह रक्तिम दत-पक्ति जिससे मानो वह सब कुछ सिर्फ निगलना ही, सिर्फ ग्रसना ही जानता हो।

वह धब्बा फिर किसी बात पर जोर से हँस पड़ा।

सहसा लल्लन बाबू अपने आप को बहुत शक्तिशाली महसूस करने लगे। वह हँसता हुआ धब्बा ठीक उनकी सीध में था और किसी समय अपने हाथ का पत्थर फेंक कर वे उसकी हँसी बन्द कर सकते थे।

फिर भी वे पत्थर फेंक नही सके। वह हँसता हुआ रूपहीन धब्बा मानो निशाने की सीध में आ जाने वाले, सन्निकट मृत्यु से अनजान शिकार की

तरह विवश और दयनीय लगने लगा वह पूरी तरह उनकी दया पर था और यही उनकी शक्ति थी। वह उसे मार सकते थ, पर मारेंगे नहीं…:

लेकिन उसे अपने दुर्भाग्य पर हँसने भी नहीं देंगे। वे दुर्भाग्यग्रस्त और मजबूर रहे भी कहाँ ? इतना बड़ा काम आज साहब ने उन्हें दिया है— और उनके साथ, राजेन की जिन्दगी के साथ अब न बड़े बाबू कोई खिलवाड़ कर सकेंगे, न यह नेता—यह इसे बताना होगा…। और अपनी विदग्ध मानसिकता में ऐसी ही बहुत-सी बातें वे सोच गये। फिर अनजाने ही जैसे स्वप्न में उनका हाथ उठा और उँगलियों के बीच पकड़ा वह पत्थर जैसे अपने आप ही छूट गया।

किसी पेड़ की टहनियों के बीच कोई कौवा फड़फड़ाया, कहीं कोई शीशा टूटने की झनझनाहट हुई और किसी की तेज चीख…। इसके साथ ही लान में बैठे कुछ लोग बाहर की ओर दौड़ पड़े।

उनकी हँसी सचमुच बन्द हो गयी थी, यह लल्लन बाबू ने बड़े सन्तोष भाव से लक्ष्य किया। वे न भागे, न कहीं गये। चहारदीवारी से जरा सा हट कर वहीं निर्विकार खड़े रहे।

—"यही है, यही है, कहता हुआ कोई उनकी ओर दौड़ा। पीछे-पीछे और दो-तीन लोग।"

एक ने उन्हें पकड़ लिया। दूसरे ने बिना कुछ पूछे एक-दो धौल भी जमा दिये।

—"साले, असामाजिक तत्व…।" किसी और ने अपनी समाज-चेतना से प्रेरित कुछ भाषण की मुद्रा में कहा।

सबने मिल कर उन्हें पुलिस चौकी पर पहुँचा दिया, रामलखन जी को घर से बाहर भी नहीं निकलना पड़ा। धर्म सम्प्रदायों की तरह राजनीति में भी भगवान के भक्तों के भी भक्त होते हैं। आवश्यकतानुसार सब कर देते हैं।

लल्लन बाबू को जैसे कुछ भी खबर नहीं कि यह सब क्या हो रहा है। सब कुछ से अप्रभावित, संज्ञाशून्य। उन्हें यह कहाँ लाया गया ? खाकी वर्दियों में खूँखार चेहरों वाले आदमी उनकी ओर क्यों घूर रहे हैं ? वह उनका नाम-गाम भी पूछ रहे हैं। क्या वे नहीं जानते कि वे कौन हैं ? और

वे बड़बड़ा उठे—"डोंट यू नो ! आई एम द असिस्टेंट क्लार्क आफ जहाँ-पनाह । आज उनके साथ चाय पी है । उन्होंने मुझे सारी दुनिया का ब्योरा तैयार करने के लिए कहा है···।" और अपनी दोनों मोटी-मोटी फाइलें ड्यूटी अफसर के सामने खुले बादामी कागजों के भारी रजिस्टर पर पटक दीं । चौकी वालों के होठों पर हल्की मुस्कराहट फूटी, पर शायद वर्दी के अंकुश के कारण पूरी तरह उभर नहीं पायी । अंग्रेजी का अभी भी काफी रोब पड़ता है, चाहे वह कोई पागल ही क्यों न बोले । लगता भी था यह एक निरीह, बाबू किस्म का आदमी । कोई सीधा-भला आदमी होता तो धमकी देकर कुछ वसूला भी जा सकता था । पर इससे क्या मिलेगा । कोई और ले आता तो कुछ देर चौकी में ही बैठा कर डाँट-डपट कर छोड़ देते । पर यहाँ मामला एक बड़ी पहुँच वाले नेता का था·· ।

ऐसी खबरें घर पर बहुत जल्द पहुँच जाती हैं ।

रघुनाथ साव का लड़का मुल्लू कहीं से साइकिल पर आ रहा था । उसने सारा हंगामा देखा था—लोगों को लल्लन बाबू को पकड़ते, धौल जमाते और फिर थाने ले जाते—और अपने घर जाने से पहले वह सीधे नन्दो बुआ के घर दौड़ गया ।

वहाँ पहले ही दिन भर से हंगामा मचा हुआ था । खुद राजेन और नन्दो बुआ के कहने से मुहल्ले के कुछ दूसरे लड़के उन्हें दूर-पास की कितनी ही जगहों पर ढूंढ आये थे, आस-पास का हर कुआँ झाँक आये थे, पोखरों और गड्ढों को भी नहीं छोड़ा । इस घबराहट में किसी ने सोचा भी नहीं कि वे दफ्तर जाने जैसा सीधा-सादा काम भी कर सकते हैं । और अब वहाँ मदद के लिए राय साहब भी बुलाये गये थे—इसी समय रघुनाथ साव का लड़का खबर लेकर आया···।

—पुलिस ?

एक क्षण को सभी सकते में पड़ गये । सभ्य समाज की पुलिस शासन की जितनी तरह की यंत्रणाओं का प्रतीक है—बेड़ी-हथकड़ी, मार-धाड, तरह-तरह की यातनाएँ—वह सभी कुछ लोगों की कल्पनाओं को डस गया । राजेन की माँ की तो जैसे साँस ही टँग गयी और एक क्षण को जसे

नन्दो बुआ भी विवेक खो बैठी। सिर्फ वही एक क्षण। जिसने जीवन भर प्रतारणाएँ झेली हों उसे किसी यातना या अपमान का भय देर तक नहीं सताता—अगले ही क्षण वह जैसे स्वयं जज के ऊँचे आसान पर जा विराजी।

"क्यों, क्या किया है उन्होंने ? कहीं चोरी-डाका डाला है, किसी को मारा-पीटा है, कुछ लूटा है किसी का ?···कौन ले गया थाने, कोई चोर-उच्चके हैं···?" एक साँस में उसने बहुत-कुछ पूछ डाला।

"अरे नहीं बुआ ! कहते हैं पत्थर फेंका है," मुल्लू ने कहा।

"पत्थर···? कहाँ···?"

"वहीं जहाँ नेता जी रहते है, बगल मे, उन्हीं के घर पर···!"

एक पत्थर जैसे यहाँ भी आ गिरा। उससे कहीं बहुत बड़ा जितना बडा लल्लन बाबू ने फेका था। वहाँ शीशा टूटा था, यहाँ टूट गया लोगों का हौसला। सभी यह अच्छी तरह समझते है कि किसी के घर पर पत्थर फेकना कितना बड़ा जुर्म है, और फिर एक बड़े नेता के दाये हाथ आग अफसरों के साथ मिलने-जुलने वाले के घर पर तो यह करने के और बडे दुष्परिणाम हो सकते हैं। पर कानून नन्दो बुआ से पूछ कर कभी नहीं बनाया गया। और न कभी इस बात को ध्यान में रख कर बनाया गया कि नन्दो बुआ और उस जैसे लोग क्या सोचते है। अपनी सामान्य बुद्धि मे वह स्वतः जिस न्यायासन पर बैठ गयी थी वहाँ प्रकृति-न्याय चलता है —और उसकी नजर में लल्लन बाबू का कोई दोष नहीं था।

"उसको जरा भी लाज-सरम नहीं," उसने जैसे वहीं से उसे जली-कटी सुनाने की मुद्रा मे कहा, "आँखों में जरा भी सील नहीं !·· कोठी बनवा ली तो सारी दुनिया से ऊपर हो गया। उसी ने तो अपनी कोठी से गिरा कर उनकी यह हालत की। ऐसी हालत न होती तो भला वह गऊ आदमी उसके ऊपर पत्थर फेकता···? और उसने ही थाने भेजवा दिया ?"

"लेकिन यह तो तुम सोचती हो न नन्दो बुआ।" राय साहब ने उसे समझाने की कोशिश की, "पुलिस तो यह सब नहीं मानेगी।"

"तो न माने। मगर क्या इससे सही बात कोई न कहे···सभी जानते हैं कि यही बात है···तुम नहीं जानते···?"

राय साहब ने व्यर्थ बहस न करना ही अच्छा समझा।

"मैं रामलखन जी को जानता हूँ।" राजेन ने जैसे काफी देर सोचने के बाद बड़ी कोशिश से कहा।

उसकी माँ, नन्दो बुआ, राय साहब सभी उसे आश्चर्य से देखने लगे। सबके लिए यह बात एक छोटे-मोटे रहस्योद्घाटन की तरह थी।

"तो फिर चुप्पा बना मुँह क्या देखता रहता है," नन्दो बुआ ने उसे भी झिड़का, "जाकर कह उससे कि तेरे बाप का छुड़वा दें, नहीं तो मुहल्ले का हर लड़का पत्थर फेंकेगा कल से और मैं देखूँगी कि किसे-किसे जेल भेजवाते हैं। और तुझसे न बने तो ठहर मैं भी चलती हूँ।

लेकिन राय साहब ने उसे रोक दिया। पता नहीं क्या खरी-खोटी सुना दे और बात बिगड़ जाये। राजेन को लेकर खुद रामलखन जी क यहाँ चल पड़े।

—रामलखन जी के लिए राजेन का कोई महत्व नहीं है। पर वह जगदीश बाबू को भी जानता है, कहीं वहाँ न पहुँच जाये। और साथ में इसी बस्ती के रहने वाले पुराने मास्टर साहब भी हैं—वे भी खादी पहनने वाले, बड़े डील-डौल के काफी असरदार आदमी मालूम होते हैं। हो सकता है कभी आगे काम निकले। इसलिए इस वक्त तो उदार होना ही है फिर भी यह तो बता ही देना है कि उन पर विशेष कृपा कर रहे हैं।

"लेकिन जब तुम्हारे पिता की ऐसी हालत है तो उन्हें बाँध कर रखो भाई," उन्होंने रुखाई से कहा, "आज मान लो मैं उन्हें जानता हूँ, लेकिन न जानता तब! फिर राय साहब ने भी इतनी रात को तकलीफ की। उनकी बात भी तो रखनी है, पर तुम तुम्हें बाँध कर रखो, ऐसा न हो कि आज छुडा लाये और कल फिर तुम्हारे ही लिए कोई आफत खड़ी कर दे ''। खैर तुम चौकी पर जाओ। मैं टेलीफोन किये देता हूँ ''।"

अपनी अनुभवी बुद्धि से राय साहब ने उनकी बात का आशय कुछ समझ लिया। मन हुआ कि नन्दो बुआ ने उन्हें लेकर जो बातें कही थीं, वही उन्हें सुना दे! पर चुप ही रहे।

रात के साढ़े दस बजे वे लोग लल्लन बाबू को साथ लेकर घर लौटे।

पन्द्रह

चल्लन बाबू पुलिस चौकी से तो घर आ गये। लेकिन एक नेता के घर पर पत्थर फेंकने, थाने में बन्द होने और बड़ी कोशिश-पैरवी से छूटने की खबर तरह-तरह के क्षेपकों मे लम्बी होते-होते कानों-कान उनके दफ्तर भी जा पहुँची और जहाँ तक दफ्तर का ताल्लुक था, उनके भाग्य पर उसी दिन मुहर लग गयी।

छोटे से दफ्तर के एकरस जीवन मे चर्चा का एक विषय मिल गया और दिन भर लोग इसी घटना पर बातें करते रहे। कुछ लोगों को उनसे सहानुभूति थी—अच्छा-भला आदमी भी दिमाग फिर जाने पर कैसा हो जाता है। सब भाग्य का फेर है, विधि-विधान, करम का लेख। पर अभी कच्ची गिरस्ती है, कैसे बेड़ा पार लगेगा। पर कुछ लोगों ने, साहब के दरबारियों ने, जिनमें बड़े बाबू प्रधान थे, सारी बात को दूसरे रूप में लिया। गनीमत है साहब कि यह सब उन्होंने यहाँ नहीं, यहाँ से जाने के बाद किया। यहीं दिमाग चल जाता और किसी पर उठा कर पेपरवेट ही फेंक देते, किसी पर रूल या दवात ही फेंक देते—और निर्मल बाबू ने यहाँ भी बड़े बाबू का लक्ष्य कर हल्की-सी चुटकी ली—किसी पर जूता ही फेंक देते तो क्या होता?

इस चुटकी के बावजूद बड़े बाबू रेजिडेंट इंजीनियर साहब को स्थिति की गम्भीरता के बारे मे कायल करने में सफल रहे। जिन लोगों को चल्लन बाबू से सहानुभूति थी, उनके लिए बड़े बाबू की योजना थी ही कि उनकी खाली जगह उनके लड़के को दे दी जाये। जिस हालत में वे थे उसमें उन्हें अब नौकरी पर रखा नहीं जा सकता था। इससे अच्छा और क्या समाधान होता कि उनकी जगह उनके बेटे को दे दी जाये। आखिर यही होता आया है—बेटा ही आगे चलकर बाप की जगह सँभालता है। राजा के बेटे ने राजसिंहासन सँभाला है तो क्लर्क का बेटा उसकी दीमक लगी जर्जर कुर्सी के सिवा और क्या सँभालेगा! सब कुछ अपनी जगह पर ठीक-ठाक दुरुस्त। न कोई उलट-फेर, न कोई गड़बड़ी। और इस नियति-चक्र में कोई न कोई माध्यम बनता ही। यहाँ बड़े बाबू बन गये तो उनका

क्या दोष !

उनके घर के सामने फिर उस दिन जैसा नाटक दुहराया गया। यानी दफ्तर की काली चमचमाती कार उनके दरवाजे के सामने खड़ी हुई और उसमे से उतर कर बड़े बाबू और निर्मल बाबू लल्लन बाबू के पास आये।

लेकिन आज वे लोग सिर्फ दफ्तर का प्रस्ताव नहीं, फैसला लेकर आये थे—यह कि दिमाग की हालत ठीक न रहने से उन्हें अब दफ्तर मे नहीं रखा जा सकता। इसलिए उनके हक में यही अच्छा होगा कि अपना सारा हिसाब-किताब चुकता वसूल पाने की रसीद पर दस्तखत कर दे और राम-नाम में ध्यान लगायें···। और फिर काम-धाम की चिंता भी क्यो करें, दफ्तर महान उदारता दिखाते हुए उनके बेटे को तो काम पर ले ही रहा है···।

"लेकिन साहब ने जो फाइल दी थी ?"

"अरे उसकी चिंता भी अब छोड़े ! कोई न कोई कर ही देगा यह सब। आप क्यों बेकार सिर खपायें।" बड़े बाबू ने यह सब कुछ डरते-डरते कहा। क्या पता यहाँ भी कोई कंकड़-पत्थर रखे हों और चला दें। या फिर जैसा निर्मल बाबू ने कहा था—क्या पता कहीं जूता ही चला कर बेइज्जती न कर बैठें। गरम दिमाग वाले से हर भला आदमी डरता है—और बड़े बाबू को अपने भलेपन पर कतई संदेह नही था।

पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।

उन लोगों के जाने के बाद लल्लन बाबू बहुत देर तक उस साढ़े चार हजार रुपये को फटी-फटी, सूनी आँखो से देखते रहे जो वे उनके फंड, ग्रेच्युटी वगैरह का दे गये थे। शायद पूरी सेवावधि तक काम कर लेते तो यह रकम दो-ढाई हजार और बढ़ जाती। बस, यही है सारी उमर कहीं लगा देने का मूल्य ? वे अथाह क्षोभ, एक अथाह पीड़ा के समुद्र मे जैसे डूबने-उतराने लगे। यही है सारी जिन्दगी की कीमत ? बस यही है उसका अर्थ, उसकी सारी सार्थकता ?

—स्साला ! उन्होने बड़े बाबू पर गुस्सा उतारा। और निर्मल बाबू भी दोस्त होकर उसी का साथ दे रहे है ?

व अशक्त है ? असमर्थ ?

नहीं, नहीं ! ऐसा नहीं हो सकता—अन्दर कहीं बहुत गहराई से उठता चीत्कार कंठ से नहीं फूटता'''।

यह कब की बात है ? अभी जैसे कल ही तो देखा था ! बहुत सारे लडकों के साथ गाँव के पीछे पुश्ते के उस ओर, बंजर में वह पड़ा था। गाँव का बूढ़ा लावारिस बैल। किसी खुर-फाँस में उलझ कर उसके अगले दोनों पैर टूट गये थे। वह बार-बार उठता और गिर पड़ता। फिर उठने की सारी कोशिश छोड़कर कई दिनों तक रह-रह कर चिल्लाया करता। फिर उसने यह भी बन्द कर दिया और उसके ऊपर चीलों के झुंड मँडराने लगे। लड़के काफी देर तक पत्थर फेंक-फेंक कर चीलों को उड़ाया करते'''।

वे चीलें अब भी मँडरा रही हैं। उन्हें कोई भगाता क्यों नहीं ? सारे लडके कहाँ चले गये ? राजेन कहाँ गया'''?

"राजेन ! '''राजेन !" उन्होंने आवाज लगायी।

इस वक्त वह घर में नहीं था।

खाना बनाना छोड कर उनकी पत्नी ही सिर से पाँव तक काँपती-घबराती वहाँ आ पहुँची। लल्लन बाबू के अन्दर उठते तूफान से अनभिज्ञ ऊपर से उनकी शांत मुद्रा देख कर उन्हें सन्तोष हुआ।

"क्या है ?"

"राजेन कहाँ है ?"

"कहीं गया होगा। कुछ बता कर तो नहीं गया है।"

इसके साथ ही उनकी निगाह बिस्तर के सिरहाने की तरफ चली गयी। वहाँ तकिये के पास रखे रुपयों की ओर वे आश्चर्य से देखने लगीं। वे अब काफी कुछ समझ रही थीं'''निर्मल बाबू ने अलग से उन्हें भी समझाया था कि भाई साहब का दिमाग ठीक नहीं रहता इसलिए फिलहाल उन्हें छुट्टी दी जा रही है। पर ये समझो भाभी कि यह उनके भले के लिए ही है—समझ लो आराम करने के लिए छुट्टी है, जमा पैसे भी दे ही दिये जा रहे हैं, महीने-दो महीने में लडके राजेन को भी वहीं जगह दे दी जायेगी, मेरी देख-रेख में रहेगा, कोई तकलीफ नहीं होगी। घर

की गाड़ी यथावत् चलती रहेगी।

निर्मल बाबू घर के हितैषी माने जाते थे। उन्हें संतोष था कि ठीक ही कह रहे होंगे। जिसने जीवन से अधिक आकांक्षाएँ करना सीखा ही नहीं, उसे किसी सपने के टूटने का दुख नहीं होता। लड़का हाथ-पाँव का हो गया, जीवन-क्रम यथावत चलता रहेगा, इन्हें आराम करने को मिलेगा —इससे अधिक चाहिए भी क्या। साल-दो साल में बहू आ जाये, पोते का मुँह देख लें, इसके बाद इनके सामने ही चल बसें— इससे बड़ी उपलब्धि की कामना और क्या कर सकती है। यही तो औरत का परम सौभाग्य है!

उनकी दृष्टि को लक्ष्य कर लल्लन बाबू ने पूछा, "क्या देख रही हो?..."

"कुछ भी नहीं। निर्मल भैया बता रहे थे, वही रुपये हैं क्या?"

"हाँ, ले जाओ, ले जाओ इन्हें," लल्लन बाबू ने लापरवाही से सारी रकम उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा।

राजेन की माँ ने रुपये ले लिये, पर गिना नहीं। अब तक उनके सामने यह नहीं किया, आज ही क्यों करें?

"आज तक तुम्हे कुछ नहीं दिया आज दे रहा हूँ...यह मेरी सारी जिन्दगी की कमाई है, सारी जिन्दगी की कीमत...।" और लल्लन बाबू जोर से हँस पड़े, दीवारों को कँपाने वाली छतफाड़ हँसी।

क्या वे मजाक कर रहे हैं? पर यह उनकी आदत नही। और यह ऐसी हँसी। हे भगवान, क्या फिर कुछ हो गया? कुछ समझ नही पा रही थी, क्या करे। राजेन भी पता नहीं कहाँ चला गया। सहमी आँखो से कभी उन्हें, कभी हाथ में लिये उन रुपयों को देखती खड़ी रही।

"क्या देख रही हो?" लल्लन बाबू ने फिर कहा, "बहुत कम हैं न मेरी जिन्दगी का मोल। लेकिन इससे ज्यादा नही मिल सकता।"

राजेन की माँ और अधिक भयभीत हो उठी। ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं? ये रुपये कम तो नहीं। रुपया होता है एक सुखद वर्तमान— अतीत के घावों को भरने, और भविष्य की आशंकाओं से मुक्त करने की अद्भुत शक्ति से सम्पन्न। जिन हाथों में कभी दो-ढाई सौ से ज्यादा रुपये

आये ही न हो, उन हाथों में साढ़े चार हजार बड़ी रकम ही थी।

"नहीं, कम तो नही।"

"नही, नही। यह कम है।...तुम कहो कि कम है, कहती क्यो नहीं हो कि कम है, कम है? मेरे जीवन का यह मोल इतना कम? ठीकरे को भी सिर पर क्यो धार लेती हो? तुममें जरा भी असन्तोष क्यो नहीं है...कहती क्यों नही हो कि कम है, बहुत कम है, बहुत ही कम...?"
और वे फिर पहले जैसी तेज हँसी हँस पड़े।

उनकी पत्नी विस्मय से जड़ होकर वहीं अवाक् खड़ी रही। यह सब वे क्या कह रहे थे। इसका क्या अर्थ था। विक्षिप्त मन की अर्थ-गम्भीरता से भरी बातें या पागलपन की बहक—ऐसी दुखद बात सोचना भी नहीं चाहतीं। कहाँ गया राजेन, आकर इन्हें सँभालता क्यो नही...?

ललन बाबू रह-रह कर हँसे जा रहे थे।

एकाएक वे उठ खड़े हुए। कुछ सोचा, फिर बाहर आँगन मे निकल गये। कमर में पड़ी तावीजों वाली करधनी उन्होंने तोड़ कर कोने मे फेंक दी और चीखे—

"कहाँ गये सब लड़के। चीलों को भगाते क्यों नही?"

चोट खाए हुए पशु की चिंघाड़ की तरह उनकी चीख शाम के झुट-पुटाये आसमान में खो गयी। कुछ क्षण वे जैसे अपनी बात का जवाब मिलने का इन्तजार करते रहे फिर उसी स्वर मे चिल्लाये—

कोई नहीं आता?...ठीक है...। मैं खुद उन चीलों को मार भगाऊँगा...।"

और बिफरते हुए वे घर से बाहर चले गये।

टाट का पर्दा खिसका कर अपने ओसारे से नन्दो बुआ भी यह सब देख रही थी। सिद्ध करायी तावीजों वाली करधनी तोडते हुए ललन बाबू सहसा उसे बहुत विकराल लगने लगे थे। उनके जाने के बाद किसी घोर अनिष्ट की आशंका से भयभीत वह आँगन में आयी और कोने मे फेकी काले धागे वाली करधनी की ओर भय-विस्मित-सी देखती रही, पर उसे छूने की हिम्मत नही कर पा रही थी—मरा हुआ साँप भी भयभीत

करता है

तभी उसे तरह-तरह की दूसरी आशंकाओं ने घेर लिया—पास मे कितने ही ताल-पोखरे और कुएँ थे। राजेन की माँ अलग जान छोड़ कर चीख रही थी···उन्हें उसी तरह छोड़ कर वह भी बाहर की ओर दौड गयी। बुढ़ापे का स्थूल शरीर ज्यादा दूर तक नही ढो सकती थी। मुहल्ले के कुछ लड़को को यहाँ-वहाँ भेजकर खुद रघुनाथ साव की दूकान की ओर बढ़ी—जहाँ मुहल्ले की बहुत-सी खबरें मिलती थीं।

रास्ते मे ही उसे राजेन आता दिखायी दिया। दम फूलने से रुकती साँस जैसे फिर लौट आयी।

"अरे देख बेटा, तेरे बाप फिर बहक कर कही चले गये हैं।"

"कहाँ ?"

"यही तो नही पता। अभी-अभी घर से निकले हैं, मैं भागती आ रही हूँ···।"

राजेन कुछ क्षण विचलित-सा खडा रहा। एक इच्छा हुई कि कहे, जाने दो। अब रोज कहाँ-कहाँ उनके पीछे दौड़ता रहे। पर यह पिता-द्रोह एक क्षणिक विक्षोभ मात्र था। क्या वह इतना निकम्मा है कि ऐसी हालत में उन्हें भटकता छोड दे। इस तरह की बात दिमाग में आयी ही क्यो···उसे अपने आप से ही संकोच होने लगा। अगले ही क्षण उसने अपनी किताबें नन्दो बुआ को थमायी और तेज कदमों से नई बस्ती की ओर दौड गया।

करीब आध घंटे बाद उसे लल्लन बाबू रामलखन जी के मकान के पीछे एक पेड़ के नीचे बैठे मिले। रामलखन जी के मकान में आज रोशनी नही थी। मालूम होता था, सभी लोग कही गये हुए थे। लल्लन बाबू ने अपने इर्द-गिर्द कई पत्थर इकट्ठा कर लिये थे और मुँह से जोर-जोर से सिटकारी मारते चिड़ियों को उडाने के अन्दाज में एक-एक कंकड़ अँधेरे मे फेक रहे थे।

"बाबू !"

उसकी आवाज सुन कर लल्लन बाबू खुश हो गये।

"तू आ गया ? कहाँ रह गया था ? ले ये पत्थर, इन चीलों को

भगा दे ।

लल्लन बाबू की कल्पना से अनभिज्ञ राजेन उनकी ओर आश्चर्य से देखने लगा।

"चीलें ? कैसी चीलें ?"

"अच्छा ! क्या भाग गयीं ? चल ठीक है। बेचारा वह बूढ़ा बैल ! हरामजादी उसे आराम से मरने भी नहीं दे रही हैं।"

सोलह

हड़तालें खत्म हो गयी और इम्तहान की तारीखें फिर तय हो गयी थी। उस दिन शाम को किसी तरह बाबू को घर लाकर दवा के जोर से सुला दिया था। बच्चों की तरह उन्होंने उसके हाथ से गोली लेकर मुँह में रखी और कुछ देर बाद नाक घुरघुराने लगे थे। यही क्रिया कुछ और चुस्ती के साथ अगले दिनो भी जारी रही और गनीमत थी कि इधर कई दिनो से वे बहके या सनके नहीं। इम्तहान के लिए उसकी तैयारी फिर यथावत् चलने लगी।

एक दिन जब वह पढ़ रहा था तो लल्लन बाबू मोढ़ा खींचकर उसके पास बैठ गये। इस तरह कभी बैठते हैं तो वह उनकी ओर नहीं देख सकता। किताब में गड़ी उसकी गर्दन जैसे कुछ और गड़ गयी।

अब वे पूछेंगे उसकी पढ़ाई का हाल-चाल, उसने सोचा और अपने आपको उनके सवालो के जवाब के लिए तैयार कर लिया।

कई क्षण बीत गये, पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।

उसने सिर उठाया। बाबू लगातार उसकी ओर देख रहे थे। कोई बात होठों तक जैसे आते-आते रह जाती। वे क्या कहना चाहते हैं, क्या देख रहे है ? उसने पूछना चाहा, पर पूछ नहीं सका।

लल्लन बाबू कुछ देर और वही बैठे उसकी किताबें उलटते-पलटते रहे। फिर उन्हें भी रख दिया और चुपचाप अपने बिस्तर पर जाकर लेट

रहे

क्या देख रहे थे बाबू ?

पूछा उसने माँ से, अगले दिन जब वह खाना खिलाने बैठी। और दिनों की तरह वह भी उसे रह-रह कर देख रही थी। अधपके बालों और माथे व आँखों के नीचे चिन्ता की असंख्य रेखाओं के कारण असमय ही बूढ़ा दिखने वाला उनका चेहरा जैसे और अधिक चिन्ताकुल हो आया था। क्या सचमुच कोई बड़ी दुखद बात थी ?

"तू इस तरह क्या देख रही है···?'

"कुछ नहीं रे !" माँ के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट उभरी पर साथ ही आँखों की पीड़ा जैसे और बढ़ गयी।

"फिर इस तरह क्या रह-रह कर देखती है। तू भी और बाबू भी···। क्या मुझे कुछ हो गया है ?"

"नहीं, तुझे कुछ क्यों होने लगा···।"

"फिर क्या बात है ?"

"यह देखती हूँ कि तू अभी बहुत छोटा है···।"

"छोटा !" राजेन ने कहा, "कहाँ छोटा हूँ ! बाबू से सिर्फ चार जौ छोटा हूँ। पर अब इसी रसोई के दरवाजे में मैं नहीं समाता। बाहर वाला दरवाजा भी सिर छूता है, होशियार न रहूँ तो चोट लग जाये, तू कहती है छोटा हूँ ··कहाँ छोटा हूँ···।"

अपने अंश के फलने-फूलने पर क्षण भर को चेहरा गर्व-मिश्रित खुशी से भर उठा। लेकिन खुशी की यह चमक शाश्वत चिन्ताओं के जाल में अगले ही क्षण जैसे फिर खो गयी।

"मैं इस तरह नहीं कह रही हूँ रे। कद-काठी में तो बाप पर ही गया है, उनसे भी दो जौ ऊपर ही निकलेगा···पर मैं तो उमर से कह रही हूँ। उमर से तो तू छोटा ही है, सोचती हूँ, कैसे सँभाल पायेगा यह सब···।"

"क्या सब ?"

"क्या बाबू ने तुझे कुछ नहीं बताया ?"

"बाबू ?···वे क्या बतायेंगे ? कुछ बताने लायक भी हैं वे ? सोचता

हूँ उन्हें फिर एक बार डाक्टर को दिखा दूँ राय साहब ने भी पूछता हूँ देख क्या कहते हैं लेकिन बताना क्या है व मुझे क्या बताते ?"

—हे राम ! बेटे से यह अप्रिय भी कहना उन्ही के माथे पड़ा। पर यह कहना ही था, इसलिए बताया सब ! निर्मल बाबू की बातों से जो कुछ भी समझा था, वह सब कुछ, सिलसिलेवार !

राजेन ने कुछ कहा नही। माँ ने भी कुछ कहने के लिए जोर नही दिया—वह क्या चाहता है, यह समझने के लिए क्या कभी उसके कुछ कहने की जरूरत पड़ी है ? वह कब क्या चाहता है, कभी तो मुँह खोल कर नही कहता—बचपन से आज तक कभी नहीं कहा है। न कभी दूध के लिए रोता-चिल्लाता था, न खाना-पानी के लिए मचला करता, फिर भी उसकी हर जरूरत समझी है और अपने भरसक पूरी की है। पर आज ही इतनी अवशता, इतनी असमर्थता, क्योंकि उसकी इच्छा समझकर भी पूरी नहीं कर पा रही है ···? विवशता आँसुओं में फूट पड़ी।

"रोती क्यों है ?"

"क्या करूँ रोऊँ न तो !' माँ ने आँख पोंछने का प्रयत्न करते हुए कहा, "बाप के रहते औलाद की किस्मत फूट जाये, रोऊँ न तो क्या करूँ, बोल · ।" और इसके साथ ही बाँध जैसे फिर टूट चला···।

राजेन ने चुपचाप खाना खत्म किया और फिर बिना कुछ कहे उठ खड़ा हुआ। वह एक बात में कम से कम पिता का एहसानमन्द था—उन्होंने उसे इच्छाओं पर अंकुश रखने की आदत लगा दी थी। इच्छाओं की मरीचिका से मुँह मोड़कर यथार्थ को झेलना ही उसकी नियति रही है। और आज फिर यही करना पड़ा तो उसमें नयी बात क्या हो गयी ? आज तक उसके साथ जो होता आया है वही तो फिर दुहराया गया है। फर्क सिर्फ यह था कि अब तक अंकुश पिता का था, पर अब ? अब अचानक उसकी जीवन-दिशा पर कैसे यह विराम लग गया ? इसके लिए वह किसे दोष दे ?

दोपहर को कालेज में इतिहास के अध्यापक एक विशेष कक्षा लेने

वाले थे। अब उसके लिए इसका कोई अर्थ नहीं रह गया था। फिर। यांत्रिक ढंग से अपनी किताब-कापियाँ सरियाता कालेज जाने की तैयारी करने लगा। इस बीच उसने बहुत कुछ सोच डाला। प्रिंसिपल सेन साहब और अँग्रेजी के अध्यापक खरे साहब उसे बराबर बढ़ावा दिया करते थे। कहते थे—अगर अच्छा डिवीजन आया तो आगे पढ़ने के लिए स्कालरशिप मिल सकती थी। उससे पढ़ाई का खर्च निकल सकता था लेकिन घर का खर्च? उसने सोचा —मौका मिलेगा तो उनसे भी बात करेगा। हो सकता है वे कोई और रास्ता बता सकें।

इसी बीच उसकी निगाह बाबू पर पड़ी। वे अपनी चारपाई पर दवा के जोर से बेखबर सोये थे। क्या वे सचमुच बाबू ही हैं? एक क्षण को वे गैर-से लगे। देखते-देखते बालों की सफेदी बरौनियों तक आ गयी है। शरीर हड्डियों का ढाँचा-भर रह गया है, और चमड़ी भी मानो खून न रह जाने से सफेद पड़ती जा रही है। क्या सचमुच वे सनक गये हैं, उनका दिमाग फिर गया है, वे पागल हो गये हैं···? इस बात पर उसने पहले इस तरह कभी नहीं सोचा था, और न पहले यह बात कभी इतनी सच मालूम हुई थी। और क्या इसीलिए लग गया है उसकी जीवन-दिशा पर यह विराम···! वे क्यों चले गये उस रात उस बनते हुए मकान की छत पर और इस तरह खुद ही क्यों न्यौत लिया अपना दुर्भाग्य? पर क्या सारी कहानी इतनी ही है? या कहीं न कहीं वे चीलें जरूर हैं जिन्हे बाबू उस दिन अँधेरे में पत्थर मार-मार कर भगा रहे थे···?

सुबह से हो रही हल्की बूँदाबाँदी अब थम चली थी। फरवरी के उतार का मौसम था और धूप में तेजी आने से ठंड कम पड़ने लगी थी। पर आज वर्षा के कारण जैसे जाडा फिर लौट आया था और हल्की नमी पाकर मिट्टी महक उठी थी। पर मौसम का सुहानापन राजेन का मन हल्का नहीं कर सका।

रामलखन जी के घर के आगे वाले फाटक का कुंडा हल्की झन-झनाहट के साथ खुला। कालेज जाते हुए राजेन की निगाह उधर उठी और इसके साथ ही वह अपनी सारी चिन्ताएँ भूल गया। ये जगदीश और

मजु थे जो अभी अभी बाहर निकल कर अब किसी सवारी का इन्तजार करते सड़क के किनारे खड़े थे। उसके चेहरे पर पहचान और प्रसन्नता के मिले-जुले भाव उभरे और राजेन लपक कर उनके पास पहुँच गया। जगदीश ने भी आगे बढ़ कर तपाक से उसे करीब-करीब बाँहों में भर लिया। वह उससे करीब पाँच साल बड़ा था, पर इन्हीं चार-पाँच महीनों मे जैसे वह पहले के मुकाबले बहुत अधिक वयस्क हो गया था। लम्बा-तगडा शरीर जैसे कुछ झटक कर ढीला पड़ गया था और चेहरे व आँखों में हर समय बनी रहने वाली खुशमिजाजी और लापरवाही की जगह एक खास तरह के रूखेपन और थकान ने ले ली थी। मजु रोयेदार कालर का एक काला चेस्टर पहने उसकी ओर कुछ कौतूहल से देख रही थी।

राजेन ने एक साथ बहुत-सी बातें पूछ डालनी चाही। पर अपनी उत्कण्ठा को दबाते हुए इतना ही कह पाया—"बहुत दिन बाद मिले हो···!"

"यही तो मैं भी कहता हूँ, कहाँ रहा तू···?"

"मैं तो यही था, तुम्हीं नहीं मिले। मै कई बार उस जगह भी गया जहाँ रिहर्सल होता था। बाद में सुना कि तुम कही चले गये थे।"

"लो, इसे भी मालूम है हमारा किस्सा!" जगदीश ने जैसे उससे और मंजु दोनों से कहा फिर मंजु की ओर देख कर धीरे मे हँस पड़ा। मजु भी हँस पड़ी। ठीक जगदीश की छाया की तरह।

"मैंने एक दिन आपको देखा था।" इस बार राजेन ने मंजु से कहा।

"मुझे? कहाँ?"

"आप रिक्शे पर किसी महिला के साथ थीं···।"

"तो रोका क्यों नहीं, मैं शायद चाची जी के साथ जा रही थी···।"

"मैं उन्हे नही पहचानता।"

"ओह हाँ! वे इन्हीं रामलखन जी की पत्नी हैं।"

राजेन के कुछ बोलने के पहले ही जगदीश ने पूछा, "लेकिन तू यहाँ कैसे? क्या इधर ही कहीं रहता है?"

"हाँ!"

किधर ?

राजेन को फिर उसी दिन की तरह संकोच हुआ जैसा रामलखन जी के यह पूछने पर हुआ था। उसने चुपचाप उस ओर उँगली उठा दी जिधर उसका घर था। अब शायद उन्ही की तरह यह भी उपेक्षा के भाव से कहे, 'ओह !' पर जगदीश ने ऐसा कोई भाव प्रकट नहीं किया। उसने शायद उधर देखा भी नहीं, उसकी उँगली की ओर ही देख कर सन्तुष्ट हो गया और हल्के से सिर हिला दिया।

"लेकिन मैं नहीं देख पायी।" मंजु ने कहा, "ठीक से दिखाइए न, चलिए हम आपके घर चलें···।"

"हाँ, चल सकती है, पास ही है, यह सड़क जहाँ खत्म होती है वही से बायें घूम कर चौथा मकान है···।" राजेन ने उत्साह के साथ कहा। पर मन ही मन उसे और अधिक संकोच होने लगा कि अगर ये चले तो उन्हें कहाँ बैठायेगा, कैसे उनकी खातिर करेगा।

"अरे भाई, यह उधर रहता है, पुरानी बस्ती में," जगदीश ने कहा "इधर के सब साले ज्यादातर काले धन वालो की तरह इसकी कोई कोठी नहीं है। कहाँ खातिर करेगा तुम्हारी···।"

"कोठी की आदत तुम्हारी ही होगी। मुझे तो ऐसे ही घर में रहने की आदत है।"

प्रेमिका पत्नी के हल्के व्यंग्य पर जगदीश झेंपा भी और हँसा भी।

"मैं तो इसकी परेशानी की बात सोच कर यह कह रहा था।" जगदीश ने कहा। "लेकिन तुम्हें ताना देने की जरूरत नहीं। नेता का बेटा हूँ, जन-सम्पर्क से कभी नही घबराता···पर हम फिर कभी चलेंगे इसके यहाँ !"

"क्यो ? आज क्यों नहीं ?" राजेन ने कहा।

"आज हमें कुछ जल्दी है।" जगदीश ने वहाँ से चलते-चलते कहा, "और देख न, मौसम कैसा हो रहा है। कही बारिश फिर होने लगी तो हमे रुक जाना पडेगा, और बहुत देर हो जायेगी।···लेकिन यहाँ रिक्शा या स्कूटर कहाँ मिलता है, हमे इधर का कुछ खास अता-पता नही है···।"

राजेन भी उनके साथ हो लिया

"मुझे भी कुछ ठीक नहीं मालूम।" उसने कहा, "चलो शायद मार्केट के पीछे कोई रिक्शा-स्कूटर स्टैण्ड है···।"

"क्यों, तू इधर रहता है और तुझे यह भी पता नहीं?"

"हम लोगों का इस बस्ती से कोई मतलब ही कहाँ है।" राजेन ने सफाई दी. "हम तो बस्ती की इस सडक से होकर सिर्फ आते-जाते हैं। बस्ती वालों को ही अगर कहीं आना-जाना न होता तो शायद हमारी तरफ यह सड़क बन्द कर दी गई होती···।"

जगदीश ने उसकी ओर अजीब नजरों से देखा। कौतुकमय आश्चर्य के साथ—मानो किसी बच्चे ने अनजाने ही कोई बड़ी बात कह दी हो।

"तू तो बड़ी-बड़ी बातें करने लगा, कहाँ से सीख ली इतने दिनों मे ··!" उसने पूछा।

"किसी से नहीं," राजेन ने कहा, "एक दिन इधर से गुजरते हुए सुना था—एक घर मे एक मम्मी अपने बेटे को डाँट रही थी कि उधर न जाया कर, उधर गंदे-बदमाश लोग रहते हैं। मुझे हँसी भी आयी थी और डर भी लगा था।

"डर! डर क्यों?"

"मैंने पढा है। कुछ मुल्कों से गोरे लोग कालों से इसी तरह अलग रहते हैं।···अपनी बस्तियों में उन्हें नहीं आने देते। कालो के लिए अलग गंदी बस्तियाँ, अलग सडके, स्टेशनों पर, पार्कों में उनके लिए अलग बेंचें होती हैं।···क्या यह सच है···?"

"है तो! गांधी जी ने इसी के खिलाफ तो लडाई की थी।"

"उस मम्मी की बात से मुझे लगा था ऐसा ही भेदभाव यहाँ भी है। वहाँ काले-गोरे का भेद है तो यहाँ अमीर-गरीब का ऐसा ही भेद है···। है न!"

"उसी तरह का? वैसा तो नहीं, पर अमीर-गरीब में भेद तो है।"

"गांधी जी ने क्या इस भेदभाव के खिलाफ लड़ाई की थी?"

"पता नहीं! होते तो शायद लड़ते!"

"हाँ, लड़ते! क्या इसीलिए उन्हें गोली से मार दिया हत्यारे ने?"

हो सकता है लेकिन व नही तो क्या हुआ और लोग लड रहे हैं इसके खिलाफ

"और लोग ?"

"हाँ-हाँ !" जगदीश ने उसे आश्वस्त करने के स्वर में कहा, "बहुत से लोग लड़ रहे हैं उसके खिलाफ, मेरे पप्पा लड़ रहे हैं। वे सभी लड रहे हैं जो गांधी जी के पीछे चलते है, जो उनकी बात मानते है।"

राजेन कुछ नहीं बोला। कुछ कदम चलने के बाद कहा, "एक बात कहूँ, बुरा तो नही मानोगे ?"

"क्या ?"

"मुझे ऐसा नहीं लगता।"

जगदीश कुछ गम्भीर हो गया। एक क्षण बाद पूछा, "क्यों ?"

"लडते तो ऐसी क्यों होतीं · ?"

जगदीश हँस पड़ा। हँसते-हँसते ही बोला, "अबे तू किसी एक मम्मी की बात से सारी दुनिया को तौलने लगा··। मम्मियाँ तो हमेशा अपने बच्चों की ऐसी फिक्र करती हैं। अपने बच्चों को छोड़ उन्हें सारी दुनिया ही बदमाश नजर आती है। दूसरे सारे बच्चे उन्हें आवारा और शरारती मालूम होते हैं···।"

लगता था, राजेन ने इस बात पर काफी सोचा था इसलिए उसे कोई जवाब सोचने की जरूरत नहीं पड़ी। जगदीश की बात पर उसने कहा, "मेरा मतलब किसी एक मम्मी से नही है। मेरा मतलब ऐसे सारे लोगों से है जो यह सोचते हैं कि गंदे और छोटे घरों में रहने वाले गरीब लोग खराब और नीच होते हैं।···मैं तो अखबार में नेता लोगों का भाषण पढ़ता हूँ। भाषण तो सभी अच्छे होते हैं। लेकिन लगता है कि वे लोग जो कहते है वह हो नहीं रहा है।"

जगदीश ने फिर राजेन की ओर अजीब नजरों से देखा।

"क्यों रे ! तू तो न कभी हड़तालों में भाग लेता था, न जलूसो वगैरह में···पर यह सब कहाँ से सीख लिया? क्या अब इस सबमें भाग लेने लगा है ?"

"मैं हड़ताल वगैरह में अभी भी भाग नही लेता। लेकिन इसमे जो

नाग नही लेता क्या वह सोचता भी नही···?"

"ठीक है ! ठीक है ! मैं बताऊँगा पप्पा से तेरी बातें।" जगदीश ने कहा, "कहूँगा कि जनता क्या सोच रही है। नेता बने रहना चाहते हो तो वैसा ही सोचो जैसा जनता सोचती है।···लेकिन अब बता, कहाँ मिलता है स्कूटर ! मार्केट तो आ गया तेरा···।"

बीच में एक खूबसूरत लम्बा पार्क था जिसमें बच्चों के खेलने के लिए तरह-तरह के खेल—झूले, सी-सॉ वगैरह लगे थे। इसका उद्घाटन भी बाबू जी—जगदीश के पिता ने ही किया था। हमारी तरफ भी ऐसा पार्क क्यों नही बनता ··? उस वक्त राजेन ने सोचा था। इस पार्क के ही तीन ओर खूबसूरत, कलापूर्ण डिजाइनों में बनी दूकानों वाला बाजार था। होटल-रेस्तराँ थे और एक कोने में सिनेमाघर जिसके नियनलाइट से जग-मगाते भारी पोस्टर दूर से दिखायी दिया करते। उसी के सामने रिक्शा-स्कूटर स्टैण्ड था। थोड़ी देर पहले पानी बरसने से इस वक्त वहाँ कोई सवारी नहीं थी। उन्हें कुछ देर रुकना पड़ा। जगदीश ने एक दूकान से किसी शर्बत की तीन बोतलें खुलवायी।

मंजु अब तक चुप थी। उसने राजेन से पूछा, "आपको हमारे आने की खबर लग गयी थी तो फिर समारोह में क्यों नहीं आये ? या आये थे ?"

"नही। मैं नही आ सका।"

"क्यों ?"

"मुझे अखबार से पता चला था, पर मेरे पिताजी बीमार थे···।"

'बीमार ?" इस बार जगदीश ने पूछा। "अब क्या हाल है ?"

"अब भी बीमार है।"

"अब भी बीमार हैं ? तो अब तक क्यों नहीं बताया। लगा फिला-सफी बतियाने अच्छे से अच्छे अस्पताल में इलाज के लिए भिजवा सकता था। रोज कितने नत्थू-खैरों के लिए तरह-तरह के काम करता हूँ, तेरे पिताजी के लिए नहीं कर सकता !"

राजेन कुछ सोचने लगा। इसे बाबू की बीमारी का सारा किस्सा मालूम होगा, कि वे रामलखन जी के मकान से गिर कर बीमार पड़े थे,

ता क्या इसका यही रवैया रहेगा ! शायद रहे।

"क्यों, क्या सोचने लगा ?" जगदीश ने पूछा।

"उन्हें ऊपर से कुछ नहीं हुआ है।...अस्पताल में इलाज हुआ था, वहाँ डाक्टर ने सब कुछ किया। पर उनके दिमाग पर असर है...। डाक्टर कहते हैं यह ऐसे ही रहेगा...।"

"ओह ! यह बात है !" जगदीश ने कहा, "फिर भी सोच ले। इस सिलसिले में किसी की मदद की जरूरत हो तो बतलाना !"

"हाँ ! हाँ ! अब मिल गये हो तो बताऊँगा ही।" राजेन ने कहा और शरबत पीता रहा।

जगदीश और मंजु भी चुप रहे। कुछ देर बाद शरबत खत्म कर जगदीश ने एक सिगरेट सुलगाते हुए कहा, "अब तेरा क्या इरादा है। इस साल इन्टर तो तू पास हो ही जायेगा।"

राजेन ने इसका भी तुरन्त कोई जवाब नही दिया। जगदीश को दुबारा पूछना पड़ा।

"अभी मैं कुछ नहीं जानता। बाबू की जो हालत है, उसमें आगे पढना तो मुमकिन नही।...सुनता हूँ बाबू की ही जगह मेरी नौकरी पक्की हो गयी है, फिर भी अभी से क्या कह सकता हूँ।"

"ठीक है, इसमें भी कोई अड़चन हो तो बताना। या ये नही तो कोई दूसरी जगह भी निगाह में हो तो बता देना...।"

"तुम्हारा क्या इरादा है ?"

"मेरा !" जगदीश हँस पड़ा। "मेरा क्या है। तू तो कुछ कर सकता है। मैं किसी काम का नही निकला इसलिए जनसेवा में ही जिन्दगी गुजार दूँगा।" वह फिर हँस पड़ा। नेताओं की सोहबत में वह उन्ही की तरह बात करना भी खूब सीख गया था।

एक स्कूटर किसी सवारी को उतार कर स्टैण्ड की ओर आ रहा था।

"अच्छा दोस्त, मै चलूँ !" उसने राजेन का हाथ थाम कर जोर से दबाते हुए कहा, "पप्पा इन्तजार करते होंगे। नही पहुंचूंगा तो देश पर संकट आ जायेगा...।"

"देश पर संकट !"

"हाँ, हाँ ! वे सदा देश को ही सामने रखकर सोचते हैं । मैं देर से घर पहुँचा तो देश पर संकट, सोकर देर से उठा तो देश पर संकट, जब वे चाहें और मैं सामने न हुआ तब देश पर संकट ।" अब श्री सदानन्द जी के तार पर तार आ रहे हैं दिल्ली पहुँचने के लिए, अगर वे नहीं जायेंगे तो देश पर भारी संकट आ जायेगा, और अगर मैं उन्हें छोड़ने स्टेशन न पहुँचा तो तब तो देश रसातल को पहुँच जायेगा" । ठीक है, बाइ···टा···टा···।

जगदीश और मंजु स्कूटर पर जा बैठे । कुछ देर फट्-फट् करते हुए स्कूटर लचककर आगे बढ़ा और देखते-देखते नजरों से ओझल हो गया ।

सत्रह

राजेन को याद नहीं कि पिता के हाथों आखिरी बार कब पिटा था ।

पर अब उसे लगता था कि आदमी सिर्फ बचपन में ही नहीं, उसकी सीमा से बाहर निकलने के बाद भी पिटता रहता है । सिर्फ पीटने वाले हाथ बदल जाते हैं !

अब यह हाथ किसका था ?

—बचपन में पिटता तो घर के बाहर वाली घोड़िया पर आ बैठता । अन्दर बाबू की गरजदार आवाज सुनायी देती रहती और वह भीतर जाने की हिम्मत तक न करता । वह सहमा-सहमा सूनी आँखों आसमान ताका करता । सामने के इनारे के पास पीपल के पेड़ पर न जाने कहाँ आकर जैसे असंख्य चिड़ियों का झुंड हर वक्त चह-चह करता रहता । धीरे-धीरे कोई चिड़िया उसकी अपनी चिड़िया बन जाती । वह कहीं भी फुदकती, उड़कर कहीं भी जाती, उसकी नजरें दूर तक उसी पर टिकी रहतीं और यही देखते हुए वह अपनी मार भूल जाता ।

लेकिन तब बाबू का गरजना धीरे-धीरे बन्द हो जाता । कुछ देर

बाद वे आते और उसे गोद में उठा कर चुमकारते हुए घर के भीतर ले जाते। और वे नही तो नन्दो बुआ आती। अपने खुरदरे हाथो से उसके आँसू पोंछती, उसे अपने ओसारे में लिवा जाती। किसी पोटली से निकाल कर गुड़-चना खिलाती फिर इकलौते बच्चे को मारने के लिए उलाहने देती उसे माँ के पास छोड़ जाती।

क्या अब वह फिर अपना दुख इसी तरह भूल सकता है ?

एक रात वह पीपल का पेड़ आँधी मे हरहराता गिर पड़ा था। उसे बहुत दिनों तक उसी छूँछी जगह को देख कर दुख होता रहा। अब वे चिड़ियाँ कहाँ बैठती होंगी ! और अब उसे चुमकारने कौन आयेगा। बाबू ! या फिर नन्दो बुआ···। अब उसकी मैली-कुचैली पोटलियों में क्या होगा···!

लेकिन अब पीटने वाला हाथ शायद अधिक मजबूत है। क्या उसी हाथ ने कहीं बाबू को अपंग कर दिया है और उसके आँसू पोंछने की ताकत नन्दो बुआ के खुरदरे हाथों में अब नही है !

वह पीपल का पेड उस दिन क्यों गिर गया···?

मधी-मधाई लीक भी आसानी से नही टूटती। उसके अनुसार पढने के लिए वह अब भी बैठा करता। पर यह निष्प्रयोजन है, जल्द ही यह सब छूट जायेगा—यह एहसास पर पल सालता रहता, और कुछ ही देर मे पढ़ाई से मन उचट जाता। इसके बाद वह घर में भी ज्यादा देर न रह पाता। उठ कर कही चला जाता। कभी कालेज, कभी साथ मे पढने वाले किसी लड़के के यहाँ। सिर पर इम्तहान होने से वे सब पढ़ने मे मशगूल होते, और उसे देख कर भी यही समझते कि पढ़ाई-लिखाई के सिलसिले में ही आया होगा। किसी के सामने उसकी जैसी समस्या न थी। उसे ईर्ष्या-सी होती, पर यह सब उन्हे बिना जताये, पढ़ने के ही बहाने कुछ देर उनके साथ गुजार लेता। पर यह भी अधिक देर न चल पाता तो सडको पर इधर-उधर घूमा करता। और अक्सर हर जगह से ऊब कर जब घर की ओर रुख करता तो घर के पास पहुँच कर भी घर न जाता। नयी बस्ती के पार्क में बीचोबीच हरी घास का लम्बा

मैदान था और चारों ओर करोटने की झाड़ियों से घिरी फूलों की क्यारियाँ। वह किसी खाली बेंच पर बैठ जाता।

पहले कब वह यहाँ कहीं बैठा था? लेकिन वह बहुत पहले की बात है, और पार्क भी यह नहीं था। उस शाम वह मंजु को छोड़ने जा रहा था, और फिर कुछ देर के लिए दोनों पार्क में जा बैठे थे। कहीं से आम के बौरों की एक हल्की-सी गंध (हो सकता है उसकी कल्पना में ही हो, क्योंकि आस-पास ऐसा कोई पेड़ नहीं था) उसे बेध गयी···। अभी चार-पाँच दिन पहले ही तो मंजु के साथ इसी तरफ से होते हुए पार्क के दूसरे छोर पर बाजार तक गया था—या नहीं, चार-पाँच दिन पहले नहीं। मानो अभी कुछ देर पहले ही मंजु यहाँ उसके साथ आयी हो और जगदीश के साथ स्कूटर पर बैठ कर अभी-अभी चली गयी हो। स्कूटर की फट्-फट् जैसे अभी भी उसके कानों में बज रही थी। धीरे-धीरे उसे वहाँ बैठना असह्य लगने लगा···।

वह उठ खड़ा हुआ।

शाम का धुँधलका फैलने लगा था। पार्क के उस छोर पर, जिधर बाजार था, कुछ पुराने शीशम के पेड़ पार्क की योजना में शामिल कर छोड़ दिये गये थे। सिनेमा के पोस्टरों की दूधिया रोशनी उनकी पत्तियों के बीच से छनकर पार्क में भी आ रही थी। उन्हीं पेड़ों के नीचे एक बेंच पर कोई और बैठा था। सफेद धोती-कुर्ता पहने कद्दावर आकृति, बेंत की एक मोटी छड़ी बगल में ही बेंच से टिका कर रखी थी। साथ में इधर-उधर कूदता एक छोटा बच्चा। अँधेरे के कारण वह तुरन्त पहचान नहीं सका था—यह राय साहब थे जो अपने पोते को शायद यहाँ टहलाने ले आये थे।

उनके पास जाये या नहीं? कहीं उनके एकान्त में बाधा न पड़े। पर ऐसे एकान्त-सेवी भी तो वे नहीं हैं। हमेशा लोगों को अपनी स्नेह-सहानुभूति और अच्छी सलाह ही देते हैं। वह धीरे-धीरे उन्हीं की ओर बढ़ गया।

"अरे राजेन!" उसे देखते ही उन्होंने कहा, "आओ, आओ, बैठो···।" उसे जगह देने के लिए वे बेंच पर ही एक ओर को सरक

गये ।

राजेन उनके पौत्र के साथ-साथ खेलने की मुद्रा में घास पर ही बैठ गया । कुछ तो उनकी प्रतिष्ठा के भाव से और कुछ इसलिए भी कि थोड़ी देर पहले एक बेंच पर ही बैठे-बैठे वह उकता गया था । राय साहब के यहाँ राजेन कई बार जा चुका था इसलिए उनका पोता उसे पह-चानता था । वह अपने नन्हे पैरों का पूरा जोर लगा कर दौड़ता हुआ आया और उसकी पीठ पर धम् से कूद पड़ा । राजेन ने हाथ फैला कर उसे लपक-सा लिया और दोनों बाजुओं पर उसे सँभाल कर जोर-जोर से झुलाने लगा । उसकी किलकारी-भरी खिलखिलाहट मानो पूरे पार्क में ही गूँज गयी । राय साहब मूँछों में हसते कुछ देर यह कौतुक देखते रहे ।

"तुम्हारे पिता का क्या हाल है अब ?" राजेन ने बच्चे को जमीन पर उतार दिया तो उन्होंने पूछा, "मैं तो कई दिनों से आ नहीं सका उधर, और न कहीं लल्लन बाबू से मुलाकात ही हुई ।"

"वैसे ही है ।"

"हूँ !" राय साहब ने इस तरह कहा, मानो यही सुनने की आशा कर रहे हों ।

"तुम्हारी पढाई तो ठीक चल रही है न ? इम्तहान तो बहुत नज़-दीक आ गये हैं । अच्छे नम्बरों से पास तो हो जाओगे ?" उन्होंने पूछा ।

"पास तो हो जाऊँगा," उसने कहा, "पर अच्छे नम्बर मिलेंगे या नहीं, पता नहीं ।"

"क्यों ? पढ़ने में तो तुम अच्छे रहे हो···!"

राजेन ने कुछ नहीं कहा ।

राय साहब ने ही फिर कहा, "हाँ, लल्लन बाबू की बीमारी से तुम्हारी पढाई का बहुत हर्ज हुआ···खैर, अच्छा से अच्छा करने की कोशिश करो । ध्यान तो खास तौर से आगे की पढ़ाई पर देना है । उसमें जरूर अच्छा डिवीजन आना चाहिए । आजकल होड़ बहुत है, बिना फर्स्ट डिवीजन मिले कोई अच्छी जगह मिलनी मुश्किल है··।"

"जी···।" राजेन ने जैसे मरी हुई आवाज में कहा ।

राय साहब ने उसके स्वर का निरुत्साह लक्ष्य किया। एक बार गौर से उसकी ओर देखा। फिर पूछा, "तुम कुछ चिन्ता में पड़े हो, कोई खास बात है क्या ?"

राजेन कुछ समझ नहीं पाया कि क्या कहे। मन में जो कुछ था उसे व्यक्त करने में अजीब-सी कठिनाई हो रही थी।

"आगे का···कुछ पता नहीं !" राय साहब की बात का उसने छोटा सा उत्तर दिया "

"क्यों !"

"बाबू को रिटायर कर दिया···।"

"रिटायर कर दिया ?" राय साहब ने अविश्वास से कहा, "कुछ दिन पहले तुम्हारे पिता के दफ्तर के लोग यह सुझाव लेकर आये तो थे लेकिन इतनी जल्दी यह कर भी दिया। यह कब की बात है ?"

"चार-पाँच दिन हुआ !"

राय साहब कुछ नहीं बोले। बगल में रखी छड़ी हाथ में ले ली और उसकी मूठ पर दोनों हथेलियाँ टिका कर चिन्तित मुद्रा में कुछ सोचने लगे।

—कितनी तरह की प्रतारणाएँ होती हैं जीवन में। और यह सब साधारण लोगों को ही झेलना पड़ता है। सीधे-सादे साधारण वित्त के लोगों के ही सामने क्यों आती हैं इतनी कठिनाइयाँ ! कितनी सरल, कितनी मामूली-सी आकांक्षाएँ होती हैं लोगों की—लड़के-बच्चे ठीक-ठाक रहें, पढ़-लिखकर किसी कायदे की जगह पर लग जाएँ ! पर यही जैसे जीवन का महासमर बन जाता है। सारी नियति, सारी उपलब्धि इसी एक लक्ष्य में सिमट कर रह जाती है···। उस पर भी अधिकतर यह पूरा नहीं हो पाता। कितने ही आकस्मिक आघात, कितनी ही बाधाएँ इसे पूरा नहीं होने देतीं।

अब वे राजेन की बात पूरी तरह समझने लगे थे। उनके पास सहानुभूति के झूठे शब्द नहीं थे। असलियत को दिलासा देने वाले झूठे शब्दों से बदला भी तो नहीं जा सकता···। प्रकट में पूछा, "तो अब तुम्हारा क्या इरादा है ?"

--मेरा क्या इरादा हो सकता है । दफ्तर के लोगो की कोशिश से शायद बाबू की ही जगह मुझे दिला दी जायेगी, वही तनखाह, वही ओहदा•••।”

राय साहब फिर कुछ नही बोले। लड़का ठीक ही तो कह रहा था—जिस स्थिति में वह था उसमें उसका इरादा हो भी क्या सकता था। वे व्यंग्य से भीतर ही भीतर एक कड़वी हँसी हँस पड़े•••यही तो होता है व्यवस्था का नियम। व्यवस्था को चलाते रहने के लिए हमेशा नया इंधन चाहिए•••और इस तरह कि व्यवस्था-चक्र का चारा बनने वाला हर व्यक्ति इसे अपने ऊपर एक एहसान समझे•••और बिडम्बना यह कि इसका माध्यम बनने वाले लल्लन बाबू के सारे संगी-साथी, सारे अच्छे-बुरे सँगी-साथी यह सब एक भला काम समझ कर ही कर रहे थे।

उन्होंने एक ठंडी साँस ली। छड़ी को फिर बगल में बेंच से टिका कर रखते हुए कहा, “इस हालत में इससे अच्छा और कुछ सोचा भी नही जा सकता।•••तुम्हारी पढाई बीच में ही रुक गयी, यह अच्छा नहीं हुआ •• पर जो हालत है उसमे तुम्हें काम मिल गया, यह अच्छा है।•••इस हालत मे पढाई तो चल ही न पाती ••और अगर काम भी न मिलता तब क्या हालत होती•••!” राय साहब बहुत धीरे-धीरे जैसे अपने आप से ही यह कह रहे थे•••।

राय साहब का पोता खेलते-खेलते कुछ दूर निकल गया था और अपने से कुछ बडी उम्र के बच्चो का फुटबाल का खेल देखता खड़ा था। जोश में आकर एकाध बार उसने भी अपने पैर चलाये और इसी प्रयत्न मे भद्द से जमीन पर गिर पडा।

राय साहब कभी उसके गिरने-पड़ने की बहुत फिक्र नही करते थे। पर सहसा आज, इस वक्त क्या हुआ कि वे एकाएक चिहुँक पड़े। मानो राजेन की विवशता उन्हें छूत की तरह भीतर ही भीतर कहीं डरा गयी थी। अगर आज वे न रहें, और अगर कहीं उनके लड़के को कुछ हो जाये तो इस बच्चे का क्या होगा•••! वे उठे, और तेज कदमों से बच्चे के पास पहुँचे। उसे अपनी गोद में समेटा और फिर उसी तरह उस बेंच के पास लौट आये। लेकिन अब वे बैठे नहीं। बेंच से टिकी छड़ी झुक कर उठा ली

और चलने को उद्यत हुए।

"तुम भी तो घर ही चल रहे हो न !···शाम भी काफी हो गयी है अब।" उन्होंने राजेन से कहा।

"जी हाँ। अब तो चलना ही है।···लेकिन मुन्ने को मुझे दे दें।"

मुन्ना शायद यही सोच भी रहा था। राजेन की गोद में आने के बजाय वह उछल कर उसके कन्धे पर आ बैठा और किलकने लगा। राजेन को भी उसके खेल में आनन्द आ रहा था।

राय साहब चिन्तित मुद्रा में बिलकुल चुपचाप चलते रहे। राजेन भी कुछ नहीं बोला। इसी तरह दोनों काफी दूर तक चलते रहे।

कुछ देर में वे राय साहब के घर के पास पहुँच गये। राजेन ने मुन्ने को उतार दिया, फिर चलते-चलते कहा, "अच्छा, ताऊ जी चलूँ। लेकिन मैं करूँ क्या ? पढ़ाई जारी रखूँ तो कुछ वजीफा मिलने की उम्मीद है, लेकिन उससे घर का खर्च नहीं चल पायेगा···।"

राय साहब ने उसके कन्धे को धीरे से थपथपाया—"तुम एक जिम्मेदार लड़के हो। जिम्मेदारी एक बड़ी चीज होती है, और उसे समझना उससे भी कहीं बड़ी···मैं और क्या कह सकता हूँ···।"

उन्होंने बच्चे को गोद में उठाया फिर मानो किसी छाया-मूर्ति की तरह धीरे-धीरे घर में चले गये।

राजेन कुछ देर वहीं ठगा-सा खड़ा रहा। फिर वह भी घर की ओर चल पड़ा।

अठारह

दो दिन पहले गर्मी की पहली बरसात के बाद अब रात को बस्तियों के इर्द-गिर्द झुंड के झुंड पतंगे मंडराने लगे हैं। रामलखन जी ने कमरे में अँधेरा कर दिया, फिर भी वे बदन पर न जाने कहाँ से गिर-गिर कर

बींध रहे हैं। फुल स्पीड पर चलता पंखा भी जैसे उन्हे भगा नहीं पा रहा है। अँधेरा उन्हे कभी अच्छा नही लगा है, पर कीड़े हैं कि जलती सिगरेट की हलकी लौ पर भी टूटे पड रहे हैं। इसलिए बत्ती जलाने की हिम्मत नहीं हो रही है। पर अँधेरे से भी डर लगता है। वह आदमी को आत्मसीमित, अकेला बना देता है।

इस खिड़की से उन्हे अपने अहाते का लान दिखाई दे रहा था। वहाँ भी सड़क की बत्ती से एक कोने को छोड़ कर सभी जगह अँधेरा फैला था। अभी दस दिन पहले इसी लान में रात ग्यारह-ग्यारह बजे तक महफिल जमी रहती। पास-पडोस के और शहर के कितने ही लोग—जिला कांग्रेस और सेवा समिति के लोग, कुछ खास दफ्तरों—योजना-विभाग, उद्योग-विभाग, सप्लाई दफ्तर वगैरह के कुछ अमले-अहलकार, चंद व्यापारियो के आदमी और कुछ दूसरे लोग जमघट लगाये रहते—और हर मामले मे देश प्रदेश की राजनीति से लेकर जिले के अफसरों के तबादले और सीमेंट, लोहे के कोटे-परमिट तक—उनके ऊपर रामलखन जी की साधिकार वाणी चलती थी। पर यह सब क्या हो गया? कैसा कुयोग आ गया। जो सितारा इतनी बुलन्दी से ऊपर उठा था उस पर यह कैसा ग्रहण लग गया। श्री सदानन्द का मंत्रिमण्डल गिरते धीरे-धीरे वह सारी भीड कहाँ छितरा गयी?

—श्री सदानन्द अपने समर्थकों की फौज लेकर दिल्ली गये थे, पर किसी आहत योद्धा की तरह लौट आये। मन्त्रिमण्डल में जगह देने का वादा कर नई कांग्रेस के कुछ सदस्यों को तोड़ कर विधान सभा मे अपना बहुमत सिद्ध करने गये थे, पर वह हो नहीं सका। कुछ समर्थक वहाँ पहुँच ही नही सके और कुछ ने अलग से हाई कमान को लिख कर दे दिया कि वे उनके समर्थक नही है। प्रदेश की राजधानी लौटने के बाद ही उनके खेमे मे भारी खलबली और भगदड़ मच गयी। अखबारो ने कार्टून छापे—जिनमें एक में बहुमत-रूपी नाव भँवर में पड़ी दिखायी गयी थी जिस पर से लोग कूद-कूद कर भाग रहे थे और दूसरे में वे घोड़े पर क्षतविक्षत हो बहुमत रूपी टूटी तलवार लिये मैदान से भाग रहे थे। उसकी ढीली रास मे बाबू जी—बाबू गोविन्द नारायण का पैर भी हास्यापद मुद्रा में फँसा

दिखाया गया था। न रास थामकर वे भागते घोड़े को रोक पा रहे थे—और न खुद उससे से निकल पा रहे थे—मानो वह उनके राजनीतिक जीवन के लिए फंदा बनती जा रही हो।

—उँह! मुख्यमंत्रित्व और मंत्रित्व गया श्री सदानन्द और बाबू गोविन्द नारायण का। उनका फंदा खुद अपने पैर में फँसता क्यों महसूस कर रहे हो रामलखन! ···बड़ों के टकराव···सत्ता की लड़ाई में तुम आते ही कहाँ हो!

रामलखन जी आज घर देर से लौटे थे। इस समय वे अकेले थे, और कुछ थके। पर थकान किसी व्यवस्था की नहीं, निराशा की और उस निराशा से मन के थकने की थी।

दोपहर की ट्रेन से बाबू जी लौटे थे—कैसा वीराना लग रहा था प्लेटफार्म पर। न स्वागत के लिए अफसरों की भीड़, न दल के समर्थकों-प्रशंसकों का हुजूम, कोई पत्रकार भी नहीं आया। पहुँचे थे खुद रामलखन जी, जगदीश, मंजु और घर के कुछ नौकर-चाकरों के अलावा दो-चार और शुभचिन्तक। लेकिन यह सारे लोग भी जैसे नहीं थे। थे वहाँ सिर्फ रामलखन जी। बाबू जी ने भी लक्ष्य किया था यह। पहले दर्जे के डिब्बे से नीचे उतरते-उतरते दरवाजे पर क्षण भर को ठिठके, जय-जयकार सुनने के अभ्यस्त कान नारों के गूंजने की प्रतीक्षा करते रहे। पर कोई आवाज नहीं। स्टेशन के हंगामे में भी क्षण भर को जैसे छा गयी थी एक अथाह निस्तब्धता—और तब जैसे चिढ़ाने के लिए भकभका उठा एक इंजन और एक सीटी की कर्कश आवाज गूँज गयी थी। रामलखन जी से भी चूक हो गयी। वे ही नारा लगा देते—सौ-पचास की जगह चार-पांच कंठों से निकली जय-जयकार भी कुछ सांत्वना तो दे ही देती। निराश भाव से बाबू जी छड़ी टेकते नीचे उतर आये। पर यहाँ रामलखन जी नहीं चूके थे। पहले की ही तरह मोटी फूलों की माला गँठवा कर ले आये थे, वही बाबू के एक कदम आगे बढ़ते ही गले में डाल दी। उनके श्रीहीन चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान उभरी थी और बड़ी आत्मीयता से उनका हाथ अपने हाथ में ले लिया था। आँखें मानो सजल हो आयी थीं और भरे कंठ से कहा था—

"तुम आये हो ! मुझे विश्वास था कोई आये न आये, तुम जरूर आओगे।" और फिर हल्के से उनका हाथ दबा दिया था। कैसा महसूस हुआ था उस वक्त---स्नेह-आत्मीयता की गर्मी या सत्ता से उतरने का मनस्ताप···? या शायद दोनो। ऐसा ही तो होता है न ! सत्ता से उतरने के बाद ही स्वजन, आत्मीय फिर याद आते है। बाबू जी ने कभी रामलखन जी का अनदेखा नही किया, पर वैसी आत्मीयता ! वह तो पहले कभी नही दी। उनके भक्ति-भाव को कभी इस रूप मे स्वीकार नही किया···।

पर अब क्या यह भक्ति-भाव निभ पायेगा ? रामलखन जी ने विचलित मन से सोचा। वे कम से कम इस मामले मे ईमानदार हैं कि अपने आपको छलावे में नही रख सकते। देवता देवत्व से उतर जाये···और जब यह देवत्व कुर्सी से जुड़ा हो तो भक्ति का बल क्षीण होते कितनी देर लगेगी ! किस क्षण बाबू जी को अपना इष्ट मान लिया था ? रामलखन जी को याद है। सब कुछ याद है। राजनीति मे कोई इष्ट नही होता···। सब कुछ समझौता है---निर्मम, भावना रहित समझौता, जिसमे न हार्दिकता की कोई जगह होती है, न रुचियों-अरुचियों या विश्वासो की···। बस यह देखा जाता है कि कौन-सा सितारा बुलन्दी पर है।··· किसकी धाक है और किसे सबसे अधिक समर्थन है। इसे समझना और इसके अनुसार चलना ही है सफलता का रहस्य···।

—पर क्या यही अवसरवाद नही है ? मन के कोने में एक क्षीण-सा प्रतिवाद उभरा !

पर अब रामलखन जी प्रश्नों-प्रतिवादों से परेशान नही होते। तर्क बुद्धि हर प्रश्न के उत्तर खोज लेती है, हर आचरण को उचित ठहरा लेती है ··। हुँह ! उगते सूरज को तो सभी अर्घ्य चढाते है, उसी की रोशनी मे सभी अपना रास्ता देखते हैं। डूबते सूरज को किसने पूजा है, अंधेरे मे किसने अपना रास्ता टटोला है···!

—और आज उन्हें स्टेशन पर यह सब पता चल गया था। कौन अर्घ्य चढाने आते हैं यही तो देखने गये थे, और पल भर में हवा का रुख पहचान लिया था। क्या बाबू जी ने भी यह पहचाना ? और अब यदि

भक्ति-भाव डिग रहा हो तो रामलखन जी के वश में क्या है···।

—स्टेशन से सभी लोग दो-तीन गाड़ियों में बैठकर घर आ गये थे। पहले कभी आते तो साथ में सरकारी गाड़ियों का काफिला चलता था, उसकी जगह बस दो-तीन गाड़ियाँ और पाँच-सात लोग! और जैसे बात की बात में घर भी पहुँच गये। वहाँ भी कोई हलचल नहीं। न दरवाजे पर पुलिस का सिपाही तैनात था, न दल का कोई कार्यकर्ता। हताश भाव से बाबू जी घर के भीतर गये थे, और फिर एक खूटी पर अपनी छड़ी और रेशमी खादी का कुर्ता टाँग कर उसी भाव से एक सोफे पर बैठ गये थे। पीकदान उठाकर कुछ देर तक उसमें थूक कर गला साफ करते रहे। एक ठण्डी साँस ली, फिर जैसे मन से घुमड़ती आँधी को थाम कर नि:श्वास छोड़ी थी।

"मैं सुखी भी हूँ रामलखन! सुखी भी हूँ।···सारी झंझटों से मुक्त होकर तुम लोगों से दो बात कर सकूँगा···। आओ बैठो!'

रामलखन जी पास की एक कुर्सी पर बैठ गए।

पर उन्होंने सिर्फ अपनी व्यथा-कथा कहने के लिए पास नहीं बैठाया था, यह वे समझ गये। मन में चलती आँधी का वेग अभी कम नहीं हुआ था और न वे उस मनस्ताप पर काबू पा सके थे जो उन्हें भीतर ही भीतर झुलसा रहा था। फिर जैसे वे सहसा भूल गये कि वहाँ कोई और था और रामलखन जी से बातें करते-करते जैसे स्वगत भाषण करने लगे···।"

—अब सदानन्द जी का कोई भविष्य नहीं है। पर मैं क्या कह सकता हूँ उन्हें। देशव्रती, मनस्वी हैं। आन्दोलन के कर्मठ सेनानी, तपे तपाये जनसेवी। पर वे जो देख नहीं पा रहे हैं···मैं देख पा रहा हूँ। उन्होंने व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को सिद्धान्त का प्रश्न बना लिया है।···राजनीति में सिद्धान्त ही काम नहीं आता···। उसमें तो समय के अनुसार समझौतों की जरूरत पड़ती है। राजनीति है एक समझौता। पर क्या मैं उन्हें यह बता सकता हूँ।···उनके जैसे मनस्वी के मुकाबले मेरे जैसे तुच्छ जनसेवक की क्या बिसात है···।

—पर मैंने भी तो देशव्रत ही लिया था रामलखन! सदानन्द जी

की तरह तपस्वी नहीं हूँ, लेकिन मैंने भी देश सेवा मे ही उम्र गुजारी है···। क्या नहीं था मेरे पास और मैं कौन-सा सुख नही भोग सकता था। पर देशव्रत तो मैंने भी लिया था।···तो क्या अब व्यक्तिगत निष्ठा और सिद्धान्त को मैं अपनी देशसेवा में आड़े आने दूँ···तुम्हारा क्या ख्याल है रामलखन···तुम तो यहीं रहे हो···आजकल जिला कमेटी के क्या हाल चाल हैं···?

रामलखन जी के मन में आशा का संचार हुआ था। श्री सदानन्द से बँधे नहीं रहेंगे, तो नयी कॉंग्रेस में भी उनके किसी मन्त्री पद पर आने की पूरी गुंजाइश थी, यह सोचकर कुछ देर पहले मन पर छायी उदासी छँट चली थी। बाबू जी ने उनसे जो पूछा था उसके जवाब का इन्तजार नहीं किया। कुछ निश्चय करके वे सहसा उठे और कहीं टेलीफोन मिलाने लगे।

—उँह उसी वक्त ससुरी जोर की पेशाब लगनी थी···!

उठकर कमरे से बाहर गये। लौटते वक्त जगदीश बाबू दिखायी दे गये थे। बाबू जी के हृदय-परिवर्तन की खुशखबरी उन्हें भी दी, पर अजीब हैं जगदीश बाबू भी। हर वक्त उल्टी-सीधी बातें करते हैं। जैसे कोई भी प्रतिक्रिया नहीं हुई उन पर। कोई खुशी जाहिर नहीं की, न ताज्जुब ही किया। और बात भी कैसी कही! हुँह! कहने लगे—कैसा हृदय-परिवर्तन! हाँ, मन्त्री बनने का मोह न रह जाये तब है हृदय-परिवर्तन! लेकिन अगर मंत्री-पद पर बना रहना है तो आप जिस हृदय-परिवर्तन की बात कहते हैं, वह होना ही था। जितनी जल्दी हो जाये, हमारे आपके भविष्य के लिए उतना ही अच्छा है··।

नहीं, नहीं जगदीश बाबू, यह बात नहीं है, रामलखन जी ने कहना चाहा था, पर कौन बहस में पड़े उनसे! कच्ची उमर के हैं, क्या जानें राजनीति की गूढ़ बातें और यह सोचकर बाबू जी के कमरे में लौट आये। वे उनींदे से एक आरामकुर्सी पर ढरके थे। आँखें बन्द थीं और कुर्सी के दोनों हत्थों पर फैले हाथों की उँगलियाँ रह-रह कर हरकत करती हुई थाप दे रही थीं। रामलखन जी की आहट पर मानो ध्यानावस्थित मुनि ने आँखें खोलीं। बड़ा बुझापन था उनमें।

"कहाँ चले गये थे रामलखन···।" उन्होंने कहा, "ब्रजविलास जी तो कोई बात ही सुनने को तैयार नही हैं···। कहते हैं—पहले मैं नयी कांग्रेस की सदस्यता लेने की घोषणा कर दूँ···और बातों पर फिर विचार होगा···। क्या यह ठीक होगा रामलखन···?"

क्षण भर को रामलखन जी सन्नाटे में आ गये थे। ब्रजविलास जी जिला कांग्रेस के अध्यक्ष हैं तो हुआ करें, पर जिले में कांग्रेस के प्राण बाबू जी ही हुआ करते थे। पिछले दो चुनावों में शहर की सीट से कम्यु-निस्ट सुरजन राम को हराना बाबू जी के ही बूते की बात थी। ठीक है कि कम्युनिष्ट के जीतने का भय दिखाकर जनसंघ का भी समर्थन लेना पड़ा था, लेकिन यह भी बाबू जी ही कर सकते थे। ऐसा न करते तो न यह सीट रहती और न ब्रजविलास जी की अध्यक्षता का यह रुतबा होता। पर लगता है समय वही नहीं रहा। जिला कांग्रेस का अध्यक्ष भी एक भूतपूर्व मन्त्री को आँखें दिखाता है!

बाबू जी ने उनकी मुद्रा लक्ष्य की थी।

"आवेश में आने की जरूरत नहीं है रामलखन। राजनीति में क्न यही एक चीज काम नही आती···। कहीं काम नहीं आती, पर राजनीति मे तो और भी नही। एक तनी हुई रस्सी है, सन्तुलन बनाकर ही इस पर चल सकते हो। आवेश से यह सन्तुलन बिगड़ जाता है।"

'···लेकिन छोड़ो यह। तुम खुद भी सब समझते हो," उन्होंने कहा 'न हो तुम यहीं रुक जाओ। यहीं भोजन कर लो. उसके बाद शाम का जरा जिला कमेटी के दफ्तर चले जाना; जरा देखो, कुछ टटोलो···क्या मंशा है ब्रजविलास जी की···। खाने पर कुछ और लोग आ रहे हैं—जिला कांग्रेस में श्री सदानन्द के नेतृत्व में विश्वास रखने वाले लोग, अपनी काँग्रेस के लोग, जनसंघ के जिला मंत्री झाँवरमल, सोशलिस्ट इकबाल राय ···वगैरह ! मैं यह चाहता तो नहीं हूँ अब, लेकिन आ रहे हैं तो आने दो।···राजनीति में सावधानी भी आवश्यक होती है। उन लोगों को तुम्हारे कार्यक्रम का पता नही चलना चाहिए···और न ब्रजविलास को इस कार्य-क्रम का।···लेकिन तुम्हें यह सब बताने की जरूरत नहीं है। तुम खुद सब समझते हो···।"

जिला कांग्रेस कमेटी के दफ्तर पहुंचते ही रामलखन जी का माथा ठनका। कम्युनिष्ट पार्टी के जिला मन्त्री कबूल अहमद सुरजन राम के साथ बाहर आते दिखायी दे गये। कबूल अहमद को कभी उन्होंने पसन्द नही किया। खास तौर से इस बात को कभी पसन्द नहीं किया कि रब्बन चुडिहार का लड़का देखते-देखते नेता बन गया है। हड़तालें कराता है, बडी-बड़ी मीटिंगों में भाषण करता है, मास्को, बर्लिन हो आया है, उसके नाम पर जिन्दाबाद के नारे लगते हैं···और यह सब रब्बन चुडिहार के लडके के साथ होता है। और तो और, जिला कांग्रेस के एक मंत्री इस वक्त उन्हें दरवाजे तक छोड़ने भी आये थे।

लेकिन सामने पड़ गये तो भीतरी कटुता पर मजाक का मुखौटा लगाकर चुटकी ले ही डाली—"अरे कहो कामरेड ! तुम तो यहाँ सिर्फ प्रदर्शन ही लेकर आया करते थे। आज इस तरह कैसे ? क्या रूस से अब ऐसा कोई हुक्म आ गया है···?"

"हम तो सोचते थे अब आप ही प्रदर्शन लेकर आयेंगे।" कबूल अहमद ने जवाब दिया और उन्हीं की तरह चोट की, "लेकिन आप यहाँ अकेले कैसे ? क्या बाबू गोविन्द नारायण की मुलाजमत छोड़ दी ···?"

"हम मुलजिम-उलाजिम नहीं हैं किसी के··।" रामलखन जी ने विगड़ने का भाव बनाया।

"अच्छा तो उनकी ओर से सुलहनामा लेकर आये है ? ठीक है··· ठीक है···हमे हमदर्दी है आप से, सदानन्द जी के साथ अब क्या रखा है···।" कामरेड कबूल अहमद हँसते हुए सुरजन राम के साथ आगे बढ गये।

—बुरे मौके पर पहुँचे थे रामलखन तुम वहाँ ! क्यों बिगड़ खड हुए ! राजनीति की बारीकियाँ समझने वाला इतने से ही वहाँ जाने का मकसद भाँप गया। बाबू जी ने ठीक ही कहा था—सन्तुलन बनाये रखना चाहिए। यह सब उन्होंने सुना तो उन्हें भी अच्छा नही लगा था। उनसे सावधान ही रहना अच्छा है। उन्होंने दुखी मन से कहा था—हमारी सस्था के वटवृक्ष में भी दरार उन्होंने ही डाली है, सदानन्द जी का कहना ठीक ही मालूम होता है।

ब्रजविलास जी ने लगभग वही बातें कहीं जो बाबू जी से टेलीफोन पर की थीं। इसके अलावा उन्होंने और भी बहुत कुछ बताया—कि बाबू जी नयी कांग्रेस में आ जाते हैं तो भी टिकट उन्हीं को मिलेगा यह निश्चित नहीं है। और भी बहुत से उम्मीदवार हैं, और फिर अब देश भर में पुराने दिग्गजों को अवकाश देकर 'नये खून' को अवसर देने की पुकार मची हुई है। उधर प्रदेश ही नहीं देश भर के स्तर पर कम्यु-निस्टों से भी समझौता हुआ है। कुछ सीटें उन्हें भी देनी पड़ सकती हैं। हो सकता है शहर की सीट भी उन्हीं को देनी पड़े। आखिर पिछले चुनाव में सुरजन राम के मुकाबले बाबू गोविन्द नारायण डो सौ वोटों से ही जीते थे। वह भी आखिरी मौके पर कम्युनिस्ट को जीतता देख कर जनसंघियों ने अपने वोट बाबू जी के पक्ष में डलवाने शुरू कर दिए तब, नहीं तो यह सीट तो हाथ से गयी ही थी!

—देखता हूँ आपको कम्युनिस्टों से काफी हमदर्दी हो गयी है···। उस वक्त रामलखन जी ने उन्हें सुनाने से नहीं चूके। पर बाबू जी यह सुन कर और दुखी हो गये थे। काफी देर तक वे बिना कुछ बोले, उद्विग्न मन कमरे में टहलते रहे।

"हमदर्दी की बात नहीं है रामलखन।" कुछ देर बाद उन्होंने कहा "राजनीति में किसी को किसी से हमदर्दी नहीं होती। ···फिर ब्रजविलास की कम्युनिस्टों से हमदर्दी! ···वे जब हड़ताल कराते तो यही ब्रजविलास मिल-मालिकों की पैरवी करते, प्रदेश की राजधानी और दिल्ली तक की दौड़ लगाया करते।···लेकिन उनका नाम लेकर ब्रजविलास आज मुझे जिले और प्रदेश की राजनीति से अलग करना चाहते हैं।···मेरे रहते जिला कांग्रेस में वे लाख अध्यक्ष हों, उनकी धाक कौन मानेगा!···कि नहीं रामलखन! और कम्युनिस्ट इसमें उनका साथ भी दे देंगे।···क्योंकि मैं हूँ दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी जैसा कि वे अपने विरोधियों को कहा करते हैं। हड़तालें तुड़वाये और मिल-मालिकों की पैरवी करें ब्रजविलास, लेकिन दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी वे नहीं क्योंकि वे नयी कांग्रेस के साथ हैं···वह मैं हूँ! यह है राजनीति रामलखन! कुछ समझे···!"

रामलखन जी ने यह बारीक नुक्ता बिलकुल नहीं समझा···। बाबू जी को इसकी चिन्ता भी नहीं थी। वे कहते रहे—"लेकिन क्या तुम समझते हो मैं अपने लिए दुखी हूँ! नहीं रामलखन, नहीं। मेरा दुख कुछ और ही है। मैं गाँधी-नेहरू की इस महान संस्था के भविष्य के लिए दुखी हूँ।·· कम्युनिष्ट अपनी चाल में सफल हो रहे हैं, यह है मेरा दुख।···पर अपने जीते-जी मैं यह होने नहीं दूंगा?···कम से कम अपने जिले और प्रदेश में यह मैं नहीं होने दूंगा···। फैसला ब्रजविलास के हाथ में नहीं, प्रदेश कॉंग्रेस के हाथ में है···और मैं प्रदेशीय स्तर का नेता हूँ। जिला अध्यक्ष को मैं इस अञ्चल में संस्था के भाग्य का फैसला नहीं करने दूंगा ·।"

रामलखन जी कुछ देर बाद घर चले आये थे। बहुत कोशिश की बाबू जी की बातों से आशान्वित होने की। पर ब्रजविलास जी के हाथ से फैसला कैसे छीन लेंगे, यही वे नहीं समझ पा रहे थे। अँधेरा अब भी चारों ओर भारी बन कर फैला हुआ था। उससे जैसे उन्हें भय-सा लग रहा था, लेकिन रोशनी करते भी वे डर रहे थे···। आसपास जो थोड़े से पेड़ नयी बस्ती की हरियाली के लिए छोड़ दिये गये थे, उन्हीं में से किसी पर दुबके उल्लू की मनहूस आवाज सन्नाटे में गूंज रही थी।

हार कर वे लेट गये। पर बातें है कि दिमाग से नहीं उतरतीं। बहुत सिर मारने पर भी उन्हे यह समझ मे नही आ रहा था कि आखिर बाबू जी ब्रजविलास जी के हाथ से फैसले की ताकत कैसे छीन लेंगे। केन्द्र के नेता भी कैसे उनकी बात सुनेंगे और ब्रजविलास जी की बात नहीं सुनेंगे!

रात भर उनके सपनों में उल्लू बोलते रहे।

उन्नीस

रामलखन जी ने गलत नहीं सोचा था। गलत वे कभी सोचते ही नहीं। राजनीति के बारीक नुक्ते चाहे न समझते हों, लेकिन हवा का रुख पहचानते है। बाबू जी प्रदेश की राजधानी गये और तीसरे ही दिन अखबारों मे उनका बयान आ गया जिसमें उन्होंने फिर श्री सदानन्द के नेतृत्व में विश्वास प्रकट किया था। मतलब साफ था—यह कि जिस बात के लिए वे गये वह बन नहीं सकी और यहाँ जिले के स्तर पर फैसला ब्रजविलास के ही हाथ मे रह गया।

बाबू जी यहाँ रहते हों या नहीं, रामलखन जी नियम से सुबह ठीक उसी तरह उनकी कोठी चले जाते जिस तरह लोग दफ्तर जाया करते हैं और फिर वहीं से जिले की राजनीति चलाया करते।

नयी बस्ती से निकलते ही बायीं ओर जाने वाली सड़क उनकी कोठी की ओर जाया करती। उस पर कदम बढ़ाते ही दूर से ही किसी इतिहास प्रसिद्ध राव की बुलन्द इमारत के काल-जर्जर कंगूरे दिखायी दे जाते और सड़क पर मुड़ते ही सुखई पान वाले की दूकान जिसके ऊपर किसी प्रचलित सिगरेट का बड़ा-सा बोर्ड लगा था। नई बस्ती बनने से सुखई की यह दूकान देखते-देखते चल निकली थी और इसका सारा श्रेय वह बाबू साहब—रामलखन जी को ही दिया करता जिसे उन्होंने सिर्फ दो हजार से एक प्रसिद्ध पेय का शहर भर के लिए लायसेंस दिलवा दिया था। पड़ोस की बात थी, नहीं तो यही काम पाँच हजार से कम मे न होता। उन्हें देखते ही सुखई पचास काम छोड़ कर अपने हाथ से दो जोड़े पान लगाता और कुछ जोड़े दिन भर के लिए लगा कर पत्ते में बाँध देता।

आगे थे सुभीक हलवाई। पहले चोटहिया—यानी गुड़ के शीरे की जलेबियाँ बेचते जिसे सिर्फ गरीब-गुरबा ही खाया करते। अब मक्खियों से भिनकती दुकान साफ-सुथरी बम्बई मिष्टान भण्डार है जिसके लिए चीनी का कोटा उन्होंने ही बँधवाया था। कन्ट्रोल के कपड़े के आढ़ती अमोलक राम जिनके यहाँ कन्ट्रोल का कपड़ा कभी किसी को नहीं मिलता

और सामेट स्टॉकिस्ट सुन्दर लाल भी इसी सड़क पर है सब भक्त हैं और सभी किसी-न किसी तरह खातिर करते हैं

पर यह सब किसी और जमाने की बातें हैं। खातिर-आवभगत वे करते है नही—करते थे। अब तो जैसे सभी नजरें चुराने लगे हैं। पान सुखई अब भी दे देता है, पर पहले कभी महीने-पन्द्रह दिन में एकाध दस का नोट उसकी ओर बढ़ाते तो वह विनत मुद्रा बना कर उसे वापस कर देता था। पर अब ना-ना करते भी रख लेता है। सुभीक हलवाई भी हर तीसरे-चौथे दिन खीरमोहन की हंडिया पकड़ाया करते। कहते, खास आप ही के लिए बनायी है। पर अब कभी कहने पर ही देते हैं, और पैसे दें तो इनकार भी नही करते। जब से बाबू जी मन्त्री नही रहे, कैसी बेरुखी आ गयी है लोगों में।

क्या जिस बेरुखी को अब तक झेलते आये थे, उसे अब और बर्दाश्त कर सकेंगे? क्या अब फिर सड़क पर चल पायेंगे जिस पर होने वाली आवभगत अब हिकारत बन गयी है? उन्होंने गौर किया था—सुखई ने श्री सदानन्द से गले मिलने वाली उनकी जो फोटो टाँग रखी थी उसे अब हटा दिया था। एक फोटो और थी जिसमें वह बाबू जी को पान का बीडा भेंट करते दिखाया गया था। अभिनन्दन समारोह में अतिथियों के लिए पान का इन्तजाम इसी से कराया था, उसी वक्त की फोटो थी यह। लेकिन अब वह भी हट गयी थी। और एक दिन उसने राजनीति पर भी बात करने की कोशिश की थी—"बाबू जी का तो अब कुछ ठीक नही दिखायी देता···।" "अरे तुम पान लगाओ सुखई राजनीति की बातें भी तुम्ही समझ लोगे तो हम क्या करेंगे," उस वक्त उसे डाँट दिया था। पर अब क्या उसी बेरुत से यह उससे कह सकेंगे? सुभीक हलवाई भी दूर से उनका रिक्शा आता देख उठ जाते हैं, और अढ़तिया अमोलक राम अब सामने से गुजरने पर हाथ भी नही उठाते।

अब किस मुँह से उसी सड़क पर जायेंगे? और जायेंगे भी तो यह सड़क अब कहाँ ले जायेगी?

रास्ता बदलने में कोई ज्यादा तकलीफ नही होती। कुछ दिन पैर पुराने रास्ते पर बढ़ने के लिए उतावले होते है, फिर नये रास्ते का

अभ्यस्त होते ही उसी ओर बढने लगते है। रामलखन जी के लिए तो यह और भी आसान था। उनके लिए शहर का कोई रास्ता नया नहीं। उसकी एक-एक गली, एक-एक चप्पा उनका छाना हुआ ही नहीं, रौंदा हुआ है। अव्वल तो ऐसा कोई रास्ता, ऐसी कोई सड़क है नहीं जिसे वे न जानते हों, लेकिन अगर मान लें कि किसी को नहीं जानते तो जैसा खुद रामलखन जी कहते हैं—वे रास्ते और सड़कें खुद उन्हे जानती हैं…।

यह नया रास्ता चूना मंडी की ओर जाता था। लेकिन चूना मंडी अब सिर्फ नाम है। यहाँ चूने की एक भी दुकान नहीं है। लम्बे-चौड़े चौराहे पर एक ओर शहर का सबसे बड़ा सिनेमा है और वहीं से शहर का सबसे घना और सुन्दर बाजार शुरू होता है। यहीं किसी दानवीर की धर्मशाला के एक हिस्से में कांग्रेस का जिला दफ्तर था। अब यह धर्मशाला बराय नाम, और दफ्तर ही अधिक था, हालाँकि भूल-भटक कर आ जाने वाले किसी यात्री के लिए यहाँ के लोग रहने की व्यवस्था भी कर देते। नीचे के हिस्से मे बाहर की ओर कुछ कमरों मे दुकानें थी, जिनके मालिक किरायेदार तो धर्मशाला के थे, लेकिन किराया दफ्तर ही वसूलता था। ऊपर एक लम्बी-चौड़ी दालान मे दरी बिछी रहती जहाँ वरिष्ठ नेताओ और मंत्रियों के आने पर कार्यकर्ता सम्मेलन से लेकर जिला कार्यसमिति की बैठकें तक हुआ करती। दीवारो पर गाँधी-जवाहर के साथ भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद की तस्वीरें भी टँगी थी। अब इन सबसे बड़ी इन्दिराजी की भी तस्वीर लग गयी थी। एक कोने में कुछ चर्खे और तकलियाँ पड़ी थीं जिन्हें कार्यालय में हर समय रहने वाले विश्वसेवक जी के सिवा कोई गांधी जयन्ती के अलावा कभी छूता भी नही था। वैसे वे कार्यालय सचिव थे, लेकिन नेताओ को पानी पिलाने से लेकर कार्यालय की सफाई तक सभी काम वे निस्पृह भाव से किया करते। इसके पुरस्कार स्वरूप स्वतन्त्रता दिवस को कार्यालय पर झण्डा फहराने का अधिकार उन्होंने अपने ही पास सुरक्षित रखा क्योंकि आजादी के पहले से स्वराज्य माँग दिवस को यही झण्डा फहराते आये थे, और सन् बयालीस में जान पर खेल कर भी इन्होंने ही झण्डा

या था। झण्डा फहराते समय तन्मय होकर 'झण्डा ऊँचा रहे'
राना गाते हुए वे मानो आन्दोलन के रोमांचक दिनों में लौट जाते
उनका चेहरा आत्म-तेज की लालिमा से भर जाता। पर इसे हर
लक्ष्य न कर पाता। खास तौर से रामलखन जी उन्हें बहुत बुद्धू
र का आदमी माना करते, क्योंकि वह एम० एल० ए० या एम०
बनने के बजाय सिर्फ एक निस्पृह सेवक बने रह कर ही सन्तुष्ट
वे उन्हें कुछ इस अन्दाज से विश्वसेवक जी कहा करते कि सुनने भ
'विषसेवक जी' मालूम होता — हालाँकि इससे उनका मतलब विषपान
वाला शिव होता था…।

दफ्तर मे ज्यादातर विश्वसेवक जी ही रहा करते। भीड़ यहाँ सिर्फ
कर्ता सम्मेलनों या जिला कार्यसमिति की बैठकों के समय या फिर
व के समय ही हुआ करती, जब यहाँ सारे जिले के टिकटार्थियों
मजमा इकट्ठा होता। नीचे की पान-चाय की दुकानों पर जरूर हर
कुछ छुटभैये कार्यकर्ता दिखायी दिया करते जो वहीं से जिला बोर्ड
नसिपल बोर्ड के स्तर की कोशिश पैरवी से लेकर राजनीति तक
ा करते…।

रामलखन जी के लिए इसमें से कुछ भी नया नहीं था। अगर कुछ
ा था तो सिर्फ माहौल। पहले एक मन्त्री का दायाँ हाथ होने के नाते
भी यहाँ आते तो रुतबे के अनुरूप सम्मान की आकांक्षा और अधि-
ार लेकर आते थे और वह मिलता भी। पर अब, सरक्षकहीन होकर
स मर्यादा से जैसे च्युत हो गये थे। लेकिन राजनीति के संस्कार ने
न्हें बहुत कुछ सिखाया भी था। कब बड़े से बड़े नेता को भी दल का
साधारण कार्यकर्ता बन जाना चाहिए, यह उन्हें खूब मालूम था, और
इसकी कला भी आती थी। वे धर्मशाला के नीचे पान-चाय की दुकानों
पर वहाँ हर समय मौजूद किसी-न-किसी कार्यकर्ता के गले में आत्मीय
मुद्रा में हाथ डाले हरेक को दिखाई देने लगे। एक बार लोगों की निगाहों
में कौतूहल के भाव उठे, कुछेक ने उन्हें वहाँ काफी दिनों बाद देख कर
चुटकियाँ भी लीं—पर राजनीति सेवी बहुत भले आदमी भी होते हैं—
उनमे किसी के बहुरूपियेपन पर आश्चर्य नहीं किया जाता। यदि किसी

के मन में प्रश्न उठे भी तो जवाब तैयार था।

"ठाकुर साहब, बहुत दिन बाद खबर ली इधर की।"

"अरे भाई, यहीं तुम लोगों के बीच बैठने के लिए तो तड़प रहा था ...पर क्या करूँ, ससुरी फुरसत ही नहीं मिलती थी...आज कुछ फुरसत मिली तो सोचा बहुत दिन हो गये हैं तुम लोगों से मिले...।"

"तो अब तो आते रहेंगे न।"

"अब देखो। मौका मिलने की बात है...।"

"अब तो मिलना ही चाहिए। बाबू जी तो उधर चले ही गये... बयान तो पढ़ा होगा आपने...।"

"हाँ भाई पढ़ा।" रामलखन जी ने मानो उदासीनता से कहा।

"हम तो सोचते थे, आप भी उन्हीं का साथ देंगे।"

"ऐसा कैसे सोचते हो," रामलखन जी ने नाराजगी का भाव बनाया, "क्या मेरा कोई सिद्धान्त नहीं है? मैं दल का सेवक हूँ, किसी व्यक्ति का नहीं। यही मैं बाबू जी को भी समझा रहा था।" उन्होंने एक कार्यकर्ता की बढ़ायी पान की गिल्लौरी मुँह में रखते हुए कहा "पर वे नहीं माने। ठीक है भाई, आप बड़े आदमी हैं, मुझसे ज्यादा समझदार होंगे। अपना-अपना विचार है, आपका रास्ता अलग और मेरा अलग।" उन्होंने सामने की नाली में पिच्च से पान की पीक थूक दी।

इस वक्तव्य पर किसी को संदेह भी हुआ हो, तो भी अब कुछ पूछने को नहीं रह गया। रामलखन जी की मंशा मालूम हो गयी। और जैसा कि दिनों में होता है—यह चर्चा कानों कान ब्रजविलास जी के पास तक पहुँचनी थी और पहुँच भी गयी। आश्चर्य उन्हें भी नहीं हुआ, और न विश्वसेवक जी को। इस दल रूपी महासागर में ऐसे कितने ही जहाज के पंछी देखे थे—टिकट नहीं मिला तो उड़कर किसी दूसरे दल की डाल पर जा बैठे, पर हार गये तो फिर कुछ दिन में लौट आये।

—रामलखन जी तो कहीं गये भी नहीं। लेकिन वे गये नहीं, इसी कारण ब्रजविलास जी कुछ सशंकित भी हो उठे थे। जहाँ उनकी प्रतिभा का लोहा मानते थे, वहीं उनकी पटुता से आतंकित भी होते थे। वे दल के लिए चन्दे की खासी रकम इकट्ठा कर सकते थे, लेकिन वह चन्दा

कभी दल में आता नहीं था। उनके सहयोग के बहुत से अनुभव उन्हें याद थे—खास तौर से वह औद्योगिक विकास प्रदर्शनी। उसे सफल बनाने के लिए रामलखन जी ने रात-दिन एक कर दिया था। प्रदर्शनी सचमुच सफल रही थी। सभी ने एक स्वर से कहा कि शहर में ऐसी प्रदर्शनी लगी ही नहीं। वे ही प्रदर्शनी के कर्ता-धर्ता और खजांची थे, और उन्हीं दिनों उनके घर में सेंध लग गयी थी जिसमें उनके कीमती सामानों के साथ प्रदर्शनी की भी बहुत सारी रकम चली गयी थी। उस वक्त उनका नया घर नहीं बना था। दबी जबान कुछ लोगों ने कहा था कि यह चोरी मिलीभगत थी, लेकिन बाबू गोविन्द नारायण के रुतबे के आगे किसी को जबान खोलने की हिम्मत नहीं पड़ी। दल के कुछ उत्साही युवा कार्य-कर्ताओं ने जिला कार्यसमिति में उनके खिलाफ प्रस्ताव भी रखा, पर वह भारी बहुमत से गिर गया था।

ब्रजविलास जी को और भी बहुत-सी बातें याद थीं, और उनका बस चलता तो वे रामलखन जी से दल को बचाकर ही रखते। पर दल तो एक जनतंत्र है, उनकी जायदाद नहीं। यदि कोई सत्य-अहिंसा में विश्वास रखता है, दल की नीतियों में विश्वास रखता है, देश-सेवा के उसके प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करता है तो उसे दल में रहने से रोक भी कैसे सकते हैं ?

और कहीं न कहीं उन्हें रामलखन जी जरूरी भी लगे। सिर्फ यह नहीं कि वे चन्दा ला सकते थे, और न यह कि वे अमले-अफसरों से रब्त-जब्त बनाने में माहिर थे। बात कुछ और गूढ़ थी। इधर बहुत-से लोग दूसरी पार्टियों से टूटकर कांग्रेस में आये थे। समाजवादी, प्रजा समाज-वादी, और कम्युनिस्ट भी। कुछ लोग अपनी-अपनी पार्टियों में विग्रह के कारण विरक्त होकर, कुछ लोग सत्ता-राजनीति के अवसरवादी समझौतों के खिलाफ विद्रोह का झंडा लेकर और कुछ लोग शुद्ध सत्ता-लोभ में। सभी अपने-अपने सिद्धांत लेकर इस हौसले के साथ आये थे कि कांग्रेस को अपनी-अपनी सोच के अनुसार चलायेंगे। तरह-तरह की खींचतान और दबाव बढ़ गये थे। अब जिला सम्मेलनों में गांधीवाद और सत्य-नैतिकता, चरित्र-निर्माण और नशाबन्दी, ग्राम स्वराज्य और विकेन्द्रीकरण की ही

बातें न होतीं, अब मार्क्सवादी शब्दावली से लैस लोग वामपंथ और दक्षिणपंथ, पूँजीवादी इजारेदारी और राष्ट्रीयकरण की, प्राइवेट सेक्टर और पब्लिक सेक्टर की, भूमि-सुधार और जोत-हदबन्दी की बातें करने लगे थे। कभी-कभी ये बातें ब्रजविलास जी जैसे दिग्गजों को भी न समझ में आतीं और वे इस भावी खतरे की आशंका से बेचैन होकर यहाँ तक सोचने लगते कि कहीं किसी दिन ऐसा न हो कि काँग्रेस पर यही लोग हावी हो जायें। काँग्रेस न कम्युनिस्ट है न समाजवादी, और न प्रजा सोशलिस्ट, और काँग्रेस को काँग्रेस बनाये रखने के लिए, उन्हें लग रहा था, कहीं न कहीं रामलखन जी जरूरी थे।

दफ्तर में इस वक्त सिर्फ दो लोग थे। जिला कार्यसमिति की बैठक के लिए कुछ लोगों के आने का इन्तजार करते ब्रजविलास जी और विश्वसेवक जी। विश्वसेवक जी चर्खा कातते हुए रचनात्मक कार्य में दोपहर की नींद भगाने का प्रयत्न कर रहे थे। चर्खा एकरस गति से चर्र-चूं कर रहा था।

"मैं ठीक कहता हूँ न विश्वसेवक जी!" अपनी आशंकाएँ कुछ विस्तार से बताते हुए ब्रजविलास जी ने कहा, "देखता हूँ, काँग्रेस वही नहीं रही···।"

विश्वसेवक जी कुछ नहीं बोले। चर्खा कातते हुए वे वर्धा आश्रम के दिनों में लौट जाते जहाँ वे कुछ दिन रह आये थे। चर्खे की चर्र-चूँ उनकी कल्पना को लय-ताल दोनों देती रही। ब्रजविलास जी के फिर कुछ कहने पर उन्होंने कहा, "आप ठीक कहते हैं, ब्रजविलास जी, मैं तो कहता हूँ कि काँग्रेस में आने वाले हर व्यक्ति के लिए चर्खा चलाना अनिवार्य कर देना चाहिए···हर कार्यकर्ता चर्खा चलाये और हर कार्यालय बन जाये वर्धा आश्रम···।" उनकी आँखें दिव्य ज्योति से उत्तेजित-सी हो उठीं।

"उँह···तुम्हारा चर्खा तो···" ब्रजविलास जी कहते-कहते रुक गये। विश्वसेवक जी से ऐसी बातें बहुत बार सुनी थीं, और हर बार उनके ऊपर यही प्रतिक्रिया होती। पर काँग्रेस अगर कम्युनिस्ट या सोशलिस्ट नहीं हुई है, तो अब ग्राम स्वराज्य या चर्खे और आश्रम का भी जमाना

नही रहा—यह वे अच्छी तरह महसूस करते, लेकिन इनके साथ गाधी जी और वर्धा आश्रम का नाम जुड़ा हुआ है—इसलिए अपनी यह प्रतिक्रिया जबान पर कभी नही ला पाते !

"पर मैं रामलखन जी के बारे में सोच रहा था।" ब्रजविलास जी ने कहा।

विश्वसेवक जी ने फिर मौन साध लिया। चर्खे की लय मे वे फिर कुछ देर खोये रहे।

"उनमें और तो सब ठीक-ठाक है ..." विश्वसेवक जी ने एक धागा टूट जाने से चर्खे की रुकी हुई गति के बीच कहा। "बस उनमे अहिसा पर विश्वास जरा कम है...।"

उनकी इस आलोचना का अर्थ वे समझते थे। रामलखन जी उन्हे विषसेवक जी कहा करते। इससे उन्हे कोई चिढ़ न होती, पर इस वे उनका हिंसात्मक आचरण माना करते। यह ब्रजविलास जी जानते थ। बहुत-से दूसरे लोग भी यह जानते थे। और अक्सर इस तरह की चर्चाएं छेड़कर उनके शुद्ध अहिसात्मक रोष का मजा लिया करते। पर ब्रज-विलास जी ने किसी नीयत से नही पूछा था यह। उन्हे रामलखन जी जरूरी भी लग रहे थे और उनसे सशकित भी थे। पता नहीं कब कैसी लॅंगड़ी मार दें। दल मे होता है अनुशासन और दल-निर्देश। लेकिन उनकी सीमाएँ कितनी विस्तृत ! सारी उखाड़-पछाड भी इन्ही सीमाओ के भीतर ही तो की जाती है। रामलखन जी इसमे भी माहिर हैं। कब फिर दल को उठा-पटक के दलदल में फॅंसा दे, कौन कह सकता है...। पर क्या इसीलिए दल को भूतपूर्व सोशलिस्टो-कम्युनिस्टों को सौंप दे। क्या वे अकेले, और हर वक्त कोशिश-पैरवी की राजनीति में लगे रहने वाले कार्यकर्त्ता उनका मुकाबला कर पायेंगे ? विश्वसेवक जी की अहिसात्मक दलीले क्या उनका मुकाबला कर पायेंगी ? दल के लिए रामलखन जी जरूरी है...। दल को बाबू गोविन्द नारायण से बचाने के लिए, और सोशलिस्टो-कम्युनिस्टो से भी। पर फिर वही संशय...।

—लेकिन रामलखन जी के मन में कोई संशय नही है। अखबार मे बाबू जी के लौटने की खबर छपी थी और उसी के साथ स्थानीय

राजनीति की सम्भावनाओं को लेकर एक टिप्पणी थी। रामलखन जी को उस टिप्पणी में भुलाया नहीं गया। बाबू जी के साथ पुराने सम्बन्धों को देखते हुए यह सम्भावना प्रकट की गयी थी कि जिले में बाबू जी के बाद संगठन काँग्रेस के सबसे प्रमुख स्तम्भ वही रहेंगे···।

—हुँह, खूब टिप्पणी लिखते हैं। रामलखन जी ने अखबार एक ओर फेंक दिया। हुँह. मेज पर बैठकर दुनिया चलाने का दम भरते हैं। न दीन की खबर, न दुनिया की···। हुँह, चले हैं टिप्पणी करने ! और उसी वक्त अपना बयान अखबारों में लिखवा दिया—बाबू जी का व्यक्ति-गत रूप से सम्मान करते हैं, लेकिन उनकी राजनीति के समर्थक नहीं हैं।

ऐसी खबरें खास दिलचस्पी से छापी जाती हैं। एक सुप्रसिद्ध नेता के अन्य समर्थक ने उनका साथ छोड़ दिया—इसका समाचार-महत्व अधिक था। अगली सुबह वे नेता बन चुके थे···।

उसी रात सुखई पान वाले, कन्ट्रोल के कपड़े के लैमन्सदार अमोलक राम और सुभीक हलवाई के यहाँ पुलिस का छापा पड़ा था। सभी जगह कुछ न कुछ पकड़ा गया। एक प्रसिद्ध पेय की बोतलों के साथ शराब की बोतलें, कन्ट्रोल के कपड़े की छिपायी हुई गाँठें और चीनी की बोरियाँ···। रामलखन जी इनमें से किसी की पैरवी नहीं कर सकते, न करेंगे। घर आये उनके रिश्तेदारों को डाँट रहे हैं—ये लोग समाजवाद के दुश्मन हैं। मेरी आड़ में बहुत लूटा है लोगों को लेकिन फिर सोच लिया, राम-लखन मर गये या फिर जनता के आदमी नहीं रह गये।···पर रामलखन पहले जनता के सेवक हैं, फिर तुम्हारे···।

—रोशनी में पतंगे अब भी तंग करते हैं। लेकिन अब बत्ती बुझा-कर अँधेरा करते डर नहीं लगता।

इम्तहान खत्म होने के बाद राजेन को नतीजे का इन्तजार करने की जरूरत नहीं पड़ी। उसका कोई महत्व भी नहीं था। जिस जगह पर उसे काम करना था, उसके लिए हाई स्कूल पास होना ही सबसे बड़ी योग्यता थी। बीच में एक दिन निर्मल बाबू फिर आये थे, और माँ के सामने उसकी नौकरी के पता नहीं क्या-क्या खाके खींच गये। कहा, साहब

ज्यादा इन्तजार नहीं करना चाहते, जगह खाली है, किसी न किसी को तो रखना ही पड़ेगा और जाते-जाते उसे अगले दिन दोपहर को किसी वक्त दफ्तर पहुँच जाने की ताकीद कर गये।

अगले दिन बड़े बाबू और निर्मल बाबू ने उसे साहब के सामने पेश किया। साहब ने चन्द सवाल पूछ कर ठोंका-बजाया, कुछ दूसरी औपचारिकताएँ निभाईं और फिर जिस दिन से दफ्तर आना था, वह तारीख बता दी। सब कुछ इतनी आसनी से हो जायेगा, यह उसने कभी सोचा भी नहीं था। खास तौर से बेकारी के शिकार लोगों की दुर्दशा के बारे में जो कुछ वह जानता था उसकी तुलना में तो उसे कोई परेशानी हुई ही नहीं।

घर आकर उसने बाबू से बताया सब। वे फटी-फटी भावहीन आँखों से उसकी ओर देखते, कुछ जैसे समझने की कोशिश करते रहे। पता नहीं कुछ समझा या नहीं! फिर बिना कुछ बोले चुपचाप बिस्तर पर लेट गये। जो कुछ उसने बताया वह माँ ने भी सुना और नन्दो बुआ ने भी। नन्दो बुआ बहुत खुश थी। न वह लल्लन बाबू की महत्वाकाक्षाओं को समझती थी, न राजेन के ऊहापोह को। उसके लिए तो कोई दुनिया में पागल होगा, कोई मरेगा—यही तो शाश्वत नियम है। बड़ी बात यह थी कि बहुत नहीं बिगड़ा, बाप के बेकार होते ही बेटे को काम मिल गया। और साहब-सूबा नहीं बना तो क्या, कोई बोझ ढोने की नौकरी नहीं, है तो कुर्सी पर बैठने वाली ही—कहानी पूरी तरह दुखान्त नहीं हुई, यही बहुत था।

"अरे सवा सेर लड्डू चढ़ाना राजेन की माँ!" उसने कहा, "हाँ, इसमें जरा भी कोताही न करना।"

"हाँ-हाँ, जीजी, भला क्यों नहीं चढाऊँगी।"

राजेन की माँ ने यही नहीं किया, पहली बार उन्होंने अपनी ओर से कोई निर्णय लिया। लल्लन बाबू की नौकरी खत्म करते वक्त जो रुपये मिले थे उसने राजेन को दफ्तर जाने लायक दो जोड़े अच्छे कपड़े बनवा दिये। नन्दो बुआ का कहना था, लगे हाथों एक साइकिल भी ले दो। ट्रिन··· ट्रिन करता दफ्तर जायेगा। लेकिन वह इतनी हिम्मत नहीं कर

सकी। लड़का कमाने लगा है खुद ही ले लगा यह सोच कर संतोष कर लिया।

जिस दिन राजेन को दफ्तर जाना हुआ उस दिन लल्लन बाबू ने सुबह आठ बजे से ही घर के बाहर और बाहर से फिर घर के भीतर तक का चक्कर लगाना शुरू कर दिया। रह-रहकर वे राजेन के पास आते। बीच-बीच में जोर से चीख भी पड़ते। कहते—तेरा चपरासी अभी क्यों नहीं आया, तेरी गाड़ी कहाँ है, अभी तक ड्राइवर ने आकर सलाम क्यों नहीं किया? उसे तेरे दफ्तर के वक्त से एक घंटा पहले हाजिर हो जाना चाहिए। और चपरासी को तो दो घंटा पहले। उनके साथ जरा भी रियायत नहीं करनी चाहिए।···तू उन्हें आज ही ठीक से समझा देना।···और समझाना क्या है, हुक्म दे देना।···अगर तुझसे न बने तो मेरे सामने पेश करना। ऐसी डाँट बताऊँगा कि बच्चा लोग देर से आना ही भूल जायेंगे···।

लल्लन बाबू का बहकना अब किसी के लिए कोई नई बात नहीं थी। पर रोग की तीव्रता हमेशा चिन्तित कर देती है। राजेन की माँ खाना बनाते-बनाते घबरा कर चौके से बाहर निकल आयीं और शुरू हो गयी उनकी थरथर कँपकँपी। राजेन भी कपड़े पहनते-पहनते ठगा-सा रह गया। यह क्या शुरू कर दिया बाबू ने! इधर कुछ दिनों से वे पहले के मुकाबले कुछ ठीक व शान्त रहने लगे थे। इसलिए उन्हें दवा देने में कुछ ढिलाई कर दी थी। तेज नशीली दवाएँ थीं—डाक्टर ने यह करने के लिए कहा भी था। पर अब पछताने लगा कि आज फिर क्यों नहीं वही दे दिया···।

लल्लन बाबू सहसा उसके सामने आ खड़े हुए। बेटे के सामने अब भी कुछ ऊँचे, पर उससे बहुत कमजोर, बहुत दुर्बल और कुछ झुके-झुके से लग रहे थे। झूलती मांसपेशियाँ और बिखरे-पके बालों के नीचे न जाने कब का थका चेहरा। पकी बरौनियों के नीचे, कोटरों में धँसी आँखें उसकी ओर तरेर कर बोले—"तू खड़ा-खड़ा मेरा मुँह क्या देख रहा है···। इतने वक्त तक रेजिडेंट इंजीनियर साहब खाने की मेज पर बैठ जाते हैं। नौकर काँटे-चम्मच सजा रखता है, और फिर आया खाना लगा

जाती है···। मैंने खुद देखा है। ···तेरी मेज कहाँ है? अभी तक खाना क्यों नहीं लगा···?"

फिर उसके दोनों कन्धों पर हाथ रखकर वे उसे उसकी पुरानी मेज के पास तक ढकेल ले गये और जबरन उसके स्टूल पर बैठा दिया।

राजेन ने अपना माथा पकड़ लिया। सहसा वह अपने को रोक नहीं सका।

"यह किस दिन की सजा दे रहे हो बाबू···!" सब्र का बाँध आँसुओं में फूट पड़ा···। लल्लन बाबू उसकी ओर मानो कुछ गुस्से से देखते रहे। फिर एकाएक क्या हुआ कि अपनी अब तक की सारी बातें भूल कर वे भी बच्चों की तरह रोने लगे।

नन्दो बुआ अपने ओसारे से कब से यह सब देख-देख कर कुढ़ रही थी। जब तक लल्लन बाबू बाहर-भीतर कवायद करते बमक रहे थे, तब तक सब ठीक था। ऐसा कितनी ही बार उन्होंने किया था, और बमक-तमक कर थक जाते तो अपने आप ही चुप हो जाते, या राजेन उन्हें दवा देकर सुला देता। उसके न रहने पर अब कभी राजेन की माँ भी उन्हें दवा खिला लेती। या यह न हो पाता तो वह खुद ही उन्हें हाथ पकड़ कर किसी तरह सुला देती। पर आज उसके पहले ही बाप-पूत का यह कैसा रडरोवन···! फिर आज के ही दिन। असगुन न होने को हो तो भी हो जाये···। भला ऐसा भी क्या बौराना···!

अदहन चढ़ा कर चावल डालने की तैयारी करती कुछ देर तक अपने ओसारे में ही बडबड़ाती रही।

—हुँह! ऐसा रो रहे हैं जैसे लड़का नौकरी पर नहीं जेहल जा रहा हो··। इस दिन के लिए लोग क्या-क्या नहीं करते। पूजा-पाठ, नेम-बरत, कोसिस-पैरवी, क्या नहीं करते। दर-दर घिघियाते, दाँत चियारते है, अमले-अहलकारों की मुट्ठी भी गरम करते है···तब कहीं कुछ काम बनता है। यहाँ घर बैठे लड़के को काम मिल गया तो रोने बैठे हैं। हुँह! बिना हाथ हिलाये अमरित भी मिले तो जहर लगता है···। इतना तो वह बड़ी से बड़ी विपत पर भी नहीं रोई···। उनके मरने पर भी नहीं!

पर अपने जीवन के दुखद प्रसंगों की याद आने पर उसने अपनी मन की धारा वहीं रोक दी। उसे अब उठना ही पड़ेगा। उसके बिन कुछ भी तो नहीं हो सकता इस घर में। यही राजेन जब छोटा था तब से उसकी बीमारी-आरामी में दवा-दारू से लेकर क्या-क्या नहीं करना पड़ा है उसके लिए, तो अब ही क्यों उसके बिना कुछ हो जाये। अपने भारी थलथल बदन को सँभालती, हाँफती-कराहती वह उठ खड़ी हुई।

सहसा उसे आगे बढ़ते कुछ हिचक-सी होने लगी। इधर लल्लन बाबू की बौराहट का उग्र रूप वह समझ नहीं पाती। जिस दिन से उन्होंने जोगियों की सिद्ध की हुई तावीजों वाली करधनी उतार कर फेंकी थी तब से वह उनके नजदीक जाने से भीतर ही भीतर कुछ थर्रा उठती है। ऐसे विकराल दिखाई देते हैं कि मानो साक्षात् सिर पर बरम बोल रहा हो। अभी रोने के पहले भी किस तरह आँखें तरेर कर देख रहे थे लड़के को···? अब वह उन्हें समझाने जाये और वे फिर बमक पड़े तो···?

पर उसे बीच में आना तो पड़ेगा ही, नहीं तो न जाने कैसी साँसत कर डालेंगे लड़के की। अच्छा है, अपनी चारपाई पर बैठे बिफर रहे हैं। बिफरें वहीं बैठे-बैठे जितना जी चाहे···।

"ए लल्लन बो कल दही मँगवाई थी, है न!" उसने आँगन में आकर आवाज दी।

राजेन की माँ की जान में जान आयी।

"हाँ···जीजी है तो।"

"तो खड़ी मुँह क्या देख रही है···ला उसी का शरबत बना। खाना-पानी रहने दे। दफ्तर में ही खाने की छुट्टी में कुछ खा लेगा। अभी यही सगुन करके उसे जाने दे···।" अब राजेन की ओर मुखातिब हुई—"और बेटा तू उठ! तू क्यों दुखी होता है, बाप के हल्ले-गुल्ले से। यह तो रोज का ही करतब है उनका। तू तो जानता ही है, उठ···" इसके साथ ही वह राजेन का हाथ पकड़ कर आँगन में लिवा गयी और लोटे से खुद ही उसके चुल्लू में पानी ढाल उसके हाथ-मुँह धुलाने का उपक्रम करने लगी।

राजन की माँ दही और गुड़ एक गिलास में घोल लायी

लल्लन बाबू रोते-रोते ही यह सब देखते रहे। राजेन को शगुन-अशगुन की बातों में विश्वास नही था। पर नन्दो बुआ कुछ कहती है तो टालते भी नही बनता। उसने हाथ-मुँह धोकर अपने नये कपड़े पहने और माँ का लाया दही का शर्बत पीने लगा।

तभी लल्लन बाबू उछल कर फिर उसके सामने आ खड़े हुए।

—"नही, नही! तू यह सब क्या दकियानूसी काम कर रहा है। खाना खाकर साहब कार मे बैठने के पहले बिल्लौरी काँच वाले प्याले मे डिब्बे मे निकाल कर कुछ पीते हैं—हारलिक्स या कोई चाकलेट···। मैंने सब देखा है···।" उन्होंने कहा और हाथ बढ़ा कर गिलास जैसे छीनने की कोशिश करने लगे।

नन्दो बुआ में न जाने कहाँ की ताकत आ गयी। इसके पहले कि उनका हाथ गिलास तक पहुँचता उसने बीच में ही उनका हाथ पकड़ लिया और उन्हें राजेन से अलग खींच ले गयी।

"तुम बाप-बेटे के बीच क्यों पड़ रही हो···?" लल्लन बाबू तेज, कर्कश आवाज में प्रतिवाद करते रहे। लेकिन नन्दो बुआ की पकड़ भी नही छुड़ा पाये और उसके साथ-साथ खिचते चले आये। उन्हे उसने राजेन से अलग खीच कर फिर कमरे के अन्दर पहुँचा दिया और उनकी चारपाई पर लुढ़का-सा दिया। वे बच्चों की तरह फिर बिलखने लगे और उसी तरह कहा, "लेकिन साहब यह सब नही पीते···।"

नन्दो बुआ का पता नही कब का गुस्सा उबाल खाकर नथुनो तक आया और फिर जैसे फूट पड़ा।

"तुम क्या साहब-साहब की रट लगाये हो। साहब तो दारू भी पीते हैं। तो क्या अब वह भी कहोगे पीने के लिए!"

लल्लन बाबू सहसा सन्न रह गये।

"दारू···?"

"हाँ, हाँ! दारू! और आपस में मेमे बदल-बदल कर नाचते फिरते हैं। क्या मैं जानती नही हूँ। तुम चले हो मुझे बताने। साहब ये करते हैं, साहब वो करते हैं। अरे साहब-सूबा तो वो-वो करते है कि नरक मे

ी जगह न मिले। और तुम चाहते हो वही सब राजेन भी कर ···?

"नहीं, नहीं ! राजेन दारू नहीं पीयेगा। ठीक है. सुबह तू दही का शर्बत ही पी लिया कर···और मेमें भी नहीं नचायेगा···यह मुझे नहीं पसन्द है।" इस बीच राजेन को मौका मिल गया। उसने जल्दी-जल्दी शर्बत खत्म किया और चुपचाप घर के बाहर निकल गया।

लल्लन बाबू फिर घर से बाहर की ओर लपके। राजेन गली से निकल कर नयी बस्ती वाली सड़क पर मुड़ता दिखायी दिया। लल्लन बाबू ने वहीं से चिल्ला कर कहा, "देख ! ड्राइवर प्यारेलाल को नीली वर्दी सिलवा देना। मैंने उससे कहा था···।"

राजेन ने पता नहीं सुना या नहीं। उसने पलट कर पीछे भी नहीं देखा और नजरों से ओझल हो गया। लल्लन बाबू वहीं ड्योढ़िया पर खड़े और न जाने क्या-क्या चीखते रहे। नन्दो बुआ ने एक बार सोचा, उन्हें अन्दर लाकर सुला दे। पर हताश भाव से वह अपने ओसारे में लौट गयी। आज यह सब करने को तो कह दिया था, पर एकाएक क्यों अब भीतर ही भीतर विचलित-सी महसूस कर रही थी। हे भगवान, क्या होने वाला था। भात का पानी उफन कर अँगीठी में रखे कोयलों को छनछनाता हुआ बुझा रहा था। पर उसने उधर ध्यान भी नहीं दिया। इसके बदले अपने तोते के पिंजरे के सामने बैठ कर उससे बोल-बोल कर जैसे मन को शान्त करने का प्रयत्न करने लगी, "परबत्ते ··कहो सि··· ···ता···रा···म···राम···सित्ता···कहो परबत्ते, कहो।"

कहानी के इधर-उधर

यहाँ यह कहानी खत्म हो जानी चाहिए। एक क्लर्क का बेटा क्लर्क बन गया और बेघर होते-होते समाज-चिन्ता में रत एक नेता का राज-पाट लौट आया। लेकिन बहुत कुछ कहानी के इधर-उधर भी होता है। उसे बताये बिना कहानी खत्म तो हो सकती है, पूरी नहीं होती…।

बीस

बड़े बाबू को सन्तोष है।

उन्हें सन्तोष है कि एक बरबाद होते परिवार को बचा कर उन्होंने पुण्य का काम किया है। एक आदमी की कहानी का दुखद अन्त उनकी वजह से बच गया।

पर सन्तोष उन्हें यही नहीं है।

उन्हें सन्तोष है कि दुनिया में सब ठीक-ठाक है। वही हुआ है जो होता आया है। राजा का बेटा राजगद्दी सँभालता है तो क्लर्क का बेटा अपने बाप की जर्जर दीमक लगी कुर्सी के सिवा और क्या सँभालेगा! हाँ, वही तो हुआ है जो होता आया है। ऐसा न होता तभी दुनिया में कुछ गड़बड़ हो जाती। पर उन्हें सन्तोष है कि यह बड़ी दुर्घटना बच गयी और उसके एक कारण हैं वे खुद...।

लोहे के हाथी जैसे भारी-भरकम फाटक जैसे कभी बन्द न होते। अन्दर घुसते ही बजरी बिछा एक कंकरीला रास्ता ट्रांसफार्मर छाते और बायलर रूम की तरफ चला जाता। उसके एक ओर एक छोटा-सा बाग और दूसरी ओर ट्रांसफार्मर को ठंडा रखने के लिए सैकड़ों फौवारों वाला एक टैंक था। फौवारे हर वक्त चलते रहते और तेज धूप में भारी-भरकम मशीनों, जलते कोयले की गंध और धुआँ उगलती चिमनियों के बीच भी पानी की फुहारों पर दर्जनों इन्द्रधनुष तैर जाते।

पर इन सबसे बाबुओं का कोई सरोकार नहीं था। रेजिडेंट इंजीनियर और असिस्टेंट इंजीनियर को छोड़ कर बाबुओं के बीच से उधर शायद ही कभी कोई जाता। बाबुओं की दुनिया सिमटी थी फाटक की बायीं ओर लंबे सड़क चहारदीवारी में लगे हुए दफ्तर के पाँच-छह कमरों तक जिनके आगे अहाते के भीतर की तरफ एक लम्बा सँकरा बरामदा खिंचा था। इन्हीं में साहब का चैम्बर था जिसके बाहर एक बारिकनुमा हाल में अपने कद से काफी बड़ी मेज के पीछे बैठे बड़े बाबू

जैसे इससे दफ्तर ही नहीं सारी दुनिया का शासन चलाया करते। लम्बे बरामदे में सबसे आखिरी कमरा निर्मल बाबू की रियासत—उनका स्टोर्स विभाग था और इन्हीं में अपनी-अपनी मेजों से चिपके बाबू लोग जैसे साहब और बड़े बाबू के हुक्म की चौहद्दियाँ नापा करते। और अब उन्ही में शामिल हो गया था राजेन।

उसे याद है, बचपन मे कभी-कभी वह पिता के जूते अपने नन्हे पैरो मे पहन लेता। उनकी कोई गंदी कमीज भी ऊपर डाल लेता जो जमीन पर घिसटती रहती। और वह बाप की नकल उतारते हुए उन्ही की तरह चलने की कोशिश करता। इस पर नन्दो बुआ कभी-कभी अपनी बेडौल मोटी नाक से उसके पेट में गुदगुदी करती और कभी उसे ऊपर उछाल कर गोद मे लपक लेती। पर कभी-कभी वह उस लम्बी कमीज में उलझकर जमीन पर गिर भी पड़ता।

···उसे लगा कि वह फिर उसी लम्बी कमीज मे उलझ कर गिर पड़ा है। उस वक्त गिरने पर माँ या नन्दो बुआ लपक कर उसे उठा लेती··· पर अब! अब कौन उठायेगा! पूरे शरीर पर पड़े इस अदृश्य पर्दे को हटा कर कौन उसकी साँस लौटायेगा···? कभी-कभी वह घबरा कर किसी बहाने बाहर बरामदे में निकल आता जहाँ से फौवारो वाला टैंक दिखाई देता और वह पानी की फुहारों पर नकली इन्द्रधनुषों को देखता अपने यथार्थ को झुठलाने की कोशिश किया करता··।

"क्या देखते हो यहाँ ?" एक दिन दफ्तर के एक और क्लर्क परमात्मा बाबू ने उससे पूछा था। उसके पिता के साथ मित्रता के नाते जिन कुछ लोगों को उससे यहाँ सहानुभूति थी उनमें एक यह भी थे। उनकी दाढी हमेशा बढ़ी रहती। वे टाइप से लेकर दफ्तर के बहुत तरह के दूसरे काम करते थे और बीडी में गाँजा भर कर सुट्टे भी लगाया करते।

"कुछ नहीं चाचा जी, यों ही खड़ा हूँ।" राजेन ने कहा।

लेकिन परमात्मा बाबू हँस पड़े। तेज खोखली हँसी, "शुरू में सभी देखते हैं यह···फिर दफ्तर की कब्र में दफन होते ही इस चहारदीवारी मे सब खो जाता है· लेकिन मैं नहीं रोकूँगा···देखो जब तक देख सकते हो, यानी जब तक बड़े बाबू देखने दें···।" उन्होने उसकी ओर देखकर

धीरे से अपना आसू दबा दी, फिर जो मोटा-सा रजिस्टर लिये साहब के कमरे से बाहर निकले थे उसे बगल में दबाये अपनी सीट की ओर बढ़ गये।

राजेन भी अपनी जगह पर आकर बैठ गया। खुद उस पर बड़े बाबू का आतंक कम नहीं था। वह बाहर आया ही इसलिए था कि वे भी साहब के कमरे में थे। परमात्मा बाबू भी साथ ही गये थे, वे बाहर निकल आये थे, क्या पता कब बड़े बाबू भी बाहर आ जायें…।

कमरा झुलस रहा था। इस सारे दफ्तर में सिर्फ साहब का कमरा ठंडा रहता जहाँ कूलर लगा था। बाकी कमरों में सिर्फ पंखे थे, जिनकी हवा मौसम की गर्मी को फैला कर और अधिक झुलसाया करती। बिजली के दफ्तर में ऐसी कंजूसी क्यों? वह कभी-कभी सोचता। इस वक्त भी वह यही सोचने लगा। लोग इसके बारे में कभी कुछ कहते क्यों नहीं? पर तभी उसे परमात्मा बाबू की हँसी याद आ गयी। वह खोखली हँसी और उनकी वह बात—इस चहारदीवारी में सब कुछ खो जाता है। उनके हल्के मजाकिया अन्दाज के बावजूद कैसा दयनीय लग रहा था उनका चेहरा, शायद उन्होंने भी कभी सोचा होगा यह, शायद बाबू के साथ भी यही हुआ होगा। और क्या उसके साथ भी यही होगा? उसे फिर घबराहट-सी होने लगी।

तभी बड़े बाबू भी साहब के कमरे से लौट कर अपनी जगह पर बैठ गये। उन्होंने उसकी ओर देखा। वह इस वक्त खाली था। बड़े बाबू ने कुछ कहना चाहा, पर माथे पर हल्के बल पड़ कर रह गये। बहुत चाह कर भी उसे कुछ कह नहीं पाते। उसे यहाँ लाकर शुरू में एक उजड़ते परिवार को बचाने का पुण्य अर्जित करने का सन्तोष ही अनुभव किया था। पर जैसे पढ़ने में तेज था उसी तरह काम में भी तेज निकला है। फाइलिंग, लेजर, डिस्पैच और छोटी-मोटी ड्राफ्टिंग जिसे सीखने में लद्धड़ लोग पूरी जिन्दगी लगा देते हैं, वह महीने भर में ही इस फर्राटे से करने लगा है कि साहब की निगाह में आये बिना न रहा। और साहब या खुद वह अगर चिट्ठियों पर सिर्फ रिमार्क नोट कर देते हैं तो वह उसके आधार पर पूरी दफ्तरी चिट्ठी तैयार करा कर साहब के पास भेज सकता

है। खुद साहब ने आगाह किया था—नौजवान है, उसके साथ भी उसी तरह का बर्ताव नहीं कर सकते जिस तरह औरों के साथ। क्या पता किस तरह पेश आये। कौन जाने उलट कर जवाब दे दे। और जानते हैं, इस तरह की बातों पर डाँटा-फटकारा ही जा सकता है, आजकल इतने तरह के कानून हैं कि इसी पर किसी को नौकरी से निकालने की धमकी नहीं दी जा सकती। पर वे बड़े बाबू हैं, कुछ रोब-रुतबा तो रखना ही है···।

"खाली क्यों बैठे हो ? तुम्हें कुछ चिट्ठियाँ ड्राफ्ट करने को दी थीं। हो गयी क्या ?"

"जी हाँ, टाइप बाबू के पास हैं।"

बड़े बाबू अपने पालिश किये पम्प जूते चरमर करते दूसरे कमरे मे टाइप बाबू के पास बढ़ गये। जाते-जाते दबी जबान कहते गये—"मुझे बिना दिखाये नहीं देना चाहिए वहाँ।" हालाँकि वे जानते थे कि उनमें शायद ही कोई गलती होगी। काबिल वह सचमुच है, और अगर कुछ और होशियार हो जाये तो—सिर्फ नौकरी ही नहीं पक्की हो जायेगी बल्कि···और यह सोच कर उन्हें काफी सुख मिला—शायद उनके बाद उनकी कुर्सी निर्मल बाबू नहीं हथिया सकेंगे। पर यह सब दूर की बातें हैं। अभी रिटायर होने में भी कम से कम पाँच साल हैं। और उसके बाद भी दो साल का एक्सटेंशन मिल सकता है···। अभी तो उसे अपने अफसरी रोब-दाब में ही रखना है।

पाँच बज गये थे।

राजेन ने अपना मोटा-सा रजिस्टर बन्द किया, कागज-पेंसिलें मेज की दराज में डाली और चलने के लिए उठ खड़ा हुआ।

अभी वह कम्पनी के बड़े फाटक पर ही पहुँचा था कि पुराना चपरासी किशोर अपनी परिचित—दौड़ती हुई मुद्रा में उसके पास आया।

"आपको बड़े बाबू बुला रहे हैं।"

"बड़े बाबू !···अच्छा चलो !" वह किशोर के साथ चल पड़ा।

राजेन ने आकर उन्हें नमस्ते की और उनकी मेज के आगे खड़ा रहा।

बड़े बाबू का ध्यान भंग हुआ। इत्मीनान से अपनी खास मोटी बीड़ी सुलगायी और एक कश में जैसे दिन भर की थकान बाहर निकाल कर राहत की साँस ली। हालाँकि वह जानते थे कि राजेन सामने खड़ा है, फिर भी जैसे उसे कुछ देर बाद ही देख सके।

"कहाँ चले···?"

"घर जा रहा था!"

"घर?···क्यों?"

"छुट्टी हो गई थी इसलिए!"

"लेकिन मैं तो बैठा हूँ···!"

—आप बैठें न जितनी देर चाहें, राजेन ने कहना चाहा। पर बड़े बाबू और दफ्तर के अन्य लोगों के साथ सम्बन्ध अभी पिता के ही माध्यम से जोड़ता था। वे सब पिता के साथी थे, उसका फर्ज है उन सब का अदब करना, इसलिए वह चुप ही रहा।

"तुम इस तरह काम नहीं कर पाओगे···।" बड़े बाबू ने कहा, "घड़ी में पाँच पर सुई पहुँची नहीं कि लोग बस्ते बाँध कर यों भागते हैं, जैसे प्राइमरी स्कूल के बच्चे हों।···बच्चों और बड़ों में कुछ फर्क तो होना चाहिए। कौन गाड़ी छूटी जा रही है।···लोग जानते नहीं कि साहब खुद भी छुट्टी के बाद बैठते हैं। कभी-कभी दफ्तर का भी मुआयना करते हैं। सब रिकार्ड में दर्ज रहता है कि कौन कितना काम करता है, कितनी देर तक बैठता है, आफिस के बाद भी कौन काम में दिलचस्पी लेता है। फिर आगे चलकर उसी की तरक्की होती है···।"

कोई और यह कहता तो शायद राजेन बहस करने लगता, हालाँकि लोगों की बातें सुन कर चुप रह जाने की उसे आदत थी। फिर भी बड़े बाबू का जीवन-दर्शन खत्म नहीं हो रहा था, इसलिए कहा, "अगर कोई काम हो तो लाइये कर दूँ।"

"ठीक है, ठीक है! मेरा कहना मानोगे तो जरूर एक दिन मेरी कुर्सी पर तुम्हीं बैठोगे···पर मैं किसी काम की वजह से नहीं कह रहा था यह! जो बताना चाहता हूँ वह बिल्कुल दूसरी ही बात है।" बड़े बाबू ने कहा, और कुछ देर चुप रहे, मानो किसी अति गूढ़ बात के लिए

शब्द न मिल रहे हो। फिर कहा यह है दफ्तर वैसे तो तुम मेरे लड़के हो, पर यह भूल जाओ। यहाँ न कोई किसी का सगा होता है, न रिश्तेदार! बस, काम से काम रखो और काम से काम का मतलब···मेरी बात समझ रहे होगे···। अगर कोई काम ठीक नही हुआ तो मैं डॉट-डपट मे कोई कसर नही रखता, चाहे कोई भी हो।···और हाँ, पाँच पर घडी की सुई पहुँचते ही कभी भागने की कोशिश मत करना···!" बडे बाबू ने किसी तरह अपनी अधपकी मूँछों के नीचे हँसी की लेई चुपड़ ली···।

"जी।"

"ठीक है जाओ। मगर जो कहा है याद रखना।"

राजेन जल्दी से कमरे से बाहर निकल गया। उसे डर था कि कही उन्हें अपने गूढ़ दफ्तरी दर्शन की कोई बात फिर न याद आ जाये। हुँह, अजीब है यह सब। हर जगह कुछ-न-कुछ ऐसा ही मिलता है जो अच्छा नहीं लगता। घर में बाबू की बीमारी और यहाँ बड़े बाबू। वही क्यो होता है जो अच्छा नहीं लगता, और वह सब क्यों नही होता जो अच्छा लगे, जैसे पिता बीमार न रहें, माँ तिल-तिल कर खत्म न हो, और वह मंजु के साथ देर तक नंगे पाँवों घास के मैदान वाले उस पार्क में घूम सके!

"कहो बेटा! सुन आये मियाँ सुकरात की नसीहतें।" यह निर्मल बाबू की आवाज थी जो फाटक पर दरबान चन्दनसिंह की कुर्सी पर बैठे चिमगोइयाँ कर रहे थे। दरबान चन्दनसिंह उनके लिए अदब से अपनी लकड़ी की कुर्सी छोड कर उनके किसी दफ्तरी मजाक पर हँस रहा था। निर्मल बाबू ने उसे सम्बोधित कर कहा, "मैं यहाँ आया तो सुना तुम्हें उसने पकड़ बुलवाया है···। शायद कोई गलती हो गयी हो तुमसे और इसीलिए डाँट-डपट न रहा हो, यह देखने दबे पाँवों मैं भी उधर गया, पर देखा कि वहाँ तो दफ्तर मे तरक्की का प्रवचन चल रहा था। कुछ बातें अभी गाँठ बाँधी कि नहीं तुमने···? मुझसे बोले तो कहूँ कि करो बेटा तरक्की जितनी चाहो, रेजिडेंट इंजीनियर बन जाओ तब जानूँ कि हाँ की है कुछ तरक्की···। वो तो होने से रहे फिर किसकी हाय-हाय!"

राजन हँस दिया। चौकीदार चन्दनसिंह भी अपनी घनी मूँछों को फैलने से रोकता रहा। ज्यादा हँसना शायद बेअदबी होती। निर्मल बाबू के सामने भी और बड़े बाबू के लिए भी। कौन कभी शिकायत पहुँचा दे, कोई क्या कह सकता है ?

निर्मल बाबू अपनी तमाम बुराइयों के बावजूद, जो उसने बड़े बाबू और कुछ दूसरे लोगों से सुन रखी थी, उसे अच्छे लगे थे। बहुत बेलौस और साफ बात कहने वाले और अपने से कम उम्र के लोगों के साथ भी याराना कायम कर लेने की कला में माहिर। न बड़े बाबू की तरह साहब के कमरे में जाते हुए फर्शी अन्दाज में सलाम बजाते, न उनके साथ दफ्तर के बाद अकेले में बैठ कर गुपचुप साजिशें करते। पर जिस महकमे —स्टोर्स विभाग—के इंचार्ज थे उस पर ऐसी मजबूती से जम कर बैठे थे कि न साहब उन्हें वहाँ से हटाते थे और न वहाँ से उन्हें हटाने के लिए बड़े बाबू के षड्यन्त्र कभी सफल होते। अफसर, मातहत सभी उनसे खुश रहते और बड़े बाबू आतंकित। शायद यही उनकी लोकप्रियता का राज था।

"और क्या कह रहा था वह···?" निर्मल बाबू ने राजेन से पूछा।

"कह रहे थे कि दफ्तर की छुट्टी के बाद भी बैठना चाहिए···।"

"साला···हरामी है। औरों से यह नहीं कह सकता। तू नया है न, तो सोचता है तेरे ऊपर आसानी से धौंस जमा लेगा···।"

राजेन के साथ वे भी चल पड़े। कुछ दूर आगे जाकर बड़े स्नेह से उसके कन्धे पर हाथ रख दिया।

सहसा उन्होंने कहा, "बड़ा अजीब लगता है तेरे साथ चलते···।"

"क्यों ?···क्यों चाचा जी···?"

निर्मल बाबू ने जैसे उसकी बात नहीं सुनी।

"अगले दिसम्बर में तू बीस का हो जायेगा, हो जायेगा न···!" उन्होंने कहा।

"हाँ, हो तो जाऊँगा।" राजेन ने कहा, "लेकिन आप क्यों पूछ रहे हैं यह सब ?··· मेरे साथ चलना क्यों अजीब लग रहा है आपको ?"

"तू नहीं समझेगा यह सब···।" निर्मल बाबू जैसे कहीं खो गये थे,

और जैसे उनकी आवाज कहीं दूर से आ रही थी, तू सचमुच नहीं समझेगा यह सब। तेरे बाबू और मैंने करीब-करीब एक साथ ही यहाँ नौकरी शुरू की थी। इसी रास्ते से हम लोग काफी दूर तक साथ-साथ पैदल जाया करते ...कितनी सुख-दुःख की बातें किया करते हम लोग, और फिर जिस दिन तू पैदा हुआ था, मुझे अच्छी तरह याद है।" तुझे पता है? अस्पताल में अपनी माँ को बहुत तकलीफ देकर तू आया था इस दुनिया में...। तीन दिन भावज बेहोश रहीं। उनका पेट चीरा गया था। लल्लन बाबू यह खबर मिलने पर इसी रास्ते बदहवास अस्पताल की ओर भागे थे, मैं भी गया था उनके साथ। और तू पूछता है अजीब क्यों लग रहा है? क्या अजीब नहीं लगेगा यह कि जिसके पैदा होने पर हमने इतनी भाग-दौड़ की और फिर खुशियाँ मनायी, वही आज अपने बाप की जगह साथी बन कर चले... क्या यह अजीब नहीं लगेगा?

" ...और...वो देख, यही वह सड़क है जिधर से लल्लन बाबू तुझे स्कूल से लिवाने जाया करते। वे यहीं से इधर बायीं ओर मुड़ जाते और मैं सीधे रास्ते चला जाता। पर कभी-कभी मै भी साथ जाया करता।... वह यशोदा बाई स्कूल अब कितना बडा हो गया है। पहले दर्जा आठ तक का मिडिल स्कूल था—अब डिग्री कालेज है।

"लल्लन भैया तुझे खूब ऊँची पढ़ाई पढ़ा कर, किसी अच्छी नौकरी पर लगाना चाहते थे—तेरा वह स्कूल कितना बड़ा हो गया, लेकिन तू नहीं बढ़ पाया। अच्छा ही है कि लल्लन भैया अब सोच नहीं पाते, नहीं तो उन्हें कितना अफसोस होता यह सोच कर कि सब कुछ बड़ा हो रहा है, स्कूल, इमारतें, दफ्तर, सडकें...सिर्फ उनके साथ तू नही बढ़ पाया।

" और यह देख!" कुछ दूर आगे चल कर उन्होंने कहा।

"क्या?"

"यह सामने देख रहा है, बम्बई मिष्टान्न भण्डार! पहले यहाँ सुभीक हलवाई गुड के शीरे की जलेबियाँ बनाता था। जहाँ उसकी शीशे की आलमारियाँ हैं, वहीं पर वह जलेबियों के थाल पर भिनभिनाती मक्खियाँ उड़ाता बैठा रहता। तेरे जनम पर लल्लन भैया ने यहीं से मँगाकर जलेबियाँ खिलायी थीं—पर गुड़ के शीरे वाली नहीं, खालिस चीनी की

बनवाया था दो रुपय की। तब बहुत आ जाती थीं इतने में। अब यह कितनी बड़ी दुकान है···पर···।" निर्मल बाबू चुप हो गये।

"क्या चाचा जी···? आप कुछ कह रहे थे।"

"अच्छा ही है. लल्लन भैया अब सोच नहीं पाते।" इस बार फिर उनकी आवाज जैसे कहीं दूर से आती लगी।

कुछ दूर और आगे जाकर निर्मल बाबू अपने घर की ओर जाने वाले नुक्कड़ पर पहुँच कर विदा हो गये, ठीक उसी जगह से, जहाँ से वे लल्लन बाबू के साथ घर जाते समय विदा हो जाते थे।

राजेन घर पहुँचा तो काफी देर हो चुकी थी। शाम का धुँधलका घिर आया था। इसके पहले वह कभी देर से घर नहीं पहुँचा। मन में डर रहा था कि शायद बाबू कुछ कहेंगे। पहले कभी देर से घर आने पर कितना नाराज हुआ करते! पर वे अपने मोढ़े पर बैठे एकटक कोने में रखी लालटेन की ओर देख रहे थे। उसकी आहट पर एक बार उनकी आँखें उसकी ओर घूमीं। पर टिमटिमाते दीये की लौ की तरह सिर्फ झपझपा कर रह गयीं।

राजेन ने राहत की साँस ली।

अच्छा ही हुआ कि वे बमके-नमके नहीं। हालाँकि इधर जब से वह काम पर जाने लगा था उन्होंने कई बार भारी हंगामा मचाया था, और एक दिन तो हद ही कर दी थी। उस दिन उसने महीने की पहली तनखाह—ढाई सौ रुपये उनके हाथ पर लाकर रख दिये थे। वे उनकी ओर रद्दी कागज के टुकड़ों की तरह देखते रहे. फिर सहसा सारे नोट हाथ लहरा-लहराकर आँगन में बिखेर दिये थे।

"ये मेरी परवरिश करेगा···परवरिश···।" उन्होंने तेज-कर्कश आवाज में कहा और तमक कर आँगन में निकल आये थे। नन्दो बुआ के बहुत समझाने, मनाने पर वे घर के भीतर गये, पर रुपयों को हाथ भी नहीं लगाया। नन्दो बुआ ने ही सारे नोट इकट्ठे किये और उसकी माँ को सौंपे थे। माँ को पहली बार उस दिन दुःख की जगह क्षोभ हुआ था, और वह रात भर रह-रह कर सिसकती रही, उन्होंने कुछ खाया भी नहीं था।

इसलिए अच्छा ही था, वे आज बमके-तमके नहीं। पर रोज से अलग यह उनका बुझापन भी कितना अजनबी लगा था। और फिर उनके बारे मे निर्मल बाबू की बात भी बहुत देर तक याद आती रही—अच्छा ही है कि वे सोच नही पाते···।' क्यों अच्छा है यह ? वे आखिर क्या कहना चाहते थे ?

इक्कीस

राजेन निर्मल बाबू की बात पर कितनी देर सोचता रहा, उसे कुछ ध्यान न रहा। सहसा नई बस्ती के पहरेदारों की सीटियाँ गूँजी तो वह चौंक पडा। पहरा रात साढ़े ग्यारह बजे से शुरू होता है। यह उसे ठीक नहीं मालूम था—घर में कोई घड़ी नही थी। यह नन्दो बुआ बताया करती थी कि पहरेदार की सीटी साढ़े ग्यारह बजे शुरू होती थी और इसी अन्दाज से वह अपना समय नापा करता! पहली सीटी बजते ही वह सोने का उपक्रम करने लगता। पर आज वह समझ नहीं सका कि उसने पहले राउण्ड की सीटी सुनी या दूसरे या तीसरे राउण्ड की जो उसके आध-एक घंटे बाद लगती है। अपनी चिंता में डूबे रहने के कारण उसे इसका ख्याल ही न रहा, और फिर किसी शादी के जश्न के लाउडस्पीकर बज रहे थे जिससे पहले अगर सीटी बजी भी होगी तो उसने सुना नही। यह भी नन्दो बुआ से ही पूछना चाहिए। उसे इसका बहुत अच्छा अदाज है। करीब-करीब ठीक वक्त ही बतलाती है। इसका ढग भी विचित्र था उसका। समय वह हमेशा माप-तोल के हिसाब से बताया करती—जैसे सवा ग्यारह को वह ग्यारह पाव या पौने बारह को पाव कम बारह कहा करती। हाँ, उसी से पूछना होगा। हो सकता है वह सो रही हो, राजेन के मन में बात आयी। उसकी नाक धीमे-धीमे घुरघुरा रही थी। हाँ सो ही रही थी वह। पर इससे उसे कोई परेशानी नही हुई। वह जागते हुई भी सोती रहती है और सोते हुए भी जागती रहती है—

यही वह बचपन से देखता आया है। जरा-सा खटका होते ही तुरन्त जाग सकती है और शंका मिटते ही तुरन्त फिर सो सकती है। कुछ देर तक वह उसकी नाक का घुरघुराना सुनता रहा।

गर्मी तेज थी। रात काफी बढ़ जाने के बावजूद जरा भी ठण्डक नहीं हुई। गर्मियों में वह इसी आँगन में सोया करता। पहले बाबू भी सोते थे, लेकिन बीमारी के बाद से वे हमेशा घर के अन्दर ही सोते। नन्दो बुआ हर मौसम में अपने ओसारे में ही सोया करती। उसका बिस्तरा भी हर मौसम में वही होता जो वह बचपन से देखता आया है—उसकी उमर जितनी ही बूढ़ी सुतली की खाट पर दो चीकट गद्दे और एक बहुत पुरानी रजाई, जिसके रंग का भी अब पता नहीं चलता था। गर्मी-सर्दी-बरसात—हर मौसम में वही जमी रहती। गर्मी में रात को सोते वक्त बस दालान पर पड़े टाट के पर्दे ऊपर उठा दिया करती।

राजेन ने सिरहाने रखी सुराही से डाल कर एक गिलास पानी पीया। अपनी कमाई से अब तक अपने लिए एक घड़ी चीज वह लाया था। लेकिन नन्दो बुआ को आवाज अभी भी नहीं दी। क्या होगा वक्त पूछकर—नींद नहीं आ रही है, वक्त जान लेने से क्या आ जायेगी? वह आँगन में ही टहलने लगा।

पहरेदारों की सीटी एक बार फिर गूँजी।

"तू अभी जाग रहा है, सोया नहीं!" राजेन उसे जगाये या नहीं, नन्दो बुआ को नींद में भी उसकी आहट मिल गयी।

"बड़ी गर्मी है नन्दो बुआ, नींद नहीं आ रही है...।"

"पर अब सो जा। पहरेदार तीसरा चक्कर लगा चुके...बारह पाव बज गये...ऐसे जागेगा तो कैसे चलेगा?"

"लेकिन तुम भी तो जाग रही हो बुआ...क्या तुम्हें भी नींद नहीं आयी!"

"अरे मेरा क्या है रे। जागूँ या सोऊँ। मुझे कोई दफ्तर-कचहरी जाना है...? पर तू मत जागा कर, सो जा...।"

"पर नींद ही तो नहीं आ रही है न!" राजेन ने कहा।

"क्यों? क्या फिकर हो गई तुझे...?"

"फिकर तो कोई नही

"फिर ?"

"असल में, मैं कुछ सोच रहा हूँ''' ।"

नन्दो बुआ उठ बैठी ।

"हे भगवान !" उसने आश्चर्य और भय के मिले-जुले भाव से जैसे माथा ठोंक लिया—"तू भी सोचने लगा'''!"

राजेन को भी उसकी इस मुद्रा से कम ताज्जुब नही हुआ ।

"क्यों ? क्या हुआ नन्दो बुआ ?"

"पूछता है हुआ क्या ! हुआ क्यों नही !'''तेरे बाप ने तो सोचते-सोचते ही अपनी ये हालत कर ली, अब तू भी सोचने लगा'''!"

"क्या सोचने से ही ऐसा हो गया बुआ ?"

"ऐ, तू मुझसे बन्स्टिरी मत कर ।" नन्दो बुआ डाँट कर बोली, "मैं कहती हूँ सोच बड़ी बुरी चीज है ।'''जैसे तू आज इस आँगन का चक्कर काट रहा है न, वैसे ही तेरे बाप काटा करते'''तुझे क्या पता ! टुइयाँ की तरह घुपटी मारे सोया रहता था'''पर अब तू भी ऐसा ही करने लगा ।'''मैं कहती हूँ क्या पढ़-लिख लेने का यही मतलब होता है कि रात-बिरात पैरों में सनीचर समा जाये ।'''अब जा तू सो !"

राजेन नन्दो बुआ की बात नही टाल सकता । वह अपनी चारपाई पर जा बैठा । पर वहाँ से भी बखूबी नन्दो बुआ से बात कर सकता था —आँगन था ही कितना बड़ा !

"लेकिन अपने आप तो कोई सोच में नही पड़ता बुआ !" राजेन ने वहीं से कहा, "बात अपने आप ही दिमाग में आ जाती है'''।"

"अच्छा ! कोई बात है," उसने कहा । उसे खुशी थी कि कोई स्थूल सूत्र तो मिला । जब तक ऐसा न हो, उसके पल्ले कुछ नहीं पड़ता, "क्या बात ।'''क्या तेरे दफ्तर मे कोई बात हो गयी, या कुछ और है'''?"

"नही, नही, ऐसा कुछ भी नहीं'''।"

"फिर !"

जो कुछ उसे मथ रहा था क्या उससे कह सकता था ! निर्मल बाबू की बातों को लेकर जिस तरह वह बार-बार अपने से ही सवाल कर रहा

था, उसी तरह क्या नन्दो बुआ से भी कर सकता था !

वह चुप रहा।

नन्दो बुआ मन-ही-मन हरी-हरी जपने लगी। आशंकित होकर हाँफती-कराहती वह अपने बिस्तर से उठी। राजेन के पास आयी और उसका माथा और बदन टटोल कर देखने लगी कि उसे बुखार तो नहीं है।

राजेन हँस पड़ा !

"मेरी तबीयत नहीं खराब है बुआ···।"

"फिर सोता क्यों नहीं ? किस फिकर में पड़ा है ?"

"मैं सोच रहा हूँ कि क्या दुनिया इतनी बुरी है कि उससे बचने के लिए जरूरी है कि आदमी सोचने-समझने लायक न रह जाये ?"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं भला ! ···बुरी बातें दिखायी न दें इसलिए आँखें फोड़ ले कोई···! कोई फोड़ेगा रे ! ···ये सब क्या बेकार की बातें सोचने लगा···।"

"फिर निर्मल बाबू ने ऐसा क्यों कहा ···?"

"कौन निर्मल बाबू, क्या कहा उन्होंने···!"

राजेन फिर कुछ नहीं बोला !

"बोल, क्या कहा···?"

"कुछ नहीं···।" राजेन ने तेज गर्मी के कारण माथे से पसीना पोंछते हुए कहा। पर फिर निर्मल बाबू की बातों से मन में जो सवाल उठे थे उन्हें अपने ढंग से कह बैठा।

"देखो न बुआ, सब कुछ बढ़ रहा है। मकान, सड़के, दफ्तर, इमारतें ···पर हम वहीं के वहीं हैं···यही कहा था उन्होंने।"

नन्दो बुआ की नाक फिर घुरघुराने लगी थी। राजेन ने सोचा कि वह सो गयी। पर उसी के बीच वह मानो किसी दुःस्वप्न के बीच बोल उठी—"कोई पेड़ तेरे सामने बढ़ रहा हो, और डाल-डाल पर बैठे गीध और कौवे तुझे एक भी फल न तोड़ने दें तो वह बढ़ना किस काम का···?"

राजेन कहीं भीतर से डर गया ! एक दिन बाबू अँधेरे में यही चीलें उड़ा रहे थे। नन्दो बुआ के दिमाग में भी वे कहाँ से आ बैठी !

तभी नन्दो बुआ ने उसे फिर झिड़का, "लेकिन अब सोयेगा भी कि

बात ही करता रहेगा—तुझे भी अपने बाप की आदत लग गयी है—छोटी-छोटी बातों पर रात-रात भर सोचने की।"

"लेकिन नींद नहीं आ रही है जो।" राजेन ने कहा।

"तो फिर चुप रह अब! कहीं तेरे बाप की नींद खुल गयी तो···जानता ही है···।"

इसके बाद सचमुच उसकी कुछ बोलने की हिम्मत नहीं हुई। नन्दो बुआ का तोता पिंजरे में किसी आहट पर फड़फड़ाया, पर नन्दो बुआ की नाक फिर मानो जाँत चलाने लगी।

एकाएक वह बहुत अकेला महसूस करने लगा। यहाँ का अँधेरा ही जैसे सारी दुनिया में छाया था जिसमें उसका साथ देने वाला कोई नहीं था। सब कुछ अकेले ही झेलना है।

नन्दो बुआ ने शायद करवट बदली। नहीं, करवट ही नहीं बदली। वह फिर धीरे-धीरे उठकर उसके पास आयी। शायद जिस तरह उसने राजेन को बात करने से मना कर दिया था, उसका उसे पछतावा होने लगा।

"बुरा मान गया क्या रे?" वह उसकी चारपाई पर बैठकर उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। "लेकिन बहुत नहीं सोचना चाहिए तुझे···।"

राजेन की आँखें छलछला आयीं। यह बुढ़िया उसकी कोई नहीं, लेकिन वही जैसे सब कुछ है, माँ-बाप सभी। जिन्दगी के आखिरी छोर पर टँगी वह उसे इस दुनिया का मुकाबला करने में कितनी मदद दे पायेगी? उसके ये कमजोर हाथ ही जैसे बहुत बड़ा सहारा मालूम हो रहे थे।···पर वह अँधेरे का घेरा! उसे लगा, यह घेरा और घना हो उठा है और सब कुछ—बाबू की बीमारी, उसकी पढ़ाई का छूटना, माँ का तिल-तिल कर जलना—इसी घेरे का एक हिस्सा है। इसे कौन तोड़ेगा···!

इन्हीं बातों पर वह कुछ देर और सोचना चाहता था।

पर सहसा विचारों का क्रम बदल गया।

आज काफी दिनों बाद जगदीश से मुलाकात हुई थी। हो सकता है,

ऐसा न रहा हो, पर उसका चेहरा काफी निस्तेज दिखायी दे रहा था। उसने नेताओं के अंदाज में पहले की तरह दोनों हाथों से आलिंगन कर उसका स्वागत किया, फिर सारा हाल-चाल पूछ गया। उसके पिता का, उसका। अब वह नौकरी करता है, यह जानकर खुशी भी जाहिर की और कोई काम पड़ने पर हर तरह की मदद का आश्वासन दिया। हाँ, राजेन ने महसूस किया—पहले की तरह संरक्षक की मुद्रा में नहीं बल्कि महज एक औपचारिकता के नाते। सचमुच वह श्रीहीन था अब।

उसे लोगों के राजनीतिक भाग्य से कोई मतलब नहीं, पर जगदीश से उसे सहानुभूति हुई।

"तेरे बप्पा अब कहाँ हैं?...आजकल मंत्री तो नहीं हैं न।" वह पूछ बैठा।

"अबे, यह सब राजनीति का खेल है। तू कुछ नहीं समझता। इस खेल के खिलाड़ी कभी हारते नहीं। आज पासा गलत पड़ गया तो मंत्री नहीं रहे। पर मैदान से थोड़े ही हट गये हैं। कल फिर हो सकते हैं। और अगर नहीं हुए तो क्या! हारें या जीतें, उनकी हैसियत में कोई फर्क नहीं पड़ता। इनकी एक जात होती है। लोग चाहे जिस पार्टी से रहें, एक दूसरे का ख्याल रखते हैं...। सुना है, सदानन्द जी कोई नई पार्टी बना रहे हैं सारे विरोधियों को लेकर, देश के बड़े-बड़े नेताओं का भी आशीर्वाद प्राप्त है उन्हें...।"

जगदीश शायद यह सब पिता के मंत्री न रहने की झेंप मिटाने या अपनी खिसियाहट छिपाने के लिए कह रहा था। राजेन ने इसकी चर्चा आगे नहीं बढ़ाई। इसके बदले पूछा, रामलखन जी का क्या हाल है?"

"रामलखन...?" जगदीश काफी देर तक हँसता रहा, फिर कहा, "वे तो तेरे पड़ोसी हैं, तुझे ज्यादा मालूम होना चाहिए...।"

"उनसे मेरी मुलाकात नहीं होती, हो भी तो यह सब मैं उनसे पूछ सकता हूँ क्या?"

"वे आजकल समाजवाद की बातें करने लगे हैं...अभी कांग्रेसी समाजवादी हैं, कल गैर-कांग्रेसी समाजवादी भी हो सकते हैं। इन दिनों तो कम्युनिस्ट कबूल अहमद के साथ घुल रही है जिसे वे कभी देखना

पसद नही करते थे सोचते हैं उसके समर्थन से एम० एल० ए० की सीट जीत लेंगे। इसीलिए कम्युनिस्ट समर्थक समाजवादी है···लेकिन अगर सदानन्द जी की पार्टी बनी तो सोशलिस्टों, जनसंघियों और पुराने काँग्रेस वालों के वोट मिल जायेंगे और वे नहीं जीत सकेंगे।···उस वक्त देख लेना, वे कम्युनिस्ट विरोधी समाजवादी बन जायेंगे···।"

राजेन ने जगदीश की बातों का अर्थ ढूँढ़ने की कोशिश की, लेकिन कुछ अधिक समझ नही पाया।

"मंजु जी कैसी है···?"

"बहुत देर बाद पूछा उसका हाल," जगदीश ने अर्थपूर्ण मुस्कराहट के साथ कहा, "तू उसे बहुत पसंद करने लगा था न! वह भी तुझे अक्सर पूछती है।"

राजेन कुछ समझ नहीं पाया कि क्या उत्तर दे। जगदीश ने जैसे कोई चोरी पकड़ ली थी उसकी।

जगदीश की मुस्कराहट कुछ और अर्थपूर्ण हो गयी।

"वह ठीक है, पर मैं अभी चलता हूँ। कभी फिर बताऊँगा तुझे, इस वक्त जरा जल्दी में हूँ···।"

—ओह, मंजु! कितनी दूर है वह।

वह पता नहीं कब तक उसी के बारे में सोचता रहा।

बाईस

"क्यों बेटा, क्या हुआ, चेहरा बड़ा उड़ा-उड़ा-सा लग रहा है।" अगले दिन राजेन के चेहरे पर थकान और सुस्ती के चिह्न देखकर निर्मल बाबू ने पूछा।

दफ्तर में लोग आ गये थे, पर अभी बाकायदा दफ्तर लगा नहीं था और बड़े बाबू के कमरे में लोग सुबह की सलाम-बन्दगी के साथ थोड़ी देर की चिमगोइयाँ कर रहे थे। यह करीब-करीब रोज का नियम है।

काम में तो लगना ही है, और फिर शुरू हो जायेगी दिन भर की हाय-हाय, खट-खट। और फिर इसी तरह एक-दूसरे की चिन्ताओं और दु:ख-सुख का पता भी चल जाता है। किसकी औरत बीमार है, किसके यहाँ लड़का हुआ है, किसकी रिश्तेदारी में शादी पड़ी है, किसके लड़के-लड़की या भाई-बहिन के साथ क्या हुआ—जीवन की आपाधापी में कोई एक ही बात नहीं होती···। कोई चिन्ता वाली बात हो तो लोग कुछ देर के लिए चिन्तित हो लेते हैं, सब ठीक-ठाक रहा तो दस-पन्द्रह मिनट के हँसी-मजाक हो जाते हैं—कभी-कभी अश्लीलता की सीमा को छूते हुए।

राजेन सबसे कम उम्र का होने के कारण इसमें मुक्त रूप से भाग नहीं ले पाता। उससे लोग पूछते हैं तो एक ही बात—लल्लन बाबू के बारे में। और वह बता देता है—"वैसे ही।"

आज भी यही बात पूछी थी लोगों ने। पर निर्मल बाबू की निगाह से उसके चेहरे की थकान नहीं छिपी।

"कुछ खास नहीं, रात नींद जरा देर से आयी।" उसने कहा।

"क्यों, क्या लल्लन भैया की तबीयत कुछ गड़बड़ हो गयी?"

"नहीं, तबीयत तो वैसी ही है, यों ही नींद नहीं आयी काफी रात तक।"

"काफी रात तक! यों ही! अबे क्या हो गया तुझे जो काफी रात तक नींद नहीं आयी। वह भी यों ही!"

इस बात पर सिर्फ हँसा जा सकता था।

"कुछ नहीं चाचा जी। कोई खास बात नहीं थी।"

"फिर भी रात भर जागता रहा!" निर्मल बाबू ने कहा, "अब मैं जागूँ तो एक बात है, बाय का मरीज हूँ। साला रात को खाना खाते ही पेट और छाती में गोला-सा फँस जाता है···या फिर बड़े बाबू जागें जिन्हें रात-भर दफ्तर की फिक्र रहती है, तो भी एक बात है। क्यों, है कि नहीं बड़े बाबू? पर तू बीस का भी नहीं हुआ और इतना अहमक है कि सनीमा, नौटंकी भी नहीं जाता और लगा रात भर जागने···। पूरा गधा है···।"

"अरे चढ़ती उमर है, कोई और भी बात तो हो सकती है निर्मल

बाबू !" इस बार परमात्मा बाबू ने अर्थभरी मुस्कान के साथ किसी दूसरी ओर इशारा किया, "कभी-कभी साहबजादे बरामदे में खड़े होकर फौवारों पर इन्दरधनुस देखते है।"

"अच्छा, ये बात है," निर्मल बाबू और सभी लोग साथ-साथ हँस पड़े, "शाबाश बेटा, लेकिन घबरा मत," उन्होंने मजाक को कुछ और खींचा, "बड़े बाबू ने तेरे लिए नौकरी ठीक की है, अब इसका भी इलाज कर देंगे···क्यों ? है न बड़े बाबू···?"

बड़े बाबू और राजेन दोनों का चेहरा लाल हो उठा। राजेन का शर्म के मारे और बड़े बाबू का गुस्से से !

"निर्मल बाबू, आप तो हद कर देते है, मजाक का भी एक वक्त होता है।" उन्होने कुछ घुडकी के स्वर में कहा और फिर अफसरी मुद्रा मे दफ्तर की दीवाल-घडी की ओर नजर डाली।

अभी दस बजने मे पाँच मिनट थे, पर बात का रुख बिगड़ता देख कर सभी अपनी मेजों की ओर बढ़ गये। निर्मल बाबू बडे बाबू की मुद्रा भाँप कर उनके उबलने के पहले ही अपनी रियासत में खिसकने की तैयारी कर चुके थे।

"तुम निर्मल बाबू की बातों पर कोई ध्यान मत दिया करो···" बडे बाबू ने उनके जाने के बाद कहा, "ये इसी तरह बकवास करते रहते है···।"

राजेन को भी निर्मल बाबू का मजाक अच्छा नही लगा था। कल की ऊँची बातें कहने वाले, और आज के ये हल्के मजाक करने वाले निर्मल बाबू में उसे जमीन-आसमान का अन्तर मालूम हुआ था।

पर उसने बड़े बाबू की बात पर कुछ कहा नही। चुपचाप अपने कागज-कापियाँ निकालकर मेज पर सजाने लगा।

मई की गर्मी अभी से रंग दिखा रही थी। सुबह आठ बजे से ही धूप में चिलचिलाहट भर गयी थी और गर्म लू के थपेड़े चलने लगे थे। बिजली के पंखे की हवा भी गर्मी को भगा नही पा रही थी। एक कूलर सिर्फ साहब के कमरे में लगा था, बाकी कमरो के दरवाजों-खिड़कियों पर किसी जमाने मे बने खस के पर्दे लगे थे जिन पर चपरासी किशोर,

जब उसका मजी होता पानी का छिड़काव कर दिया करता। फिर भी कमरे मे बाहर का अपेक्षा राहत थी

मई में हमेशा काम ज्यादा रहा करता। इसे वह यहाँ आने के पहले से ही जानता था, जब बाबू को इन दिनों ओवरटाइम काम करना पड़ता था। इसी महीने में कम्पनी का सालाना जलसा हुआ करता और साल भर के काम का ब्योरा पेश करना पड़ता। सारा दफ्तर यही बनाने में जुटा रहता।

हालाँकि वह यहाँ नया था, पर यह सब उसके लिए नया नहीं था। जब बाबू यहाँ काम करते थे, तो एक-दो बार उसे भी अपने साथ जलसे मे ले आये थे, क्योंकि दोनों ही बार उन्हे साल के साढ़े सात रुपये की जगह पन्द्रह रुपये की तरक्की मिली थी। उन्होंने अपनी उँगली पकड़ाये-पकड़ाये उसे उस वक्त के रेजिडेंट इंजीनियर से, जो कोई एंग्लो-इंडियन था, मिलवाया भी था।

वह हक्का-बक्का उसके उजले, लम्बे-चौड़े डील-डौल को देखता खड़ा रह गया था। बाबू ने बता दिया था कि कैसे उसे हाथ जोड़कर नमस्ते करेगा, पर वह यह भूल गया। लल्लन बाबू ने घुड़क कर उसे इसकी याद दिलाई थी और साहब से कहा था—हुजूर, बच्चा है न! अभी अदब-कायदे नहीं जानता। साहब हँस पड़ा था और हिन्दुस्तानी होने के बावजूद हँस कर अंग्रेजों की तरह बोला था—"वेल, वेल, लल्लन बाबू, हम टुमसे बौत खुश है।" उसने राजेन के सिर पर हाथ रखा था और अपनी मेज पर सजाये फलों में से अंगूर का एक गुच्छा तोड़ कर दिया था।

सालाना जलसे में कलकत्ते से कम्पनी के कोई डायरेक्टर आया करते। वे ही रिपोर्ट पढ़ा करते और साहब की सिफारिश पर सालाना तरक्की का ऐलान किया करते। बड़े बाबू के लिए साहब हमेशा खास तरक्की की सिफारिश करते। उस वक्त टाइमकीपर शकील बाबू, जिनकी हमेशा बड़े बाबू से किसी-न-किसी बात पर ठनी रहती, जवान थे और सालाना जलसे के दिनों में, 'सुल्ताना डाकू' या 'मुल्तान का सौदागर' जैसे नाटक खेला करते और परमात्मा बाबू डायरेक्टर साहब की तुलना

चाँद-तारों और सूरज से करते हुए उनके सम्मान में एक कविता प
करते। वे अजीब मुद्रा में कविता पढ़ते थे जिसे देखकर उसे उस वक्त भ
हँसी आयी थी—वे अपनी खाकी पतलून का पाँयचा लपेट कर मोजों
नीचे घुसेड़ लेते, फिर थियेटरी अन्दाज में कभी कलेजे पर हाथ रखते हु
और कभी डायरेक्टर साहब की ओर देखकर बलाएँ लेने की मुद्रा मे कविता
पढ़ा करते। इस पर भी शकील साहब या परमात्मा बाबू को कभी कोई
खास तरक्की नहीं मिली। अब शकील साहब ने उम्र बढ़ जाने से नाटक
खेलना बन्द कर दिया है, लेकिन परमात्मा बाबू अब भी बदस्तूर कवि-
ताएँ पढ़ते है जो थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ वही कविता होती है जो उसने
कभी सुनी थी। दूसरे कामो के साथ जलसे के पन्द्रह दिन पहले से ही वे
इसकी तैयारी करने लगते। ठनाठनी के बावजूद बड़े बाबू से उन्हें
पूरी छूट मिली रहती कि और काम चाहे बाद में हों पर उस मौके के
लिए कविता जरूर मुकम्मिल होनी चाहिए जिसका वे पूरा फायदा
उठाते और कोई शब्द फँसने पर हर एक को तंग किया करते।

दोपहर को उन्होने राजेन को भी आ घेरा।

"तुम कविता-अविता कुछ करते थे कि नही ?"

"कविता !" राजेन को बहुत ताज्जुब हुआ। "नहीं, मैंने तो नही
लिखी।"

"हुँ, तब तुम इन्दरधनुस क्या देखते हो यार !"

उनकी इस छेड़ से वह सुबह से ही आहत था। इस बार चुप न रह
सका। "चाचा जी, इससे कविता का कोई मतलब नही। देखिये, आप तो
नही देखते, फिर भी लिखते हैं।"

परमात्मा बाबू चित हो गये। "अच्छा छोड़ यह बात," उन्होंने
कहा, "ये बता कि 'करतार' के तुक में कौन-सा शब्द अच्छा होगा,
'जगतार', 'गिरधार', या 'भरतार'— देख, पूरी लाइन इस तरह है।"

और उन्होंने हाथ लहरा कर एक लाइन सुना दी, "आप जनाब
हमारे पालक, हम सबके करतार।"

"हाँ, अब बता ?"

राजेन कभी मजाक नही करता, लेकिन अब उसका अच्छा-खासा

मनोरंजन हो रहा था।' 'करतार' के वजन पर 'कतवार' एक अच्छा शब्द होता, पर यह उसने कहा नहीं। इसके बदले ऊपर से गम्भीरता दिखाते हुए बोला, "चाचा जी, सवाल यह है कि 'करतार' शब्द आया किसके लिए है ?"

"अरे, हमारे डायरेक्टर साहब के लिए, और किसके लिए ?"

"वे हम सबके करतार हैं ?"

परमात्मा बाबू एक क्षण को उसका मुँह देखते रहे, गोया उसने कोई बड़ी गलत बात कह दी थी। फिर एकाएक कहा, "उँह, हों या नहीं। लेकिन उनके सम्मान में आखिर क्या शब्द लिखा जा सकता है ? उनके नाम में गरवार है—श्री दीनानाथ गरवार। यह पहली लाइन में आ गया : 'आज हमारी बगिया में पधारे हैं श्री गरवार।' फिर 'सुमनों का हार', 'सरकार', 'पालनहार' वगैरह शब्द आ गये। अब जहाँ 'करतार' फँसा है उसके ऊपर ससुरा 'मँझधार' भी आ गया, आगे समझ में नहीं आ रहा है, और तू कहता है कविता के बारे में कुछ जानता ही नहीं। कालेज में करता क्या रहा ?"

"मुझे तो इसका कोई मौका नहीं मिला, लेकिन मेरा एक दोस्त लिखता था कविताएँ ···दो-एक पत्रिकाओं में भी छपी थीं···।"

"तो कल उसे पकड़ ला न, चाय-पानी कराऊँगा, कुछ मेरी मदद कर दे।"

"लेकिन शायद वह आपकी मदद न कर सके।···वह नई कविताएँ लिखता है।"

"तो मैं कौन-सी पुरानी लिख रहा हूँ···पिछले साल चन्दोला साहब आये थे और उससे भी पिछले साल देसाई साहब ! अगर उनमें से कोई चल सकती तो मैं यह नई कविता क्यों लिखता···तू उसे बुला ला कल।"

"मेरा मतलब इस तरह की नई कविता से नहीं है," राजेन ने कहा "वह कोई शैली है कविता की।"

"वह क्या होती है ?" परमात्मा बाबू ने इस बीच एक बीड़ी सुलगा ली थी।

यह तो मैं भी नहीं जानता। राजन ने कहा, "पर वह कर भी सकता तो भी शायद आपकी मदद नहीं करता, क्योंकि वह कहा करता था कि कवि का काम किसी की बिरुदावलि लिखना नहीं है···।"

"फिर क्या है ?"

"यह भी मैं कुछ नहीं कह सकता।" राजेन ने कहा, "लेकिन आप एक बात कर सकते हैं।"

जाने को उद्यत परमात्मा बाबू रुक गये---"क्या ?"

"डायरेक्टर साहब का नाम दीनानाथ है न ! कुछ इसी से बनाइये।"

"तुम समझते हो मैंने यह नहीं सोचा – पहली लाइन बड़ी जोरदार बैठी थी—दर्शन कर हम धन्य हैं आये दीनानाथ···पर उसके आगे 'हाथ' 'माथ', 'नाथ', 'सनाथ' के अलावा कुछ सूझता ही नहीं। फिर अब हो भी जाए तो ये दस-बारह लाइनें जो हो गयी हैं—उनका क्या होगा··? अब ज्यादा फेर-बदल का टाइम नहीं है···सिर्फ पन्द्रह दिन रह गये हैं जलसे में···।"

राजेन उन्हें कोई उत्तर नहीं दे सका।

परमात्मा बाबू निराश होकर अपनी रचना-प्रक्रिया में डूबे अपनी सीट की ओर बढ़ गये।

जलसे का महीना यहाँ के ठहरे जीवन में जरा-सी हरकत पैदा कर देता। तरह-तरह की चर्चाएँ होती और बड़े बाब का रोब-रुतबा कुछ अधिक ही बढ़ जाता, क्योंकि तरक्की मारी जाने के डर से इन दिनों उन्हें कोई नाराज करने की हिम्मत न कर पाता। लेकिन सब कुछ उनके और रेजिडेंट इंजीनियर के बीच 'टाप-सीक्रेट' रहने के बाद कानोंकान चर्चा चलती रहती—कि किसको खास तरक्की दी जायेगी या किसकी तरक्की मारी जायेगी।

पर इस बार कुछ और भी चर्चाएँ चल रही थीं; एक दूसरी ही तरह की हलचल महसूस की जा रही थी।

पर यह ठहरे पानी की हलचल नहीं—यूनियन नेता किस्टो मुखर्जी ने बताया था—एक करवट, पूरी एक करवट थी, एक रद्दोबदल! वे

आजकल कम्पनी के फाटक पर ज्यादा दिखायी देते और हर एक को बताया करते। सब कुछ बदलने वाला था, जो जैसा पहले था, वैसा बिलकुल नहीं रह जायेगा। सदानन्द मंत्रिमण्डल ने अपना जो मकड़जाल फैला रखा था पूरे प्रदेश पर उसके टूट जाने से वह सब होगा जो पहले नहीं हो पाया था।

वे अभी सब साफ-साफ नहीं बताते, और अपनी पार्टी के लोगों के बीच सरगर्म चर्चाओं को मुँह पर हाथ रख कर गुपचुप अन्दाज में ही बताते हैं—सदानन्द अपने प्रतिक्रियावादी रुझान के कारण शुरू से ही राष्ट्रीयकरण के विरोधी रहे हैं। अब केन्द्र की सरकार कई खास-खास चीजों को अपने हाथ में लेने जा रही है। वे फिर मुँह पर हाथ रख लेते हैं—अध्यादेश तैयार हो चुके हैं, दिल्ली भेजा गया है, राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए, आते ही ऐलान कर दिया जायेगा···।

"क्या बिजली कम्पनी का भी होगा?"

"और नहीं तो क्या, तुमसे कहने का मतलब ही क्या?" वे कम्पनी की यूनियन के अपने एक साथी को समझाते हैं। "सारे राज्य की बिजली कम्पनियों को एक सरकारी बोर्ड के मातहत कर दिया जायेगा।"

"क्या यह कम्पनी भी?" यूनियन के साथी ने पूछा। मानो उसे विश्वास न हो कि कभी ऐसा हो सकेगा।

"क्या तुम्हारी कम्पनी दुनिया से अलग है, जो ऐसी बात करते हो?"

"यह कब होने वाला है कामरेड!"

किस्टो मुखर्जी फिर मुँह पर हाथ रख लेते हैं—"यह नहीं कह सकता। हमें भी तो जोर लगाना पड़ेगा। कॉंग्रेस टूट गयी है, उसका एक हिस्सा और कई दूसरे विरोधी दल मिल गये हैं···। भारी टक्कर होगी कॉंग्रेस पर जोर डालना होगा कि वह प्रगतिशील, तरक्की पसन्द कदम उठाये, नहीं तो प्रतिक्रियावादियों से मुकाबला नहीं किया जा सकता।"

"तो इससे हमें भी फायदा होगा न?"

"जरूर होगा।" किस्टो मुखर्जी ने आसपास आ जुटे और कई लोगों की ओर देखा—"जरूर फायदा होगा। तुम किसी सेठ-साहूकार के